नोट—४ *'तव हित कारन'* कहा, क्योंकि प्रभुने कहा था कि *'तासु हित होई'* सो कहना। *'भाई'* बराबरवालोंके लिये भी यह एक प्रकारका सम्बोधन है। जैसे,—*'बर अनुहारि बरात न भाई। हँसी करैहहु पर पुर जाई॥'* (१। ९३। १) रावणने भी उत्तरमें 'भाई' सम्बोधन किया है, यथा—*कहु निज नाम जनक कर भाई।'* (२१। २) यह साधारण बोलचालकी रीति है।

उत्तम कुल पुलस्ति कर नाती। सिव बिरंचि पूजेहु बहु भाँती॥ ३॥
बर पाएहु कीन्हेहु सब काजा। जीतेहु लोकपाल सब राजा॥ ४॥

अर्थ—तुम्हारा कुल उत्तम है। तुम पुलस्त्यजीके नाती हो। तुमने शिवजी और ब्रह्माजीकी बहुत प्रकार से पूजा की (और उनको प्रसन्न किया) है॥ ३॥ उनसे बहुत प्रकारके वर पाये और सब कार्य किया। सब लोकपालों और सब राजाओंको जीत लिया है॥ ४॥

नोट—१(क) *'तव हित कारन आएउँ'* कहकर अब यहाँ वह 'हित' कहते हैं। (ख) *'उत्तम कुल'''।'* इति। ब्रह्माके मानस पुत्र पुलस्त्यजी हुए। पुलस्त्यजीके पुत्र विश्रवाजी हुए और उनका पुत्र रावण है। पुलस्त्यकुलोद्भव, होनेसे *'उत्तम कुल'* कहा, यथा—*'रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका। तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका॥'* (५। २३। २) एवं *'उपजे जदपि पुलस्त्यकुल पावन अमल अनूप।'* (१। १७६) (ग) *'सिव बिरंचि पूजेहु बहु भाँती'* इति। तप, जप, यज्ञ, ब्रह्माकी आज्ञाओंका पालन, अपने सिरोंका बलिदान, फिर काटकर रुधिरधारासे शिवपदकमलका प्रक्षालन इत्यादि 'बहुत भाँति' की पूजा है। *'बहु भाँती'* दीपदेहरी है। बहु भाँति पूजा की और बहु भाँतिके वर पाये। *'पूजेहु'* कहकर *'बर पाएहु'* कहनेका भाव कि पूजनसे दोनों संतुष्ट हुए; दोनोंने वर दिये, नर-वानर छोड़ सबसे अमर किया और भी अनेक वर समय-समयपर दिये—(ये प्रसङ्ग आनेपर लिखे गये हैं)। (घ) *'कीन्हेउ सब काजा'''*' के भाव ७(२) और ८(३-४) में आ चुके। (ङ) *'सब राजा'* से मनुष्य राजाओंको भी जीतना कहा, लोकपालमें सुरराज आ गये और राक्षस-राज तो वह स्वयं ही है। ☞ मा० म० और पं० 'सुरराजा' पाठ देते हैं।

प० प० प्र०—*'बर पाएहु'''*' में व्यङ्ग यह है कि तुमने जो कुछ पराक्रम किया वह केवल वर-सामर्थ्यसे; तुममें अपनी निज शक्ति कुछ नहीं है। और मेरे पिताकी शक्ति तो उनकी स्वसम्पादित थी, वरलब्ध नहीं।

नोट—☞ २(क) *'उत्तम कुल'''*' से कुलकी श्रेष्ठता कही, फिर तीन चरणोंमें उसकी निज श्रेष्ठता कही। इनमें रावणका उत्तरोत्तर उत्कर्ष वर्णन 'सार अलंकार' है—'**उत्तरोत्तरमुत्कर्षः सार इत्यभिधीयते।**' पुनः प्रथम उत्तम कुल कहा, फिर उसका फल कहा कि शिवविरंचिकी पूजा की—ब्रह्मा कुलके पुरुष हैं और शिव इष्टदेव हैं। इन दोनोंको प्रसन्न करनेका फल कहा कि अनेक वर पाये, यथा—*'काहु न इन्ह सम सिव अवराधे। काहु न इन्ह समान फल लाधे॥'* फिर वर-प्राप्तिका फल कहा कि बड़े-बड़े दुर्गम कार्य कर डाले, दिग्विजय किया। (ख) इस कथनमें भाव यह है कि इन सबका फल होना चाहिये हरिभक्ति, यथा—*'सिवसेवा कर फल सुत सोई। अबिरल भगति रामपद होई॥'* (७। १०६। २) ये सब श्रीरामजीकी भक्ति करते हैं, यथा—*'रामहिं भजहिं तात सिव धाता।'* (७। १०६। ३) पर तुम इसके विपरीत कर्म करते हो जो कुलोचित नहीं है और जिससे कुलमें कलंक लगता है।

नोट—३ मिलान कीजिये—*'तू दसकंठ भले कुल जायो। ता महँ सिव सेवा बिरंचिबर भुजबल बिपुल जगत जस पायो॥'* (गी० ६। २)

बं० पा०—कुलपरम्पराको लेकर हितोपदेश करते हैं कि बड़े कुलवालेको बड़े उत्तम काम करने चाहिये, विचारिये तो आपका कुल उत्तम है और आपने कर्म भी उत्तम किये कि शिवादिका पूजन किया; जिससे उनकी प्रसन्नतासे वर पाया, अखण्ड चक्रवर्ती राज्य किया, जन्मभर बड़े ही काम करते आये; पर यह एक काम तुमसे छोटा हो गया कि तुमने पर-स्त्री हरण किया।

मा० म०, पं०—तुम्हारे पिता, पितामह आदि तुम्हारे कर्म देख लज्जित होते हैं। यदि वह कहे कि मैंने ऐसे कर्म नहीं किये तो उसपर आगे कहते हैं कि *'नृप अभिमान'''।'*

नृप अभिमान मोह बस किंबा। हरि आनेहु* सीता जगदंबा॥ ५॥

शब्दार्थ—**किंबा**=किंवा अथवा, यदि वा, या तो। **आनेहु**=लाये, ले आये।

अर्थ—राज्यमदसे अथवा मोहवश तुम जगन्माता श्रीसीताजीको हर लाये॥ ५॥

मिलान कीजिये—(रामः—'**भो महावीराङ्गद!**') '**अज्ञानादथवाऽधिपत्यरभसादस्मत्परोक्षे हृता, सीतेयं परिमुच्यतामिति वचो गत्वा दशास्यं वद॥**' (हनु० ८। २) अर्थात् रामचन्द्रजीने अङ्गदसे कहा कि हे महावीर! तुम जाकर रावणसे इस प्रकार कहो कि अज्ञान (मोह) से अथवा राज्यके गर्वसे हमारे पीछे चुरायी हुई सीताको तुम छोड़ दो। पुनश्च '***श्रीमद नृप अभिमान मोहबस जानत अनजानत हरि लायो।***' (गी० ६। २)

पं०—भाव कि तुमने जान-बूझकर न किया होगा। पर राजमदसे या मतिमें भ्रम हो जानेसे ऐसा किया होगा।

नोट—१ '***नृप अभिमान***' का भाव कि राज्यसे राजमद एवं मोह और इनके होनेसे ऐसा धर्म-मर्यादाका उल्लङ्घन हो जाता है। तुमने धर्म-मर्यादा मिटा दी, इससे जान पड़ता है कि तुम्हें या तो राज्याभिमान हो गया है या मोह। यथा—'***बिषई जीव पाइ प्रभुताई। मूढ़ मोहबस होहिं जनाई॥ भरत नीतिरत साधु सुजाना। प्रभुपद प्रेम सकल जग जाना॥ तेऊ आजु राजपद पाई। चले धरम मरजाद मिटाई॥''''भरतहि दोसु देइ को जाए। जग बौराइ राजपद पाये॥***' (अ० २२८)

राजमदसे कलङ्क होता है, यथा—'***केहि न राजमद दीन्ह कलंकू।***' (२। २२९। १) और मोहसे नाश होता है। तुमको इस कर्मसे कलङ्क मिलेगा और नाश होगा—'***तेहि ससि महँ जनि होहु कलंका।***' (५। २३। २) '***मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला॥''''एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाध्य बहु ब्याधि॥***' नृप-अभिमान यह कि मेरे समान संसारमें दूसरा कोई नहीं है।

नोट—२ '***हरि आनेहु सीता जगदंबा***' इति। '***हरि आनेहु***' का भाव कि सूनेमें चोरीसे ले आया, श्रीलक्ष्मणजीके रहते ले आनेका साहस न हुआ। '***सीता जगदंबा***' का भाव कि वे जगज्जननी हैं। तेरे पिता, पितामह, गुरु, ब्रह्मा और शिवजीकी भी माता हैं। तब तेरी भी माता हुईं। उनका हरण अधर्म है। '***जगदंबा***' को हर लाना कहनेका भाव कि साधारण किसी भी पर-स्त्रीका हरण महा-अपराध है और ये तो जगदम्बा हैं। कुम्भकर्णने भी कहा है कि '***जगदम्बा हरि आनि अब सठ चाहत कल्यान।***' (६२) अर्थात् इनके हरणके पापकी तो मिति ही नहीं। पुनः '***जगदम्बा***' कहकर श्रीरामजीका जगत्पिता परब्रह्म परमात्मा होना जनाया। श्रीहनुमान्जीने जो प्रभुका ऐश्वर्यरूप कहते हुए उत्तर दिया था वह इसमें आ गया।

पं०—तुमने उत्तम-उत्तम कर्म किये, अतः यह कर्म तुमसे न होना चाहिये था। जान पड़ता है कि राजमद या मोह हो गया होगा, उसीसे ऐसा बुरा कर्म तुमसे जान या अनजानमें हो गया।

अब सुभ कहा सुनहु तुम्ह मोरा। सब अपराध छमिहि प्रभु तोरा॥ ६॥
दसन गहहु त्रिन कंठ कुठारी। परिजन सहित संग निज नारी॥ ७॥
सादर जनकसुता करि आगे। एहि बिधि चलहु सकल भय त्यागे॥ ८॥

अर्थ—अब तुम मेरा कल्याणकारी कहना सुनो। प्रभु श्रीरामजी तुम्हारे सब अपराध क्षमा करेंगे॥ ६॥ दाँतों तले तिनका दाबो। कंठमें कुठारी बाँधो। कुटुम्बियोंसहित अपनी स्त्रियोंके साथ श्रीजानकीजीको आदरपूर्वक आगेकर इस प्रकार सब भय छोड़कर चलो'॥ ७-८॥

नोट—१(क) '***अब***' का भाव कि जो कुछ हुआ, सो हुआ, अब भी कुछ विशेष हानि नहीं हुई है। '**सुभ कहा**' अर्थात् इससे तुम्हारा कल्याण होगा। पुनः, शुभका भाव कि इससे सबका कल्याण है। 'रघुनाथजी पौलस्त्य-वधके पापसे बचेंगे', श्रीसीताजी सुखी होंगी, मुझको यश होगा, तेरा राज्य अचल होगा, मन्दोदरी आदिका सोहाग बना रहेगा। (पं०) (ख) '***सब अपराध***'—सीताहरण, जटायुवध, विभीषणका

* आनिहु—(भा० दा०)।

अनादर और चरणप्रहार, ब्राह्मण, गौ, ऋषि, मुनि और देवतादिको मदमत्त होकर सताने आदिके अपराध इत्यादि। यथा—'**ऋषीणां देवतानां च गन्धर्वाप्सरसां तथा। नागानामथ यक्षाणां राज्ञां च रजनीचर॥ यच्च पापं कृतं मोहादवलिप्तेन राक्षस। नूनं ते विगतो दर्पः स्वयम्भूवरदानजः॥**' (वाल्मी० ६। ४१। ६२-६३; श्रीरामवचन)

नोट—☞ २ '*अब सुभ*''''*तोरा*' इस वार्तालापमें यह प्रभुकी ओरसे अङ्गदकी पहली प्रतिज्ञा है कि क्षमा माँगो तो भगवान् तुम्हें छोड़ देंगे; परन्तु क्षमापनकी शर्तें ऐसी कठिन रखीं कि रावण-सा स्वाभिमानी उन्हें स्वीकार ही नहीं कर सकता था। इतना ही नहीं, इन शर्तोंको सुनकर ही उसके क्रोधका पारा कितना ऊँचे चढ़ जाता है। यदि रावण अङ्गदका कहा मान जाता तो विभीषणको राज्य कैसे मिलता? प्रतिज्ञा भंग हो जाती। यह बात अङ्गद उसी तरह जानते थे जिस तरह वह रावणकी ऐंठको खूब समझते थे। इसीलिये इस बतकहीमें '*काज हमार तासु हित*' दोनों बातें मौजूद हैं।

पु० रा० कु०—'*दसन गहहु त्रिन कंठ कुठारी।*''''' इति। दाँततले तिनका दाबनेका भाव कि हम पशु-समान अज्ञ हैं यह सूचित करनेके लिये ऐसा करो। '*कंठमें कुठारी गहहु*' का भाव कि हमने अपने हाथसे अपना सिर काटा कि सीताहरण किया। ऐसा करनेसे वे तुम्हें न मारेंगे। यथा—'**रिपवोऽपि विमुच्यन्ते दन्ताग्रे तृणधारणात्**', '*जे तृण दंतहि धरहि तिनहि मारहि न सबल कोइ॥*' [पुनः, दाँतमें तृण दाबनेका भाव कि पशुके समान दीन बनकर जाओ। '*कंठ कुठारी*' का भाव कि हमने अपराध किया है, यह कुठार हमारी गर्दनपर है, चाहे इससे हमारी गर्दन काट डालिये, चाहे रखिये। हम शरणमें हैं, जो चाहें कीजिये। बड़ा भारी अपराध क्षमा करानेकी यह एक रीति है। यह सब ऐसा करनेवालेकी अति हीनता-दीनताका सूचक है। यहाँ 'अस्फुट गुणीभूत व्यङ्ग' है। मिलान कीजिये—'***कही राजा रानी सों जु बात यह साँच भई आँच लागी हिये अब कहो कहा कीजिए। चलेही बनत चले सीस तृण बोझ भारी गरेसों कुल्हारी बाँधि तिया संग भीजिए॥ निकसे बजार ह्वै कै डारि दई लोकलाज कियो मैं अकाज छिन छिन तन छीजिये। दूर ते कबीर देखि ह्वै गए अधीर महा, आये उठि आगे कह्यो डारि, मति रीझिये॥***' (भक्तिरसबोधिनीटीका कवित २७६)।*

वि० त्रि०—सरकारने कहा था '*काज हमार तासु हित होई। रिपु सन करेहु बतकही सोई॥*' अङ्गदजी ठीक तदनुरूप बोल रहे हैं, कहते हैं कि आदरपूर्वक जनकसुताको आगे करके चलो, जिससे देखते ही सरकारको सन्तोष हो कि 'काम मेरा हो गया'; पर इतनेसे ही रावणका कल्याण नहीं है, उससे जगदम्बा-हरणरूप ऐसा अपराध बन पड़ा है कि जिसमें क्षमाको स्थान नहीं है, उस अपराधके क्षमापनका उपाय तो यथार्थरूपसे शरण ग्रहण है। शरणकी परिभाषा शास्त्रकारोंने इस भाँति दी है कि '**अहमस्म्यपराधानामालयोऽकिंचनोऽगतिः। त्वमेवोपायभूतो मे भवेति प्रार्थनामतिः। शरणागतिरिति प्रोक्ता तद्देवे विनियुज्यताम्॥**' मैं अपराधोंका आलय हूँ, न मेरे पास कोई साधन है, न कोई गति है। आप ही कृपा करके मेरे लिये उपायभूत हो जाइये। यह शरणागतिकी सामान्य विधि है, यहाँ परिस्थितिके अनुसार वाञ्छनीय विधि यह है कि दाँततले तृण दाबो कि मैं आपकी गाय हूँ, कण्ठमें कुठारका भाव यह कि जो उचित समझिये दण्ड दीजिये, मुझे सब स्वीकार है। मैं ही नहीं मेरे बाल-बच्चे सब हाजिर हैं। सीताजीकी शुद्धिके विषयमें मेरी स्त्रियाँ प्रमाण हैं (यथा '*तेहि अवसर रावन तहँ आवा। संग नारि बहु किये बनावा*' इत्यादि)।

नं० प०— दाँतमें घास दबानेका भाव कि गऊ बन जाओ तो गऊका वध वे न करेंगे। '*कंठ कुठारी*'—भाव कि गला कटा हुआ मृतकके समान है, इससे मरे हुएको कोई नहीं मारता। अतः तुम्हारा अपराध क्षमा हो जायगा।

नोट—३ '*परिजन सहित संग निज नारी*' इति। भाव कि—१(क) अपराध क्षमा करानेके लिये इनको भी साथ लाया हूँ। अथवा, ये साक्षी हैं कि हमने श्रीसीताजीको सुखी रखा है। वा, मन्दोदरी भक्त है इसका मैं पति हूँ, इसकी ओर दृष्टि करके मुझपर कृपा कीजिये। (पं०) (ख) मैंने अपकी स्त्री हरण

* मा० म०—कंठकुठार गला छेदनेवाले कुठारको कहते हैं। पुनः, ऐंठे हुए वस्त्रसे गला बाँधनेको कंठकुठार कहते हैं। पुनः, कण्ठकुठार=काठका तौक जो गाय-बैलके गलेमें डाला जाता है। पुनः, कण्ठकुठार=गलेमें फँसरी-सरीखा बँधा हुआ वस्त्र।

की, मेरी सब स्त्रियाँ हाजिर हैं, जो चाहे कीजिये। वा, अपनी लीजिये और हमारी भी सेवाके लिये हाजिर हैं। (बं० पा०) ☞ गी० लं० १ में मन्दोदरीने स्वयं कहा है कि मुझे आगे करके ले चलो, यथा—*'चलु मिलि बेगि कुसल सादर सिय सहित अग्र करि मोहि। तुलसीदास प्रभु सरन शब्द सुनि अभय करहिगे तोहि॥'* तथा क० लं० १७ में दाँततले तिनका दाबकर शरण होनेको कहा है, यथा—*'कंत! तृन दंत गहि 'सरन श्रीराम' कहि, अजहुँ यहि भाँति लै सौंपु सीता।'*

'सादर जनकसुता करि आगे।......' इति।

पं०, मा० म०—श्रीसीताजीको सुखपाल पालकीपर चढ़ाकर आगे करो, तुम उनके आश्रित हो पीछे चलो। भाव कि माताके आश्रित बालककी तरह पीछे-पीछे चलो। अथवा, श्रीसीताजीको आगे देखते ही प्रभुका कोप निवृत्त हो जायगा तब पीछे तुम्हें देख तुमपर कृपा करेंगे। २—पाँ०*'जनकसुता'* पदका भाव कि ये लङ्कामें वैसे ही रही हैं जैसे जनकजीके घरमें रहती थीं। अब मैं इनको समर्पण करता हूँ।

नोट—४(क) *'एहि बिधि चलहु',* यहाँतक चलनेका प्रकार दिखाया। आगे श्रीजानकीजी, उनके पीछे तुम्हारी स्त्रियाँ, फिर कुटुम्बी तब तुम। (ख) **'सकल भय त्यागे।'** भाव कि इस प्रकार चलनेपर फिर तुम्हें कोई भय नहीं रहेगा। रघुनाथजी अवश्य तुम्हें क्षमा करेंगे। *'सकल भय'*—अपराधक्षमा, राज्यच्युत होने इत्यादिका।

दो०—प्रनतपाल रघुबंसमनि त्राहि त्राहि अब मोहि।
आरत गिरा सुनत* प्रभु अभय करहिंगे† तोहि॥२०॥

अर्थ—'हे शरणागतके पालन करनेवाले! हे रघुवंशशिरोमणि! अब मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।' (इस प्रकार चलकर कहनेसे) तुम्हारी आर्त्तवाणी सुनते ही प्रभु तुमको अवश्य निर्भय करेंगे॥ २०॥

नोट—१ *'प्रनतपाल'* का भाव कि मैं शरणागत हूँ यद्यपि विश्वद्रोही हूँ। आप शरणागतकी सदा रक्षा करते हैं, हमारी भी रक्षा कीजिये। यथा—*'सरन गये प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्वद्रोहकृत अघ जेहि लागा॥'* (५। ३९। ७)

नोट—२ *'रघुबंसमनि'* का भाव कि रघुकुलमें सभी शरणपाल होते आये और आप तो उस कुलके शिरोमणि हैं, मेरी रक्षा कीजिये॥ नोट—३ *'आरत गिरा।'* *'त्राहि त्राहि'* यह आर्त्तवाणी है, यथा—*'चले भागि कपि भालु भवानी। बिकल पुकारत आरत बानी। पाहि पाहि प्रनतारति हारी॥'* (६९। ४)

प० प० प्र०—श्रीहनुमान्‌जीने रावणसे कहा था कि *'प्रनतपाल रघुनायक करुनासिंधु खरारि। गए सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि॥'* (५। २२) जब विभीषणजी शरण गये तब उन्होंने *'श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर। त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर॥'* (५। ४५) ऐसा कहा। इन दोनों वाक्योंका यहाँके अङ्गदवाक्यसे मिलान करनेसे स्पष्ट है कि *'प्रभु'* शब्द तीनोंमें है। यहाँ *'रघुबंसमनि'* है। इसके बदलेमें ५। २२ में *'रघुनायक'* और ५। ४५ में *'रघुबीर'* है। विभीषणका रक्षण बिना रावणके विनाशके असम्भव है यह जानकर वहाँ *'रघुबीर'* शब्दका प्रयोग किया गया। रावणका रक्षण करनेमें केवल क्षमाकी आवश्यकता थी, अतः यहाँ तथा ५। २२ में *'रघुबीर'* शब्दकी आवश्यकता न थी। *'रघुबंसमनि'* का भाव ऊपर नोटमें आ गया है।

रे कपिपोत‡ बोलु संभारी। मूढ़ न जानेहि मोहि सुरारी॥१॥

शब्दार्थ—पोत=पशु-पक्षी आदिका छोटा बच्चा, लघु बालक। **'पोतः स्याद्‌बृहती नौका पोतः स्याल्लघुबालके'** इत्यनेकार्थशब्दमाला।

---

* सुनतहि आरत बचन—(का०)। † करहिंगे—(का०, रा० गु० द्वि०), करैगो (भा० दा०)।

‡ पाठान्तर—कपि पोच। ☞ २—का० एवं भा० दा० दोनोंमें 'रे कपिपोत बोलु' पाठ है। ना० प्र० ने 'रे करैपोत न बोल' पाठ दिया है, किस प्रतिलिपिका यह पाठ है इसका पता नहीं है।

अर्थ—अरे वानरके बच्चे! सँभालकर बोल। अरे मूर्ख! तू मुझको नहीं जानता कि मैं देवताओंका शत्रु हूँ॥ १॥

प० प० प्र०—'**कपिपोत**' सम्बोधनसे रावणने बालिको एक साधारण कपि और अङ्गदको एक क्षुद्र बंदर सिद्ध किया। इस तरह सभासदोंके हृदयमें उसने धीरज बँधाया। अङ्गदके समान एक वानर त्रैलोक्यविजयी सुरारि रावणका उसीकी राजधानीमें भरी सभामें इतना अपमान करता है तथापि वह कुछ दण्ड नहीं देता, इससे मानसके रावणकी इन्द्रियनिग्रह शक्ति और अङ्गदकी तेजस्विताका सुचारुरूपेण दर्शन होता है।

नोट—१ '**सुरारी**' का भाव कि मैंने इन्द्रादि देवताओंको जीता है ऐसे मुझ पराक्रमशाली रावणको मनुष्यके अधीन होने, उससे विनती करनेको कहता है। मुझे तृणवत् समझता है। मैं मनुष्यको क्या समझता हूँ। यथा—'**विस्पष्टं विष्टपानां विजयिनमपि मां मन्यसे त्वं तृणाय।**' (हनु० ८। २५)

गौड़जी—महाभारत वनपर्व, २८३ वें अध्यायमें, जो रामोपाख्यानके अन्तर्गत है, कुछ इसी प्रकारका सन्देश है जिसपर रावण क्रोधसे मूर्च्छित हो जाता है और उसके इशारेसे चार राक्षस अङ्गदसे लिपट जाते हैं। उसकी बदनीयती देखकर अङ्गदजी जोरसे धक्का देते हुए उछलकर छतपर हो जाते हैं और चारोंको जो धरतीपर गिरते हैं, गहरी चोट आती है। अङ्गदजी उछलकर फिर लङ्कापुरी लाँघकर सुबेल शैलके समीप श्रीराघवजीके पास पहुँचते हैं।—(वाल्मी० ४१। ८२—८९ में भी ऐसी ही कथा है)। महाभारतका रावण क्रोधावेशमें बेअख्तियार हो जाता है परंतु मानसका रावण अधिक मानसिक बल रखनेवाला है। साथ ही अङ्गदका दौत्य भी इतनी जल्दी समाप्त नहीं होता।

कहु निज नाम जनक कर भाई। केहि नाते मानिए मिताई॥ २॥

अर्थ—अरे भाई! अपना और अपने बापका नाम तो बता। किस नाते (सम्बन्ध)से मित्रता मानता है॥ २॥

नोट—१(क) अङ्गदकी मानमर्दन करनेवाली बातें बढ़ती हुई एवं उनका उत्साह बढ़ता देख पहले उनको '**रे कपिपोत—**' कहकर चुप किया और अपना बल '**सुरारी**' पदसे जनाकर तब अङ्गदने जो पूर्व कहा था कि '*मम जनकहि तोहि रही मिताई*' वही पूछने लगा। इसीसे पहिले '**कपिपोत**' सम्बोधन किया और अब '**भाई।**' क्योंकि अङ्गदने भी मित्रता कहनेमें '**भाई**' सम्बोधन किया था। (ख) अभीतक अङ्गदने न अपना नाम कहा था और न पिताका और न यह कि क्या मित्रता थी। अतएव वही तीनों प्रश्न रावणने किये। (ग) '**केहि नाते**' का भाव कि मित्रता अनेक कारणोंसे होती है, उनमेंसे किस नातेसे मुझसे तेरे पितासे मित्रता है। ध्वनि यह भी है कि हम राक्षस हैं तू वानर है, वानर और राक्षसमें मित्रता कैसी? तब और क्या सम्बन्ध है? यह ध्वनि सूचित होना 'वाच्यसिद्धाङ्ग गुणीभूत व्यङ्ग' है। '**मानिए**' का भाव कि मित्रको मित्र जानता है; पर हम तुम्हें नहीं जानते तब बता कि किस नाते तूने मित्रता मान ली। (घ) मिलान कीजिये—'**कस्त्वं कस्यासि पुत्रः क्व पुनरिह गतः किं नु कृत्यं च कस्मात्।**' (हनु० ८। २५) अर्थात् तू कौन है? किसका पुत्र है? और फिर तू यहाँ क्यों आया? तेरा क्या कार्य है?

अंगद नाम बालि कर बेटा। तासों कबहुँ भई ही* भेटा॥ ३॥

अर्थ—मेरा नाम अङ्गद है,मैं बालिका पुत्र हूँ। उनसे तुमसे कभी भेंट हुई थी?॥ ३॥

नोट—१ रावणके तीन प्रश्न—'*कहु निज नाम*', '*जनक कर नाम*' और '*केहि नाते मनिए मिताई॥*' तीनोंका उत्तर यहाँ क्रमसे है—'अङ्गद मेरा नाम, बालि पिताका नाम' उससे कभी भेंट हुई थी? नोट—२ '*भई ही भेटा*' का भाव कि जब भेंट हुई थी और उसने दबा रखा था तब ब्रह्माजीने जाकर मित्रता करा दी थी और तुमको छुड़ाया था—यह याद है या भूल गये?—'*जगत बिदित अति बीर बालि बल जानत हौ किंधौं अब बिसरायो?*'—(गी० लं० ४) पुनः इसमें व्यङ्ग यह भी है कि उसने तेरे साथ उपकार किया तब भी तू उसे भूल गया, तू बड़ा कृतघ्न है। मिलान कीजिये—'**कस्त्वं वन्यपतेः सुतो वनपतिः**

* ही (का०, भा० दा०), होइ(ना० प्र०)।

कः सार्थिकस्त्वेकदा यातः सप्तसमुद्रलङ्घनविधावेकोऽह्निको वेद्मि तम्॥' (हनु० ८। १०), '**हं हौ पौलस्त्यपुत्रस्तव बलमथनस्याङ्गदोऽहम्॥**' (हनु० ८। २५) अर्थात् '(रावण)—तू कौन है? (अङ्गद)—मैं वनवासी जीवोंका राजा बालिका पुत्र हूँ। (रावण)—कौन वनपति बालि? (अङ्गद)—जो आर्थिक (याचक) के साथ एक ही दिनमें सातों समुद्र उल्लङ्घन करनेमें एक ही था। (रावण)—'मैं उसको जानता हूँ।' 'मैं तेरे बलके मन्थन करनेवाले बालिका पुत्र हूँ।'

पु० रा० कु०—यह रावणकी बालिसे पराभवसूचक सतर्क उक्ति है। एक बार बलके गर्वसे रावण बालिसे युद्ध करने किष्किन्धा गया। उस समय वह दक्षिण-समुद्रमें सन्ध्या करने गया था। रावणने चाहा कि चुपचाप पीछे जाकर उसे पकड़ लें। इधर बालिने भी ताड़ लिया कि वह आता है। दोनों एक-दूसरेकी ताकमें थे। अन्ततोगत्वा बालिने उसे पकड़कर काँखमें दबा लिया; फिर पश्चिम-समुद्रमें गया; वहाँसे उत्तर और पूर्वसमुद्रमें जाकर तर्पण किया। तत्पश्चात् सन्ध्या-वन्दन करके किष्किन्धामें आकर रावणको काँखसे गिरा दिया और पूछा कि 'कहो कहाँसे आते हो?' रावण बड़ा लज्जित हुआ और अपनी हार मान अग्निकी साक्षी देकर उससे मित्रता कर ली। वह एक मासतक बालिके यहाँ छोटे भाईकी तरह रहा—(वाल्मी० उ० ३३, अ० रा० उ० २। ५८, ५९)।

अंगद बचन सुनत सकुचाना। रहा बालि बानर मैं जाना॥ ४॥

अर्थ—अङ्गदका वचन सुनते ही वह सकुच गया और बोला कि हाँ बालि एक वानर था, मैं उससे परिचित हूँ॥ ४॥

पं०—'*सकुचाना*' से जनाया कि वह समझ गया कि यह मेरा मर्म जानता है। कहीं ऐसा न हो कि मेरी पराजय सभाके बीचमें कह दे, इससे तुरंत बोला (—यह 'पिहित' अलंकार है) और फिर अपनी उसकी जान-पहचान जताते हुए भेद करानेवाले वचन कहे।

रा० प्र०—'*रहा बालि*''''। का भाव कि व्यङ्ग वचन सुनकर भूली-सी बात यादकर कहता है कि हाँ जाना, बालि बंदर था (का० में 'हाँ' पाठ है)

गौड़जी—अपने बड़प्पनके घमंडमें यहाँ भी रावण बालिकी मैत्री नहीं स्वीकार कर रहा है। केवल जान-पहचान मानता है। सभाके सामने घनिष्ठताका प्रदर्शन करनेमें उसकी पराजयका भेद खुलनेका डर था। अब बालि था नहीं, इसलिये इस तिरस्कारके प्रतिकारका उसे भय न था।

अगंद तहीं बालि कर बालक। उपजेहु बंस अनल कुल घालक॥ ५॥
गर्भ न* गएहु ब्यर्थ तुम्ह जाएहु। निज मुख तापस दूत कहाएहु॥ ६॥

अर्थ—अरे अङ्गद! तू ही बालिका पुत्र है? अरे कुलनाशक! अपने वंशमें कुलरूपी बाँसके लिये अग्निरूप पैदा हुआ है?॥ ५॥ तेरी माताका गर्भ न गिर गया? तू व्यर्थ ही पैदा हुआ कि अपने मुखसे तू तपस्वीका दूत बनता है॥ ६॥†

शीला—रावण कहता है कि जैसे वनमें बाँसोंके परस्पर रगड़से आग उत्पन्न होकर वनको जला देती है वैसे ही तू अपने कुलका नाशक हुआ। तेरे ही कारण बालिने सुग्रीवको निकाल दिया कि मेरे पुत्रके रहते तू कैसे राज्यपर बैठा, तू न होता तो वे सुग्रीवसे वैर न करते; क्योंकि उसके मरनेपर वही तो राज्य पाता। तेरे ही कारण सुग्रीवने रामसे मित्रता की और बालि मारा गया। अब तुम दोनों लोभवश उनकी सहायता करने आये हो तो परिवारसहित सब मारे जाओगे।

---

* गएउ—(का०), गएहु—(भा० दा०)।

† इसका सरस्वतीकृत अर्थ यह है कि—'तेरी माताका गर्भ व्यर्थ न गया अर्थात् गर्भ सफल हुआ। क्योंकि तुझ-ऐसे भक्तको पैदा किया। और तुम भक्त हुए ऐसे कि स्वयं दूत बने। तुम्हारा जन्म सफल हुआ। यथा—'पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुबर भगत जासु सुत होई॥ न तरु बाँझ भलि बादि बियानी। रामबिमुख सुत तें हित हानी॥' (अ०)—पु० रा० कु०।

वीर—यहाँ 'वंश' शब्दके दो अर्थ *'बाँस और कुल'* जबतक न लिये जायँ तबतक रूपकका चमत्कार नहीं भासता। मुख्य रूपकके अन्तर्गत यह श्लेषद्वारा दूसरा रूपक भासित होनेसे 'परम्परित रूपक अलंकार' है।

पु० रा० कु०—१ (क) जैसे अग्नि बाँसको नाश कर डालती है वैसे ही तूने पिताकी कीर्ति नाश की। **'लोवानन्दन चन्दनद्रुम सखे नास्मिन् वने स्थीयतां दुर्वंशैः कठिनैरसारहृदयैराक्रान्तमेतद्वनम्। ते ह्यन्योन्यविघर्षजातदहन-ज्वालावलीसङ्कुला न स्वान्येव कुलानि केवलमिदं सर्वं दहेयुर्वनम्॥'** (अज्ञात) [अर्थात् हे लोवानन्दन! हे चन्दनद्रुम! हे सखे! इस वनमें हम सबोंको न रहना चाहिये; क्योंकि ऊपरसे कठिन और भीतरसे केवल असार हृदयवाले इन दुर्वंशोंसे यह वन आक्रान्त है। ये सब परस्परके विघर्षसे उत्पन्न हुए अग्निके ज्वालासमूहसे संकुल होकर अपने ही कुलको केवल नहीं; किंतु इस वनको जला देंगे।] यहाँ रावण अङ्गदसे भेद डालनेकी बात कर रहा है, रामचन्द्रिकामें स्पष्ट है। अङ्गद समझ गये। इसीसे आगे कहते हैं कि *'सुनु सठ भेद होइ मन ताके। श्रीरघुबीर हृदय नहिं जाके॥'* २१(९) देखिये।

नोट—१ *'गयउ न गर्भ……।'* भाव कि कुलघातक होनेसे अच्छा था कि तुम पैदा ही न होते। कुपुत्रसे बिना पुत्रका ही भला। कुलघातकसे कुपूत जनाया, यथा—*'जिमि कपूतके उपजे कुल सद्धर्म नसाहिं।'* (कि० १५) भाव कि बापका बदला लेकर सपूत सिद्ध हो, यथा—*'नील सुषेन हनू उनके नल और सबै कपिपुंज तिहारे। आठहु आठ दिशा बलि दै अपनो पद लै पितु जा लगि मारे॥ तोसे सपूतहि जायकै बालि अपूतन की पदवी पगु धारे। अंगद संग लै मेरो सबै दल आजुहीं क्यों न हनै वय बारे॥ जो सुत अपने बापको बैर न लेइ प्रकास। सो तो जीवत हीं मरयो लोग कहहिं तजि त्रास॥', 'उरसि अंगद लाज कछू गहो। जनक घातक बात वृथा कहौ॥ सहित लछिमन रामहिं संहरौं। सकल वानरराज तुम्हें करौं॥'*—(रा० चं० प्र० १६। १५, १८)

नोट—२ *'निज मुख तापस दूत कहाएहु'*, यथा—**'धिग्धिगङ्गद मानेन येन ते निहतः पिता। निर्माना वीरवृत्तिस्ते तस्य दूतत्वमागतः॥'** (हनु० ८। २६) अर्थात् अरे अङ्गद! तुझको धिक्कार है कि जिसने तेरे पिताको मानसे मारा उसीका तू मानरहित होकर वीरवृत्तिको पाकर भी दूत बना है।

अब कहु कुसल बालि कहँ अहई। बिहँसि बचन तब अंगद कहई॥ ७॥

अर्थ—अब बालिका कुशल कह, वह कहाँ है? तब (यह सुनकर) अङ्गद हँसकर वचन बोला॥ ७॥

पु० रा० कु०—*'बिहँसि'* का भाव कि देखो तो यह *'खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली। बधे सकल अतुलित बलसाली॥'* ये वचन हनुमान्‌जीसे सुन चुका है; जिससे उसे बालिवधकी खबर मिल चुकी है तो भी हमारे भेदनार्थ (भेद डालनेके विचारसे) यह हमसे अज्ञकी तरह पूछ रहा है। तात्पर्य कि हमसे भी माया करना चाहता है।

गौड़जी—यहाँ रावण व्यंग्यसे बालिकी कुशलादि पूछता है, कुलघालक कहकर वह यह इशारा कर चुका कि मैं तुम्हारे परिवारभरका हाल जानता हूँ। अङ्गद हँसकर इसी वक्रोक्तिका उचित उत्तर देते हैं।

वि० त्रि०—रावण समझते थे कि बापके मारे जानेकी चोट अवश्य इसके हृदयमें होगी। असहाय होनेके कारण पितृहन्ताकी सेवकाई कर रहा है, यदि यह कुछ भी आश्वासन मेरी ओरसे पावेगा, तो निश्चय मेरी ओर मिल जायेगा। अतः उसने भेद-नीतिका प्रयोग किया। प्रेमसे बालिका कुशल पूछने लगा, वह हैं कहाँ, जो तेरी यह दशा हो रही है कि राजकुमार होकर तपस्वीका दूत बना फिरता है। रावणने समझा कि ऐसा पूछनेपर अङ्गद रो पड़ेगा, कहेगा कि 'चचा! उन्हें तो रामने मार डाला, मैं क्या करूँ असहाय हूँ, इसलिये उनका दूतत्व करता हूँ' पर अङ्गद, बात समझकर हँस पड़े कि इसे न रामके स्वरूपका ज्ञान है, न मेरे स्वरूपका, मुझे सामान्य सांसारिक पुरुष समझकर भेद-नीतिका प्रयोग करता है।

दिन दस गए बालि पहिं जाई। बूझेहु कुसल सखा उर लाई॥ ८॥

शब्दार्थ—**'दस दिन'** अल्पकालका वाचक है।

अर्थ—कुछ दिन बीतनेपर बालिके पास स्वयमेव जाकर अपने सखाको हृदयसे लगाकर उसीसे कुशल पूछ लेना। भाव यह कि थोड़े ही दिनोंमें तुम भी रामबाणसे मारे जाकर वहीं भेजे जाओगे जहाँ बालि गया है॥ ८॥

नोट—१ *'बालि पहिं जाई'*—*'राम बालि निज धाम पठावा'* और *'तुम्हहू दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयं॥'* (१०३ छन्द) नोट—२ इस कटूक्तिमें यह भी ध्वनित है कि तुम्हारी बातचीतका ढंग जब ऐसा है, मेल करनेका नहीं है, तो शीघ्र ही मारे जाओगे, तुम्हारी भी वही दशा होगी—(गौड़जी)।

पु० रा० कु०—बालिकी मृत्युका सब हाल रावण जानता है। यदि कहें कि रामचन्द्रजीने उसे मार डाला तो यह और भी ठट्ठा मारकर हँसेगा कि जिसने बापको मारा उसीके तुम दूत बने, ऐसे निर्लज्ज हो और छिपावें तो कहेगा कि झूठ कहते हो; इसलिये युक्तिसे उत्तर देते हैं कि वह तो तुम्हारा सखा है, तुम स्वयं जाकर कुशल पूछ लेना।

बं० पा०—बालि और रावण दोनों पर-स्त्रीहरणकर्त्ता हैं, इस तरह तुल्यपापी हैं। और दोनों रामविरोधी हैं। इस प्रकार तुल्य-सखा हैं। दोनोंकी एक गति हुई।—[दोनोंमें अग्निकी साक्षी देकर मित्रता ब्रह्माने करा दी थी, इससे सखा कहा।—२१(२) देखिये।]

राम बिरोध कुसल जसि होई। सो सब तोहि सुनाइहि सोई॥ ९॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजीसे वैर करनेसे जैसी कुशल होती है वह सब तुझे वही सुनावेगा॥ ९॥

नोट—रामविरोध करनेसे वह मारा गया,—*'नारि सिखावन करसि न काना।'* तुम बैर कर रहे हो, किसीकी नहीं सुनते, तुम भी मारे जाओगे—*'राम बिरोध न उबरसि सरन बिष्नु अज ईस॥'* (सु० ५६), ***'तो सों कहौं दसकंधर रे रघुनाथ बिरोध न कीजिय बौरे। बालि बली खरदूषन और अनेक गिरे जे जे भीतिमें दौरे॥ ऐसिय हाल भई तोहि धौं न तु लै मिलु सीय चहै सुख जौ रे। राम के रोष न राखि सकैं तुलसी बिधि श्रीपति संकर सौ रे॥'*** (क० लं०१२)

आशय कि रामविरोधीकी कुशल उसकी मृत्यु है, अन्यथा रामविरोधीकी कुशल कहाँ? कुशल चाहना शठता और अत्यन्त अज्ञता है, यथा—*'राम बिरोध बिजय चह सठ हठबस अति अग्य।'* (८३)

☞ यहाँतक बालिके कुशलका उत्तर हुआ। मिलान कीजिये—**'अस्ति स्वस्ति समन्युतो रघुवरे रुष्टेऽत्र कः स्वस्तिमान् को भूयादनरण्यकस्य मरणातीतो चिताम्बुप्रदः॥'** (हनु० ८। १०) अर्थात् रावणके यह कहनेपर कि 'मैं बालिको जानता हूँ, वह कुशलपूर्वक तो है?' अङ्गदने उत्तर दिया कि जो अनरण्यके पश्चात् उचित जलके देनेवाले हैं (भाव कि रावणके रुधिरसे तर्पण करके अनरण्यके वचनको सत्य करेंगे) उन रघुनाथजीके रुष्ट होनेपर कौन कुशलसहित हो सकता है? (किसीकी कुशल नहीं)।

सुनु सठ भेद होइ मन ताके। श्रीरघुबीर हृदय नहिं जाके॥ १०॥

अर्थ—अरे शठ! सुन, भेद उसके मनमें उत्पन्न हो सकता है जिसके हृदयमें श्रीरघुबीर नहीं हैं॥ १०॥

नोट—१ *'भेद होइ मन ताके।'* इति। (क) यहाँ अङ्गदने स्पष्ट जना दिया कि मैं तुम्हारे वचन समझता हूँ, पर तुम्हारी भेदनीति यहाँ न चलेगी। २१(५-६) देखिये। *'भेद'*—प्राचीन राजनीतिके अनुसार शत्रुको वशमें करनेके चार उपायोंमेंसे तीसरा उपाय है, जिसके अनुसार शत्रुपक्षके लोगोंको बहकाकर अपनी ओर मिला लिया जाता है अथवा उनमें परस्पर द्वेष उत्पन्न कर दिया जाता है। (ग) इससे यह भी जनाया कि रामजी किसीके शत्रु नहीं हैं। उन्होंने बालिको मारा सो उचित था, क्योंकि वे धर्मसंस्थापन करनेवाले हैं, दुरात्माओंको शिक्षा देते हैं। यथा—**'युक्तं कृतं तु रामेण येन मे निहतः पिता। त्रैलोक्यशास्तिकृत्याय वर्तते स दुरात्मनाम्।'** (हनु० ८। २७)*

नोट—२ *'हृदय नहिं जाके'* का भाव कि—(क) हम मुखसे अपनेको उनका दूत ही नहीं कहते किन्तु उन्हें हृदयमें बसाये हुए हैं। 'श्रीरघुवीर' से उनके वीर वनवासी धनुर्धर ऐश्वर्य-स्वरूपका बसना कहा।

* 'इनको बिलगु न मानिये कहि केशव पल आधु। पानी, पावक, पवन, प्रभु ज्यों असाधु त्यों साधु॥' (१७) 'शत्रु, सम, मित्र हम चित्त पहिचानहीं। दूतबिधि नूत कबहूँ न उर आनहीं। आप मुख देखि अभिलाष अभिलाषहू। राखि भुज सीस तब और कहँ राखहू॥' (१९) (रा० चं० प्र० १६)।

पुन: (ख) जबतक 'श्रीरघुवीर' का वास नहीं होता तभीतक वहाँ भेद आदि अनेक दुष्ट रहते हैं, यथा—'*तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मत्सर मद माना॥ जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि भाथा॥*......' (५। ४७। १-२) अत: रघुवीरका हृदयबास कहा।

पां०—भाव कि हम रघुवीरके दूत हैं, कायरकी बात क्यों मानने लगे।—[यहाँ वाच्यार्थ और व्यङ्गार्थ बराबर होनेसे '*तुल्यप्रधानगुणीभूत व्यङ्ग*' है—(वीर)।]

पु० रा० कु०—'*उपाध्याये नटे धूर्त्ते कुटिन्यां च बहुश्रुतौ। माया तत्र न कर्तव्या माया तैरेव निर्मिता॥*' इनमेंसे अङ्गद बहुश्रुत हैं। जो बहुश्रुत होता है वही चतुर होता है। इसीसे प्रभुने उनसे कहा था कि—'*परम चतुर मैं जानत अहहूँ।*'

गौड़जी—हे शठ (धूर्त! तू धूर्ततासे श्रीरघुवीरके और मेरे बीच जो भेद डालना चाहता है,) सुन, भेद उसीके मनमें (पैदा) हो सकता है जिसके हृदयमें [कुछ और हो और ऊपर से कुछ और, जो अपना मतलब गाँठने भरके लिये तो किसीका साथ देता हो, पर हृदयमें उसके प्रति मैत्रीका सच्चा भाव न हो, परन्तु मैं भीतर-बाहर दोनों तरहसे रघुकुलश्रेष्ठ वीर जो प्रणतपाल हैं, अपनी बातके धनी हैं, जो मुझे अपनानेकी प्रतिज्ञा मेरे बापसे कर चुके हैं, उनका दास हूँ। तेरी भेदनीति तब चलती जब मेरे कमजोर हृदयमें कुछ और होता। तूने भ्रमवश ऐसा समझा है कि मेरे हृदयमें कुछ और है] श्रीरघुवीर नहीं हैं।

दो०—हम कुलघालक सत्य तुम्ह कुलपालक दससीस।
अंधौ बधिर* न अस कहहिं नयन कान तव बीस॥ २१॥

अर्थ—अरे दशशीश! हम कुलके नाश करनेवाले हैं और तुम सत्य ही कुलके पालन-पोषण करनेवाले हो। अन्धे और बहिरे भी ऐसा नहीं कहते और तेरे तो बीस नेत्र और बीस कान हैं॥ २१॥

नोट—१ '*हम कुल घालक*'—काकुद्वारा इसमें विपरीत अर्थ है कि हम कुलघालक नहीं हैं, वरन् कुलरक्षक हैं क्योंकि रामभक्त हैं, यथा—'*धरम परायन सोइ कुलत्राता। रामचरन जाकर मन राता॥*' (७। १२७) और तुम सत्य ही कुलपालक नहीं हो, वरन् कुलघालक हो, क्योंकि रामविमुख हो, यथा—'*रामविमुख अस हाल तुम्हारा। रहा न कुल कोउ रोवनिहारा॥*' (६। १०३) नोट—२ सत्यमें व्यङ्ग है कि तू मिथ्यावादी है।

पु० रा० कु०—'*अंधौ बधिर*....' इति। अन्धा आँखसे देख नहीं सकता; पर सुन तो सकता है और बहिरा सुन नहीं सकता पर देखता तो है, इससे वे यथार्थ बात जान लेते हैं और तेरे तो बीस नेत्र और बीस कान हैं तब तू कैसे बहिरे और अन्धेकी तरह उलटी बात कहता है। स्वयं कुलघालक है और कहता है हमको। '*बीसहु लोचन अंध धिग तव जन्म कुजाति जड़।*' (३२) देखिये।

बं० पा०—जो व्यवहार आँखसे नहीं देखा उसे अंधा न कहेगा और जिसने कभी गुरुमुखसे शास्त्र-पुराण नहीं सुने वह बहिरा भी उस बातको न कहेगा। इससे ज्ञात हुआ कि तू अन्धेसे भी महा अन्धा और बहिरेसे भी महाबहिरा है; तभी तो ऐसा कहता है।

वि० त्रि०—अङ्गदजी कहते हैं कि यह तो तुमने विचित्र बात कही। मुझे कुलघालक बनाकर आप कुलपालक बन गये। पर तुम्हारी कुलपालकता तो अन्धे-बहिरे भी जानते हैं। बहिरेने आँखसे देखा होगा, और अन्धेने कानसे सुना होगा, क्योंकि संसार जानता है कि तुमने मुनिवंशज होकर मुनियोंका संहार कर दिया, उनको कच्चा खा गये, यथा—'*निसिचर निकर सकल मुनि खाये।*' अत: अन्धे-बहिरे भी तुम्हें कुलपालक नहीं कहेंगे। तुम्हें तो परमेश्वरने बीस आँख और बीस कान दिये हैं, तुम्हारे शासनमें तुम्हारे सेवक राक्षस लोग मुनियोंको खाये जाते हैं, क्या यह बात तुम्हें नहीं मालूम, तब किस मुखसे कुलपालक बनते हो। मैंने तो रामदूत होकर कुलको उज्ज्वल किया, जैसा कि आगे कहेंगे।

नं० प०—जो अंधा होगा उसने कानोंसे श्रीरामजीका ऐश्वर्य पुराणोंमें सुना होगा कि '*अति बल मधु*

* 'बहिर न अस कहइ' (का०)।

कैटभ जेहि मारा।'''''' सोइ अवतरेउ''''' ॥' वे यही कहेंगे कि उन्हीं भगवान्‌से रावणने विरोध किया है, अब कुलका नाश करायेगा। और जो बहिरा है वह नेत्रसे देख रहा है कि जिन श्रीरामजीने ताड़काका वध किया है, शिवधनुष तोड़ा, खरदूषणादिका वध किया, बालिको एक बाणसे मारा और समुद्रपर सेतु बाँधा, उन्हींसे रावणने विरोध किया है, अतः अब कुलका नाश करायेगा। जब अन्धा-बहिरा ऐसा कहेगा तो तुम्हारे तो बीस कान और बीस नेत्र हैं, तुम क्यों ऐसा कहते हो? भाव कि तुम दोनोंसे गये-गुजरे हो।

स्मरण रहे कि 'अन्ध' शब्द अन्धेके लिये है और 'बधिर' शब्द बहिरेके लिये; क्योंकि यदि अन्धा और बहिरा दोनों क्रियाएँ एक व्यक्तिमें होती हैं तो वह अन्धा ही कहलाता है, बहिरा नहीं। यदि कहिये कि रावण तो एक ही है उसके लिये दोकी समता क्यों दी गयी, तो उत्तर यह है कि रावणकी एक-एक इन्द्रियके लिये एक-एक मिसाल (उदाहरण) है। नेत्रके लिये अन्धेकी और कानके लिये बहिरेकी उपमा दी गयी। अर्थात् अन्धेकी क्रिया और बहिरेकी क्रिया, दोनों क्रियाएँ रावणमें आरोपण कर रहे हैं। भाव कि जो अन्धा भी न कहेगा वह तुम बीस नेत्रोंके होते हुए कह रहे हो, अतः अन्धेसे बदतर हो। और, जो बहिरा न कहे वह तुम बीस कानके होते हुए कह रहे हो, अतः बहिरेसे भी गये-बीते हो।

सिव बिरंचि सुर मुनि समुदाई। चाहत जासु चरन सेवकाई॥ १॥
तासु दूत होइ हम कुल बोरा। अइसिहु मति उर बिहरु न तोरा॥ २॥

शब्दार्थ—बिहारना=फटना, दरकना, यथा—*'बल बिलोकि बिहरति नहिं छाती।'*

अर्थ—शिव, ब्रह्मा, देवता और मुनियोंका समुदाय जिसके चरणोंकी सेवा चाहते हैं॥ १॥ उनका दूत होकर हमने कुलको डुबा दिया! अरे! ऐसी बुद्धि होनेपर भी तेरी छाती फट नहीं जाती॥ २॥

नोट—१ शिव-समान दूसरा भक्त नहीं, इसीसे इन्हें आदिमें रखा। ब्रह्मादिक, सुर और मुनि सभी सेवा चाहते हैं, यथा—*'जानि रामसेवा सरस समुझि करब अनुमान। पुरुखा ते सेवक भये हर ते भे हनुमान॥'* (दो० १४३) *'बार बार बर माँगउँ हरषि देहु श्रीरंग। पदसरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग॥'* (७। १४ शिवजी) *'नृपनायक दे बरदानमिदं। चरनांबुज प्रेम सदा सुभदं॥'* (११०; ब्रह्माजी), *'अब करि कृपा''''आयसु देहु कृपाल'* (इन्द्र), *'आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा।'*, *'मधुकर खग मृग तनु धरि देवा। करहिं सिद्ध मुनि प्रभुकी सेवा॥'* (अ०); (देखिये साक्षात् रूपसे प्राप्ति न देखी तब पशु-पक्षी इत्यादि होकर सेवा की।); *'प्रसीद मे नमामि ते पदाब्ज भक्ति देहि मे'*—(अत्रिजी); *'यह बर माँगउँ कृपानिकेता।''''''चरन सरोरुह प्रीति अभंगा।'*— (अगस्त्यजी), *'चरन सरोरुह नाथ जनि कबहुँ तजइ मति मोरि'*, *'अब करि कृपा देहु बर एहू। निज पद सरसिज सहज सनेहू॥'* (भरद्वाजजी)

नोट—२ *'तासु दूत होइ हम कुल बोरा'* अर्थात् जो सेवा ब्रह्मादिको चाहनेपर भी नहीं मिलती वह हमको अनायास प्राप्त हुई तब हम कैसे वंशके नाशक हुए? यहाँ काकुद्वारा वक्रोक्ति है। पुनः भाव कि यदि उनकी सेवासे कुल डूबता तो शिवादि कभी उसकी लालसा न करते।

नोट—३ *'अइसिहु मति उर बिहरु न।'* अर्थात् फट जाना चाहिये था, यथा—*'जब तैं कुमति कुमत जिय ठयऊ। खंड खंड होइ हृदय न गयऊ॥'*(२। १६२)

सुनि कठोर बानी कपि केरी। कहत दसानन नयन तरेरी॥ ३॥
खल तव कठिन बचन सब सहऊँ। नीति धर्म मैं जानत अहऊँ॥ ४॥

शब्दार्थ—तरेरना—आँखोंको इस प्रकार करना जिससे क्रोध वा अप्रसन्नता प्रकट हो। दृष्टि कुपित करना। दृष्टिसे असंतोष प्रकट करना। यथा—*'सुनि लछिमन बिहँसे बहुरि नयन तरेरे राम।'* घुड़कना।

अर्थ—कपिकी कठोर वाणी सुनकर दशानन आँखें तरेरकर बोला—॥ ३॥ अरे दुष्ट! मैं तेरे सब कठोर वचन सहता हूँ, क्योंकि मैं नीति और धर्म (वा धर्मनीति) जानता हूँ॥ ४॥

नोट—१ *'तव कठिन बचन सब सहऊँ'* से जनाया कि सब वाणी कठोर है। *'अइसिहु मति उर बिहरु*

न तोरा' बहुत कठोर थे, इन्हें न सह सका तब बोला। नोट—२ 'दशानन' पदसे जनाया कि बीसों नेत्र घुरेरे। नोट—३ *'नीति धर्म मैं जानत अहऊँ'* से अपनेको नीतिज्ञ और धर्मशील जनाया। भाव कि कटुवादी वधयोग्य है, यथा—**'*कटुबादी बालक बध जोगू'*;** तो भी मैं तेरा वध नहीं करता क्योंकि नीतिमें कहा है कि दूत यथार्थवादी होता है, जो उसके स्वामीने कहा है वही कहता है। इसीसे वह अवध्य है। सं० २४ (७) देखिये। हनुमन्नाटकमें भी कहा है **'रे रे शाखामृग! त्वामहं धर्मशीलतया कटुप्रलापिनमपि न हन्मि। उक्तं च यथोक्तवादी दूतः स्यान्न स बध्यो महाभुजा॥'**(८। २१) अर्थात् धर्मशीलताके कारण मैं तुझ कटुभाषीको नहीं मारता। कहा भी है, दूत यथार्थवक्ता है अतः राजाको उचित है।

कह कपि धर्मसीलता तोरी। हमहुँ सुनी कृत परत्रिय चोरी॥ ५॥
देखी नयन दूत रखवारी। बूड़ि न मरहु धर्मब्रतधारी॥ ६॥

अर्थ—कपिने उत्तर दिया कि तेरी धर्म-निपुणता हमने भी सुनी है कि तुमने परस्त्रीकी चोरी की है॥ ५॥ दूतकी रक्षा (में तेरी धर्मशीलता) तो आँखों देखी गयी। अरे धर्मव्रतधारी! तू डूब नहीं मरता?॥ ६॥

टिप्पणी—१ *'कृत परत्रिय चोरी',* यह वक्रोक्ति है। *'हमहुँ सुनी'* का भाव कि सबने और मैंने भी सुनी, यह धर्मशीलता है कि अधर्मशीलता? टिप्पणी—२ *'दूतरखवारी आँखों देखी'* तात्पर्य यह कि तू मेरे मारनेको समर्थ नहीं है इसीसे हमसे कहता है कि हम *'नीति धर्म'* जानते हैं। इसीसे तुमको नहीं मारते'; अन्यथा तू तो चोरवत् श्रीसीताजीको हरकर लाया था तब धर्मशीलता क्यों न रखी थी?

देखी नयन दूत रखवारी

१-भाव कि जैसी साधुकी धर्मशीलता स्त्रीचोरीमें तुमने दिखायी, वैसे ही दूतरक्षामें देखनेमें आती है—धन्य है तेरी यह धर्मशीलता! सामर्थ्य है नहीं इससे नीतिज्ञ और धर्मज्ञ बनता है। यथा—**'परदारापहरणेन श्रुता या दशानन। दृष्टा दूतपरित्राणे साधोस्ते धर्मशीलता॥'** (हनु० ८। २२) अर्थात् जो साधुकी धर्मशीलता परस्त्रीके अपहरणमें सुनी थी वही धर्मशीलता दूतकी रक्षामें देखी। धन्य है तेरी धर्मशीलता!

यहाँ यह शंका उठाकर कि 'दूत-रखवारी तो आँखों देखी नहीं तब ऐसा कैसे कहा?' महानुभावोंने उसका समाधान यों किया है—

२ मा० म०—अङ्गदने यहाँ रामचन्द्रजीकी सभामें सुना था कि जब हनुमान्‌जीको मेघनाद नागपाशमें बाँधकर ले गया था उस समय कुबेरका दूत आया था उसे रावणकी आज्ञासे निशिचर काटकर खा गये। उसी प्रकार हनुमान्‌जीको भी मारना चाहा था पर विभीषणने आकर रोक दिया था। वही बात इस समय अङ्गदने कही।

३ श्यामसुन्दरदासजी और वीरकविजीने लिखा है कि रावण-अङ्गदकी वार्ता हो रही थी जब कुबेरका दूत आया। जिसे सबने मार खाया। अतः **'देखी नयन'** कहा। पर वाल्मी० उ० १३। ८—४० से सिद्ध होता है यह कथा बहुत पुरानी है। वाल्मीकिजी लिखते हैं कि जब रावण देवता, गन्धर्व, यज्ञ और ऋषियोंका संहार करने लगा और नन्दन आदि विचित्र उद्यानोंको उजाड़ने लगा तब कुबेरने भाईपनेके भावसे रावणको कुलोचित उपदेश दूतद्वारा भेजा था कि बस अब बहुत हो चुका, अब श्रेष्ठ चरित्रका संग्रह करना उचित है·····तुम्हारे नाशके लिये ऋषि आदि बड़ा भारी उपाय कर रहे हैं। इत्यादि। यह सुनकर रावण बोला कि हम कुबेर और अन्य लोकपालोंका विनाश करेंगे और यह कहकर दूतको खड्गसे मार डाला और छः राक्षसोंको आज्ञा दी कि शरीरको खा लें। यथा—**'एवमुक्त्वा तु लङ्केशो दूतं खड्गेन जघ्निवान्॥'**(४०)

४ हनुमान्‌जीके साथ जो नीति बरती वह उनसे सुनी। अब आकर लङ्काको जली देखकर हनुमान्‌जीने जो कहा था उसको आँखोंसे सत्य ही देखा। इस विचारसे *'देखी नयन'* कहा। *'हमहुँ सुनी'* वैसे ही यहाँ *'हमहु देखी'* अर्थात् औरोंने देखी, हमने भी देखी।

५—बं० पा०—धर्मके उत्तरमें *'परतिय चोरी'* और धर्मनीतिके उत्तरमें *'दूत रखवारी'* देखी। *'देखी'* अर्थात् (देखी) सुनी जाती है।

६—शीला—*'देखेउ नयन दूत'* यह दूत है यह तूने आँखों देखा। तो भी *'रखवारी'* उसकी पूँछमें आग लगा दी।

७—पां०—अर्थ यह है—'हे दूतरक्षाके व्रत धारण करनेवाले! तू डूबकर मर क्यों न गया जो मुझे फिर तू मुँह दिखाता है (पर यहाँ 'रखवारे' नहीं हैं)।

८—वीर कवि—उत्तररामचरितके अनुसार दूत (हनुमान्‌जीने तेरी) रखवारी आँखों देखी है, उन्हें मारनेके लिये तूने विविध योद्धा भेजे, पूँछमें आग लगा दी, इत्यादि। नीतिधर्मका पालन तूने अच्छी तरहसे किया। (नं० प० जीका भी यही मत है)।

९—सि० ति० कार *'देखी नयन दूत रखवारी'* पाठ रखकर ऐसा अर्थ करते हैं—'और दूतकी रक्षामें नीति देखी।' कि आज तो तुम नीतिज्ञ बनते हो पर कुबेरके दूतके समय नीति नहीं देखी थी।

मेरी समझमें तो 'नयन' पाठ ही ठीक है। नयन पाठमें वह व्यङ्ग और वक्रोक्ति जो ऊपर थी वही चली आ रही है। देखी=देखी गयी; लोगोंने देखी हैं। ऐसा अर्थ ले सकते हैं।

नोट—*'धर्मव्रतधारी'* में भी वक्रोक्ति है। अर्थात् तू अधर्मव्रतधारी है। *'बूड़ि न मरहु'* अर्थात् तू निर्लज्ज है, नहीं तो मेरा उत्तर सुनकर लज्जासे तुझे डूब मरना चाहिये था। आत्मघात ही तेरे लिये उचित था। यथा—'**सतां माने म्लाने मरणमथवा दूरि शरणम्**' इति नाटके। अर्थात् सज्जनोंके मानके म्लानमें या तो मरण ही अच्छा होता है या दूर चला जाना।—(पु० रा० कु०)

कान नाक बिनु भगिनि निहारी। छमा कीन्हि तुम्ह धरम बिचारी॥ ७॥
धर्मसीलता तव जग जागी। पावा दरस हमहु बड़ भागी॥ ८॥

शब्दार्थ—**धर्मशीलता**=धर्माचरणकी वृत्ति, धर्मात्मापन। **जागना**=प्रसिद्ध होना, चमक उठना।

अर्थ—बहिनको नाक-कान रहित देखकर तुमने धर्म ही विचारकर तो क्षमा किया!॥ ७॥ तेरी धर्मशीलता जगत्‌भरमें जगमगा रही है, हम भी बड़े भाग्यवान् हैं कि तुम्हारा दर्शन पाया॥ ८॥

टिप्पणी—१ *'छमा कीन्हि'* का भाव कि जहाँ क्षमाकी जगह नहीं वहाँ ऐसी क्षमा क्या जानकर की और जहाँ क्षमा चाहिये वहाँ क्षमा न की। इस कथनसे उसकी अज्ञता दिखायी।* टिप्पणी—२ *'पावा दरस हमहु बड़भागी।'* भाव कि तेरे दर्शनसे मैं भी पापी हो गया—'**तत्संसर्गी च पञ्चमः**।' (मनु०)—यह सब व्याज-निन्दा है।

गौड़जी—भाव यह कि जहाँ तुम्हारा स्वार्थ सधता है वहाँ तुम अधर्मको धर्म मान लेनेमें लज्जाको तिलाञ्जलि दे देते हो। शूर्पणखाके अपमानका बदला लेनेमें अपनेको असमर्थ देखकर जो तुमने जाहिरी क्षमा कर दिया क्या वह भी अपना धर्म समझ लिया था? शायद तुमने अपनी तसल्ली (संतोष) यह समझकर की कि शूर्पणखाने उचित ही दण्ड पाया।

मा० म०—१ भाव कि तूने कहा था कि मैं धर्म सब जानता हूँ तभी तो तूने बहिनको रामचन्द्रजीसे रति करनेके लिये भेजा था, पर उन्होंने नाक-कान कटवाकर उसे निकाल दिया तूने आँखों देखा। क्या यही बड़े लोगोंका धर्म है? वा, इसीको तू श्रेष्ठ समझता है? इसी कारण तूने धर्म विचारकर शूर्पणखाको क्षमा किया क्योंकि तुम्हारे जानमें उसने बड़ा धर्म किया। जैसे अपनी लम्पटताको धर्म समझते हो वैसे ही उसका धर्म पर-पति करना है, यह देख तुम खुश हुए।

---

* रामो नाम स एव येन भगिनीनासावसापङ्किल: खड्गस्ते खरदूषणत्रिशिरसां धौत: शिर: शोणितै:। तद्बालान्तिनितान्तवद्धवपुष: सम्मूर्छितस्य ध्रुवं घ्राणं दर्पमिव स्वसुर्विलुठितं राम: कथं विस्मृत:॥' (हनु० ८। ३०) अर्थात् वह राम हैं कि जिन्होंने तेरे बहिनकी नाककी चर्बीके पंकसे युक्त अपने खड्गकी खरदूषणत्रिशिराके शिरोंके रुधिरसे धोया था। निश्चय ही उनकी रमणी सीताके समीप देहको स्थित करनेवाली आँखें मूँदे हुए अहंकारके तुल्य तेरी भगिनी शूर्पणखाकी नासिकाको जिसने गिरा दिया था उन रामचन्द्रको तू कैसे भूलता है? विशेष 'सूपनखा कै गति तुम्ह देखी। तदपि हृदय नहि लाज बिसेषी॥'(३५। १३) में देखिये।

२—शूर्पणखाकी ओटसे अङ्गदने सब राक्षसियोंको कुलटा सूचित किया।

प० प० प्र०—भाव यह है कि **'क्षमा शत्रौ च मित्रे च यतीनामेव भूषणम्।'** यतियोंके लिये शत्रु-मित्र सभीको क्षमा करना भूषण है, यह जानकर ही तू पुरुषार्थहीन होनेसे यती बन गया और यहाँ सिंहासनासीन होनेपर उस यतिधर्मका ही तू पालन करता रहा, इसीसे तूने क्षमा की। अन्यथा कोई भी शूर, वीर, स्वाभिमानी राजा ऐसी परिस्थितिमें क्षमा नहीं करता। तूने भूपधर्मका तो त्याग कर ही दिया। यह व्यङ्ग है।

☞ *'कान नाक बिनु भगिनि निहारी'* में कैसा गूढ़ उपहास है!

दोहा—जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि सठ बिलोकु मम बाहु।
लोकपाल बल बिपुल ससि ग्रसन हेतु सब राहु॥ २२ (क)॥

शब्दार्थ—**जल्पना**=व्यर्थ बकवाद करना, बहुत बढ़-बढ़कर बातें करना, डींग मारना—*'कटु जल्पसि जड़ कपि बल जाके। बल प्रताप बुधि तेज न ताके'॥* जंतु=छोटा जीव, कीड़ा। यथा *'गूलरि फल समान तव लंका। बसहु मध्य तुम्ह जंतु असंका॥'* (३३। ३)=प्राणी, यथा **'प्राणी तु चेतनो जन्यो जन्तुजन्युशरीरिणः।'**(अमर०)

अर्थ—अरे जड़, अरे नीच वानर! व्यर्थ बकबक मत कर। अरे शठ! मेरी भुजाएँ देख। ये सब लोकपालोंके भारी बलरूपी बहुत-से चन्द्रमाओंको ग्रसनेके लिये राहुरूप हैं॥ २२॥

पु० रा० कु०—१ जड़, जन्तु और वानर (पशु) कहनेका भाव कि तू क्या जाने, तू अज्ञानी है। अतः बकबक मत कर [वा, *'जड़ जंतु कपि'* अर्थात् गँवार काठके बंदर! (रा० प्र०)] *'बिलोकु'* का भाव कि इनपर चिह्न बने हैं इससे मेरे कथनको देखकर प्रमाण मान ले। विष्णुचक्र भी व्यर्थ हुआ, चक्रके चिह्न भुजाओंपर अङ्कित हैं, देखकर जान ले कि चक्रादि भी मेरी भुजाओंसे लगकर कुंठित होकर गिर पड़े। यथा—**'ऐरावतविषाणाग्रैरापीडनकृतव्रणौ। वज्रोल्लिखितपीनांसौ विष्णुचक्रपरिक्षितौ॥'** (वाल्मी० ५। १०। १६) लोकपाल कई हैं इसीसे कई चन्द्रमा कहे, चन्द्रमा बहुत-से हैं अतः उनके ग्रसनेके लिये राहु भी बीस। यहाँ परम्परित रूपक है।

दो०—पुनि नभ सर मम कर निकर कमलन्हि पर करि बास।
सोभत भएउ मराल इव संभु सहित कैलास॥ २२ (ख)॥

अर्थ—फिर (अर्थात् मेरा भुज-पराक्रम और सुन कि) आकाशरूपी तालाबमें मेरे भुजसमूहरूपी कमलोंपर कैलाससहित शिवजी बास करते हुए हंसके समान शोभित हुए थे॥ २२॥

पु० रा० कु०—हंस और कैलास दोनों शुभ्र वर्ण हैं इससे इन दोनोंका रूपक बाँधा गया। हंस कमलपत्रसमूहपर सोहता है, यथा—*'सुरसर सुभग बनज बनचारी। डाबर जोग कि हंसकुमारी॥'* (२। ६०। ५)

इससे कमलमें हंसका रहना सूचित हुआ। *'शम्भु सहित कैलास'* कहकर जनाया कि कैलास शिवजीका सार्वकालिक स्थान है।

वीरकवि—१ कमलके फूल राजहंसका भार नहीं सह सकते पर मेरे करकमलोंपर कैलासके सहित शिवजी हंसकी तरह ठहरे थे, इस अधिकतासे यहाँ 'अधिक अभेद रूपक अलङ्कार' है। इस रूपकमें काव्यार्थापत्ति अलङ्कारकी ध्वनि है कि जिन भुजाओंने कैलाससहित शिवजीको उठा लिया उनके आगे तेरा मालिक चीज ही क्या है?

२—कोई-कोई **'मरालोऽलिशावकः'** के आधारपर मराल शब्दका अर्थ 'भ्रमरका बच्चा' करते हैं। वह इस अभिप्रायसे कि हंसका भार, कमलपुष्प नहीं सँभाल सकता। तर्क ठीक है। परन्तु यहाँ रावण जान-बूझकर अधिकता सूचित करता है, इसके विपरीत अर्थ भ्रमरके बच्चेका खींचतानकर करनेसे अलङ्कारिक शोभा बिगड़ जाती है।

प० प० प्र०—अङ्गदने अपने वचनोंसे रावणको पुरुषार्थहीन और कायर सिद्ध किया। कहीं उसके सभासद सचिवादि भी वैसा ही न मान बैठे, इस विचारसे रावण इस दोहेमें तथा आगे अपना पुरुषार्थ कहता है।

तुम्हरे कटक माँझ सुनु अंगद। मो सन भिरिहि कवन जोधा बद॥ १॥
तव प्रभु नारि-बिरह बलहीना। अनुज तासु दुख दुखी मलीना॥ २॥
तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ। अनुज हमार भीरु अति सोऊ॥ ३॥

शब्दार्थ—**बद**=(१) कह। (२) बदकर, बाजी लगाकर। **कूल**=तट, किनारा।

अर्थ—अरे अङ्गद! सुन! तुम्हारी सेनामें कौन योद्धा है जो मुझसे बदकर लड़ेगा? बता। (अर्थात् मुझसे लड़ सके ऐसा कोई नहीं है)॥ १॥ तेरा स्वामी स्त्री-विरहसे बलहीन हो गया है और उसका भाई उसके दुःखसे दुःखी और मलिन (उदास, वैवर्ण) रहता है॥ २॥ तुम और सुग्रीव दोनों तटके वृक्ष हो। रहा, हमारा छोटा भाई विभीषण; वह भी अत्यन्त डरपोक है॥ ३॥*

प० प० प्र०—*'तव प्रभु'* का भाव कि जिसे तू जगत्का प्रभु कहता है, वह जगत्का प्रभु नहीं है, न समर्थ ही है। वह तो केवल तेरा प्रभु अर्थात् स्वामी है। यहाँके 'प्रभु' शब्दको आगे *'पति हित करै धर्म निपुनाई।', 'अंगद स्वामि भक्त तव जाती'* इत्यादिसे स्पष्ट किया है।

पु० रा० कु०—*'दुख दुखी मलीना'* से श्रीलक्ष्मणजीका श्रीरामजीमें अत्यन्त स्नेह दिखाया। मलीन है अर्थात् उसके हृदयसे आनन्द जाता रहा, स्वयं चित्तमें खेद रहता है। मनमें उदासी आनेसे आनन्द और उत्साह जाता रहता है, यथा—*'मिटा मोद मन भए मलीने। बिधि निधि दीन्ह लेत जनु छीने॥'* (२। ११८। ७)

नोट—२३(१—६) का भाव हनुमन्नाटकके इन श्लोकोंसे स्पष्ट हो जाता है—'**रामः स्त्रीविरहेण हारितवपुस्तच्चिन्तया लक्ष्मणः सुग्रीवोऽङ्गदशल्यभेदकतया निर्मूलकूलद्रुमः। गण्यः कस्य विभीषणः स च रिपोः कारुण्यदैन्यातिथिर्लंकातंकविटंकपावकपटुर्वध्यो ममैकः कपिः॥**' (८। ९) अर्थात् राम तो स्त्रीके विरहसे ही कृशतन हो गये और लक्ष्मण उनकी चिन्तासे दुर्बल हैं। सुग्रीव शल्य (वृद्ध होनेसे) और अङ्गद (पिताके मारे जानेसे) भेदकी शंकासे उत्साहरहित होनेसे मूलरहित नदीतटके वृक्षवत् हैं। विभीषण किस गिनतीमें है? वह तो शत्रुकी दया और दीनताका ही अतिथि है। लंकाको भय देनेवाला पावकरूप चतुर एक ही वानर (हनुमान्) मेरा वध्य है।

श्लोकके '**रामः स्त्रीविरहेण हारितवपुः**', '**हारितवपुस्तच्चिन्तया लक्ष्मणः**' और '**सुग्रीवोऽङ्गदः कूलद्रुमः**' ही क्रमशः मानसके *'तव प्रभु नारि बिरह बलहीना', 'अनुज तासु दुख दुखी मलीना'* और *'तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ'* हैं। श्लोकके *'शल्यभेदकतया'* से कूलद्रुम होनेका कारण बताया है कि सुग्रीव वृद्ध हैं और तुम दोनोंको सदा परस्पर भेदकी शंका रहती ही है। अतः तुम दोनोंमें युद्धका उत्साह कहाँ। श्लोकका '**गण्यः कस्य विभीषणः**' मानसका *'अनुज हमार भीरु'* है। '**स च रिपोः कारुण्यदैन्यातिथिः**' यह मानसके 'भीरु अति' की व्याख्या ही समझिये। श्लोकका चतुर्थचरण मानसके *'है कपि एक महाबलसीला। आवा प्रथम नगर जेहिं जारा॥'* इन चरणोंसे मिलता है।

'कूलद्रुम दोऊ'

'**कूलद्रुम**' का भाव कि जैसे तटके वृक्ष नदीकी तीव्र धारासे मूलसहित उखड़कर गिर पड़ते हैं वैसे ही तुम दोनों निस्सन्देह नष्ट होगे यथा '**नदीतीरेषु ये वृक्षा या सुनारी निरंकुशा। मन्त्रहीनो भवेद्राजा विनाशं**

* पु० रा० कु०—सरस्वती कृत अर्थ—(१) नारीविरहका जो बल है उससे हीन है अर्थात् कामके वश नहीं है, जितेन्द्रिय है, यथा—'नाहिन राम राजके भूखे। धरम धुरीन विषयरस रूखे, 'अनन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा', 'प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई।' उसका भाई दुःखसे दुःखी और मली (=पापी) न (नहीं है)। पापका फल दुःख है, पापी नहीं है, अतः दुःखी नहीं है। जैसे वृक्ष मार्गके लोगोंको सुखदायक होते हैं वैसे ही तुम दोनों सब वानरोंके सुखदाता हो; रामदर्शन कराके रामसेवक साधुरूप हुए। वा, कूल हो और वृक्ष हो। तट अर्थात् संसारसागरकी तीरभूमि हो,यथा—'मोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी परम प्रीती जो गाइहैं। संसारसिंधु अपार पार प्रयास बिनु नर पाइहैं॥'(१०५) द्रुमसदृश उपकारक हो, यथा—'संत बिटप सरिता गिरि धरनी। पर हित हेतु सबन्ह कै करनी॥'

यान्ति ते ध्रुवम्॥' ☞ नदीतटके सम्बन्धसे तटवृक्षका मूलसे गिरना ही मानसमें सर्वत्र मिलता है, यथा—
'बिषय बिषाद तोरावति धारा।''''''धीरज नट तरुबर कर भंगा॥' (अ० २७६। १-२)
'मानहु रोषतरंगिनि बाढ़ी।''''''ढाहत भूपरूप तरु मूला॥' (अ० ३४। १—४)

इसी भावकी पुष्टता पदरोपणसे होती है। अङ्गद पद रोपकर जनाते हैं कि तूने हमें कूलद्रुम कहा है, तू हमारा पैर ही हटा ले तो जानें कि तू हमारा नाश कर सकेगा। यहाँ नदी क्या है? उत्तर—(क) संग्राम वा रोष नदी है। लड़ाई हुई नहीं कि तुम मारे गये, जब मैं कुपित हूँगा तब मेरी रोषसरिताकी तीक्ष्ण धारासे तुम दोनों गिरकर बह जाओगे।—*'मानहु रोष तरंगिनि बाढ़ी।'* (ख) पाँड़ेजी 'विरोध' को नदी कहते हैं।

मा० म०, पं०—भाव यह कि (१) तुम दोनों हमारे समीपके बसनेवाले हो, पूर्वका प्रेम विचारकर हमसे न लड़ोगे, एवं यह विचारकर न लड़ोगे कि कौन जन्मभरके लिये वैर मोल ले। वा, (२) तटके वृक्ष निर्बल होते हैं। तुम दोनों आपसके वैरसे ही निर्बल हो रहे हो, क्या लड़ोगे? वा, (३) **कूलद्रुम**=सेनाका पृष्ठनायक—(विश्वमेदिनी कोष) भाव कि तुम दोनों सदा सेनाके पीछे रहोगे। सुग्रीव सोचेगा कि बड़े यत्नसे राज्य और स्त्री मुझे मिली है, मैं क्यों जाकर मरूँ और तुम सोचोगे कि मेरा बाप मर गया अब मैं क्यों मरकर वंश नष्ट करूँ(करु०)। (४) तुम दोनों एक-दूसरेके शत्रु हो, आप ही एक-दूसरेको ईर्ष्यावश मरवा डालनेका यत्न करोगे। इससे तटवृक्षकी नाईं शीघ्र नष्ट होगे।—(बं० पा०)। *'भीरु अति'*—ऐसा कि वानरोंका आना सुनकर ही भाग निकला—९(७) देखिये।

प० प० प्र०—यहाँ कूल और द्रुमका परस्पर सम्बन्ध ध्यानमें लानेसे रावणके वचनोंका भाव स्पष्ट हो जायगा। अङ्गदको कूल और सुग्रीवको कूलद्रुम कहा है। कूल और कूलद्रुम दोनों परस्पर मित्र और हितकर्तासे देखनेमें आते हैं। पर कूलद्रुम मूलको गिरानेका प्रयत्न करता रहता है और कूल स्वयं गिरकर तटके वृक्षको भी गिराता है। इस तरह कूल और द्रुम कहकर सूचित किया कि सुग्रीवमें और तुममें प्रेम नहीं है। तुम दोनों परस्पर विनाशक हो। जब तुम्हारेमें ही ऐसा भेद है तब तुम अपने स्वामीके शत्रुसे लड़नेको कब समर्थ हो सकते हो? इन शब्दोंसे रावणने भेदका बीज बोनेका प्रयत्न किया। मा० म० और बं० पा० के भाव भी युक्तियुक्त हैं।

नं० प०—नदीके करारके वृक्ष कमजोर होते हैं, वैसे ही तुम अपने पिताके मारे जानेसे और सुग्रीव अपने भाईके मारे जानेसे कमजोर हो।

जामवंत मंत्री अति बूढ़ा। सो कि होइ अब समरारूढ़ा॥ ४॥
सिल्पि-कर्म जानहिं नल नीला। है कपि एक महाबलसीला॥ ५॥
आवा प्रथम नगरु जेहिं जारा। सुनत बचन कह* बालि-कुमारा॥ ६॥

शब्दार्थ—**शिल्प**=हाथसे कोई चीज बनाकर तैयार करनेका काम, दस्तकारी। **आरूढ़**=चढ़ा हुआ, दृढ़। यथा—*'खर आरूढ़ नगन दस सीसा।'*

अर्थ—जाम्बवन्त मन्त्री बहुत बूढ़ा है। वह अब रणमें क्या ठहर सकता है? (अर्थात् नहीं)॥ ४॥† नल-नील तो शिल्पकर्म जानते हैं (अर्थात् युद्धकलासे अनभिज्ञ हैं। शिल्पकार युद्ध-कर्म क्या जानें? कहीं ईंट-पत्थर जोड़नेवाला योद्धा होता है?) हाँ, सेनामें एक वानर अवश्य ही महाबलवान् है॥ ५॥ जो प्रथम आया था और जिसने लंका जलायी थी। यह वचन सुनते ही बालिकुमार बोले—॥ ६॥

---

* 'सुनि हँसि बोलेउ' का० और रा० गु० द्वि० का पाठ है। पंजाबीजी कहते हैं कि 'हँसि' बोलनेका भाव यह है कि यह हनुमान्‌जीसे बहुत डरा हुआ है। अथवा, उसके वचनोंके निरादरार्थ हँसे जो उसने कहा था कि कौन योद्धा है जो लड़ेगा। अथवा, यह समझकर हँसे कि अच्छा मौका है इसने इनकी प्रशंसा की है, अब युक्तिसे इनकी लघुता कहकर सबकी प्रशंसा कर सकूँगा।

† सरस्वती कृत अर्थ—'अतिबूढ़ा मन्त्री' अर्थात् ज्ञानवृद्ध है।

नोट—१ *'सो कि होइ अब समरारूढ़ा'* का भाव कि 'अति' वृद्ध होनेसे वह मरे हुएके समान है—*'अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा''''''जीवत सव सम'* (३०५। २—४) देखिये। नोट—२—रावणने 'महाबलशील' कहकर प्रथम हनुमान्‌जीकी प्रत्यक्ष प्रशंसा की क्योंकि उसका बल उनके सामने कुछ न चला था। फिर उसने उनका परिचय दिया कि प्रथम-प्रथम यहाँ आया था और जिसने लंका जलायी थी। नाम न लिया क्योंकि पूर्व हनुमान्‌जी या शुकने भी न बताया था। लंका जलानेमें प्रशंसा और निन्दा दोनों बातें निकलती हैं—प्रशंसा कि रावणके रहते वह नगर जला गया। निन्दा कि यह योद्धाका काम नहीं है, यह तो आततायीका काम है। एवं उसको यहाँ मेरे पुत्रने बाँधा और खूब उसपर मार पड़ी थी, यथा—*'लंक लाइ गयो जो बानर कौन नाम बखानिये। मेघनाद जो बाँधियो वहि मार्‍यो बहुधा तबै।'*—(रा० चं०)

टिप्पणी—रावणने सबकी लघुता कही पर हनुमान्‌जीकी प्रशंसा की। इसीसे ये उसके भयदर्शनार्थ हनुमान्‌जीको लघु कहकर उसका अभिमान तोड़नेके लिये बोले। वा, अङ्गद समझ गये कि बस अब यह कहना ही चाहता है कि बस ऐसे-ऐसे ही तो हैं और फिर कुछ दुःख देनेवाली बात कहेगा, इसलिये यही बात पकड़कर बोले।

वं० पा०—रावणने सबकी निन्दा की पर शिवजीको अपना इष्ट मान शत्रुवर्गमें भी उसने हनुमान्‌जीकी स्तुति की।

☞ विभीषण, नल, नील आदि जिनकी-जिनकी लघुता कही है, उन सबके द्वारा रावणकी दुर्दशा आगे युद्धमें दिखायी गयी है। इन सबने अपने बलका परिचय रावणको युद्धमें एक-एक करके दिया है।

सत्य बचन कहु निसिचरनाहा। साँचेहु* कीस कीन्ह पुरदाहा॥ ७॥
रावन नगरु अल्प कपि दहई। सुनि† अस बचन सत्य को कहई॥ ८॥

अर्थ—हे राक्षसराज! सच-सच कह, क्या सत्य ही वानरने तुम्हारा नगर जला दिया?॥ ७॥ रावणका नगर एक तुच्छ वानर जलावे, यह वचन सुनकर भला कौन इसे सच कहेगा? अर्थात् कोई विश्वास न करेगा॥ ८॥

नोट—१ (क) *'सत्य कहु, साँचेहु कीन्ह, सत्य को कहई'* के भाव कि दिग्विजयी रावणके देखते ऐसा होना विश्वसनीय नहीं है। यथा—*'कहु कपि रावन पालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका॥'* (सुं० ३३। ५) (ख) *'निसिचरनाहा'* का भाव कि एक तो राक्षस स्वयं महा बलवान्, दूसरे वानर उनके भक्ष्य हैं उसपर भी तू सबका राजा त्रैलोक्यविजयी है, तेरे नगरपर इन्द्रादि दृष्टि नहीं डाल सकते तब तेरे रहते कैसे नगर जला डाला गया? इससे जनाया कि तुझमें तो एक छोटे-से वानरका बल भी नहीं है।

नोट २ (क) *'रावन-नगरु'* का भाव कि जो त्रैलोक्यको रुलानेवाला है उसके सामने भला किसीकी ऐसी सामर्थ्य कब हो सकती है कि वह उसीको रुला देवे। (ख) *'अल्प कपि'* अर्थात् एक तो वानर जला सकता, यह असम्भव है, उसपर भी एक सबसे छोटा बन्दर ऐसा करे यह तो महान् आश्चर्यकी बात है। आगे इसीकी व्याख्या है।

☞ मिलान कीजिये—**'सोऽपि त्वं कमिहावगच्छसि पुरा योऽदाहि लाङ्गूलतो बद्धो मत्तनयेन हन्त स कथं मिथ्यावदन्नः पुरा किं लंकापुरदीपनं तव सुतस्तेनाहतोऽक्षो युधीत्युक्तः कोपभयत्रपाभरवशस्तूष्णीमभूद्रावणः॥** (हनु० ८। ५) अर्थात् क्या तू वही है? (अङ्गद) तुम किसको समझ रहे हो? (रावण) जिसने लांगूलसे लङ्का जला दी थी, जिसको हमारे पुत्रने बाँधा था। (अङ्गद) खेदकी बात है। क्या उसने लङ्कापुरीको जला दिया? क्या उसने तुम्हारे पुत्र अक्षयकुमारको मारा;—ऐसे कहे जानेपर रावण कोप, भय और लज्जाके वश हो चुप हो गया।

अङ्गद जान-बूझकर झूठ क्यों बोले?

(क) दूतका काम है कि जिसमें शत्रुको पीड़ा पहुँचे, उसका मानमर्दन हो वही कहे, यह न सोचे कि हम सत्य कहते हैं या झूठ। वा, (ख) हास्यसे कहा। जैसे उसने सबकी लघुता कहकर अपनेको

---

* साचेहु—भा० दा०। † 'को अस झूठ सुनै को कहई'—का०।

बड़ा बली जनाया वैसे ही इन्होंने हनुमान्‌जीकी लघुता कहकर सारी सेनाको उससे अधिक बलवान् जनाया। यही सभा-चातुरी है और हास्य है, यह आगे स्पष्ट हो जाता है।

पु० रा० कु०—अङ्गदने हनुमान्‌जीसे सब वृत्तान्त सुना है, यथा—*'चले हरषि रघुनायक पासा। पूछत कहत नवल इतिहासा॥'* फिर असत्य कैसे बोले? उत्तर—(१) धर्मशास्त्रकी आज्ञा है कि **'गोब्राह्मणाय हिंसायां वृत्त्यर्थं प्राणसंकटे। स्त्रीषु नर्मविवादेषु नानृतं स्याज्जुगुप्सितम्॥'** अर्थात् गोब्राह्मणकी हिंसा बचानेमें, अपनी वृत्तिके लिये, प्राण सङ्कटमें पड़े हुए समयमें, स्त्रियोंसे हँसी-दिल्लगीमें, या झगड़ेमें झूठ निन्दनीय नहीं है (२) दूसरे, अङ्गद रामसेवक हैं उन्होंने निजवृत्तिके अर्थ प्रभुकी प्रभुताके सूचक वचन कहे, इसलिये असत्यका दोष नहीं।

वीर—रावणने जैसी व्यंगोक्तिसे निन्दा की उसीके अनुकूल गूढ़ोत्तर बालिकुमारने दिया। यदि झूठ कहनेका अभिप्राय होता तो आगे चलकर *'सत्य पवनसुत मोहि सुनाई'* इत्यादि काहेको कहते। जानी हुई बातपर अनजानकी तरह आश्चर्य प्रकाश करते हुए उसे मिथ्या सिद्ध कर अङ्गदने अपने पूज्यवरोंको आक्षेपसे बचानेमें *'शठं प्रति शाठ्यं कुर्यात्'* की नीतिका अनुसरण किया।

प० प० प्र०—रावणके मन्त्री शुकने भी हनुमान्‌जीको सबसे छोटा कहा है। यथा—*'जेहि पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा। सकल कपिन्ह महँ तेहि बल थोरा॥'* (५। ५४। ७) अतः *'अल्पकपि'* कहनेमें दोष नहीं। शत्रुका उपहास करके उसकी दुर्बलता उसके सचिवादिको जनाकर उनको गलित धैर्य, हतवीर्य बनाने और अपने स्वामीकी प्रतिष्ठा बढ़ानेके लिये व्याजोक्तिमें ऐसा कहना दोष नहीं है किन्तु परम चतुरता है। अङ्गद-रावण-संवाद व्याजोक्ति-वक्रोक्तिका खजाना है। रावण और अङ्गदमें मानो वक्रोक्तिविषयक स्पर्धा ही लग रही है। अन्तमें वक्रोक्तिसे निर्वाह न हो सका तब शौर्य, बल, पराक्रमका प्रयोग ही अङ्गदको करना पड़ा। वाग्युद्धमें प्रायः दोनों बराबर रहे फिर भी एक स्थानमें अङ्गदकी जीत हुई।

नं० प०—शंकाका समाधान यह है—'अङ्गदका बयान सत्यके ऊपर है कि रावणकी लंकाको बंदरने जला डाला, इसे कौन सत्य कहेगा? कोई नहीं। **'कोई'** में अङ्गदजी आप भी शामिल होते हैं। और, जिसका नगर जलाया जब उसने स्वयं जलाना बयान किया तब सत्य जानना कहा है कि अब सत्य जाना। अर्थात् अङ्गद लंका-दहन सुननेको इनकार नहीं करते हैं किन्तु सुनकर सत्य माननेको इनकार किया है।

वि० त्रि०—*'नदी नाव पटु प्रश्न अनेका। केवट कुसल उतर सविवेका॥'* उत्तर समझानेके पहिले प्रश्नको समझना चाहिये। रावण कहते हैं कि *'तुम्हरे कटक माँझ सुनु अंगद। मोसन भिड़इ कवन जोधा बद॥ तव प्रभु नारि बिरह बलहीना। अनुज तासु दुख दुखी मलीना।'* इत्यादि। तो क्या ये सब बातें सत्य हैं? केवल बैठकबाजीकी बातें हैं। इनका उत्तर क्या सभ्य भाषामें देना सम्भव है? अतः मिथ्याध्वसित अलङ्कारका आश्रयण करके अङ्गदजी उत्तर देते हैं। जिसे रावण *'है कपि एक महा बलसीला'* कहते हैं, उसीको अङ्गदजी *'अल्प कपि'* बतलाते हैं, जिससे रावणके सब तर्क ही उलटे पड़ गये, और भी जितनी बातें कही हैं, उसीकी पुष्टिके लिये कही हैं। वस्तुतः हनुमान्‌जीको कपि कहनेपर अङ्गदजी क्रुद्ध हैं, और जो कुछ उनकी छोटाई कही, वह रावणकी उक्तिके खण्डनमें कही, नहीं तो आगे चलकर कहेंगे *'कस रे सठ हनुमान कपि गयउ जो तव सुत मारि।'*

जो अति सुभट सराहेहु रावन। सो सुग्रीव केर लघु धावन॥९॥
चलै बहुत सो बीर न होई। पठवा खबरि लेन हम सोई॥१०॥

शब्दार्थ—धावन=बहुत जल्दी या दौड़कर जानेवाला, दूत, हरकारा।—*'एहि बिधि सोचत भरत मन धावन पहुँचे आइ।'*

अर्थ—हे रावण! जिसकी तुमने अत्यन्त उत्तम योद्धा कहकर सराहना की है वह तो सुग्रीवका एक छोटा-सा हरकारा है॥ ९॥ जो बहुत चले वह वीर नहीं होता। हमने तो उसे केवल खबर लेने भेजा था॥ १०॥

पु० रा० कु०—७ *'लघु धावन'* का भाव कि सेनामें बहुत बड़े-बड़े थे, इसने तो सौ योजन ही लाँघा और तो सहस्रों योजन समुद्र लाँघ सकते हैं। [पुनः भाव कि बड़े धावन वे हैं जिन्होंने अवधिके

भीतर ही सातों समुद्र खोज डाले और लौटकर खबर दी। बड़ा धावन भी हो तो भी वह वीर थोड़े ही कहलायगा, हरकारा ही कहा जायगा। (बं० पा०)] पु० रा० कु० २—*'चलै बहुत।'* इनका वेग पवन और गरुड़से अधिक है, यथा—*'बेग जीत्यो मारुत प्रताप मार्तंड कोटि ····'* (क० सुं०) इसीसे शीघ्रगामी समझकर इन्हें भेजा था।

पु० रा० कु० ३—*'हम पठवा।'* भाव कि सुग्रीवने नहीं भेजा, वे तो लघुको कदापि न भेजते। उसे तो हमने भेजा था। *'पठवा खबरि लेन'* का भाव कि उसकी वीरोंमें गणना नहीं है, इसीसे हमने उसे केवल खबर लेने भेजा था। (मा० मुक्तावली)

नोट—*'चलै बहुत सो बीर न होई'* इति। भाव कि तुमने, जान पड़ता है कि उसे सौ योजन समुद्र लाँघनेसे वीर समझ लिया है, वह तो धावन है, चलनेवाला है, वीर नहीं है। मिलान कीजिये—**'यो युष्माकमदीदहत्पुरमिदं योऽदीदलत्काननं योऽक्षं वीरममीमरद्गिरिदरीर्योऽबीभरद्राक्षसैः। सोऽस्माकं कटके कदाचिदपि नो धीरेषु संभाव्यते दूतत्वेन इतस्ततः प्रतिदिनं सम्प्रेष्यते साम्प्रतम्॥'** (हनु० ८। ७)

अर्थात् जिसने तुम्हारे पुरको भस्म किया, जिसने तुम्हारे अशोकवनको विध्वंस किया, जिसने अक्षको मारा, जिसने पर्वतकंदराओंको राक्षसोंसे भर दिया—वह हमारी सेनामें कभी वीरोंमें तो नहीं समझा जाता, वह तो केवल दौत्यकर्ममें ही इधर-उधर भेजा जाया करता है। पुनश्च; **'यो लंकां समदीदहत्तव सुतं रक्षांसि चापीपिषद् यः कौशल्यमवीवदज्जनकजामब्धिं तथातीतरत्। यश्चाराममममूमुटत्स हनुमानस्मत्प्रवीरोद्यमे दूराक्रामणदौत्य एव न पुनर्योद्धुं समादिश्यते॥'** (हनु० ८। ८)'

अर्थात् जिसने लङ्का जला दी, अक्षको और राक्षसोंको मारा, जानकीजीसे कुशलसमाचार कहा और समुद्र पारकर वनको उजाड़ा, वह हनुमान् हमारी वीरताके उद्यममें केवल दौत्यकर्मको ही करनेवाला है। युद्धके लिये उसको कभी आज्ञा नहीं दी जाती।

दोहा—सत्य नगरु कपि जारेउ* बिनु प्रभु आयसु पाइ।
फिरि न गएउ सुग्रीव† पहिं तेहि भय रहा लुकाइ॥ २३ (क)॥
सत्य कहहि‡ दसकंठ सब मोहि न सुनि कछु कोह।
कोउ न हमारे कटक अस तो सन लरत जो सोह॥ २३ (ख)॥

अर्थ—क्या सत्य ही उस वानरने बिना प्रभुकी आज्ञा पाये नगर जला डाला? इसी डरसे वह लौटकर सुग्रीवके पास न गया, कहीं छिप रहा। हे दशग्रीव! तुम सब सत्य ही कहते हो, मुझे सुनकर कुछ भी क्रोध नहीं है। सत्य ही हमारी सेनामें कोई भी ऐसा नहीं है जो तुझसे लड़नेमें शोभा पावे। (भाव कि तुझसे लड़नेमें सब अपनी हीनता समझते हैं, तुच्छ निशाचरसे क्या लड़ें, कोई जोड़का होता तो लड़ते। यह बात आगे कहते हैं।)॥ २३ (क-ख)॥

नोट—१ (क) *'बिनु प्रभु आयसु'* अर्थात् उसे इतनी ही आज्ञा थी कि *'बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु॥'* (कि० २३। ११) यह उक्ति मानसकविकी है। हनु० ८ में रावणके पूछनेपर अङ्गदजीने छिपनेका कारण यह कहा है कि सबने, यह सुनकर कि राक्षसपुत्रने उसे बाँध लिया था, उसका तिरस्कार किया इस लज्जासे न जाने वह कहाँ गया। यथा—**'बद्धो राक्षससूनुनेति कपिभिः संताडितस्तर्जितः स व्रीडार्तिपराभवो वनमृगः कुत्रेति न ज्ञायते॥'** (६)

(ख) बं० पा०—उत्तम दूतका कर्म, धर्म और कर्तव्य है कि आज्ञासे अधिक जो हो सके सब करे। अङ्गदका उत्तर व्यंगपूर्ण है। *'फिरि न गयउ'* में ध्वनि यह है कि कोरा लौटकर न गया, काम करके गया।

* अब जानेउ पुर दहेउ कपि। † गयउ न फिरि निजनाथ। ‡ कहेसि-(का०)

नं० प०—अङ्गदजीके सब वचन सत्य हैं। छिपने और *'निज नाथ पहिं'* न जानेका प्रमाण—*'नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी। सहसहु मुख सो जाइ नहिं बरनी॥ पवन तनय के चरित सुहाए। जामवंत रघुपतिहि सुनाए॥'* श्रीहनुमान्‌जीको स्वयं श्रीरामजीके पास जाकर श्रीजानकीजीका कुशल सुनाना चाहिये था क्योंकि उन्हींको मुद्रिका दी गयी थी और वे ही श्रीसीताजीको देखकर आये थे। पर वे जामवंतजीकी आड़में खड़े हैं और जाम्बवंतजीने कहा है। इस भावको लेकर लुकाना कहा है। इसी तरह *'तेहि भय'* का प्रमाण लीजिये—जब जाम्बवंतजीने हनुमान्‌जीका चरित सुनाया तब श्रीरामजीने हर्षित हो उनको पुनः हृदयसे लगाया और श्रीजानकीजीका कुशल पूछने लगे। कुशल-समाचार सुनकर तब फिर पूछा—*'कहु कपि रावन पालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका॥'*, तब, *प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना।'* श्रीरामजीने स्वयं आदरपूर्वक लङ्कादहन पूछा इससे जाना कि प्रभु प्रसन्न हैं। *'प्रसन्न जाना'* शब्दसे सूचित होता है कि इसके पूर्व प्रभु अप्रसन्न न हों ऐसा सन्देह उनको था, क्योंकि बिना आज्ञाके लङ्का जलायी थी। अत भयभीत थे। वह भय जाता रहा।

प० प० प्र०—सुं० दो० २९ की चौपाइयोंके पढ़नेसे यह ज्ञात होता है कि हनुमान्‌जी सुग्रीवजीके पास प्रथम नहीं गये; जब जामवंतादिने कहा कि *'नाथ काज कीन्हेउ हनुमाना'* तब *'सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ॥'* भाव कि लङ्कादहनादिकी बातें हनुमान्‌जीने स्वयं सुग्रीवजीसे नहीं कहीं। इस तरह अङ्गदका वचन असत्य नहीं है। (उनकी युक्ति बड़ी सुन्दर है। क्योंकि हनुमान्‌जी सुग्रीवके पास जानेमें सबसे पीछे हैं। *'फिरि न गयऊ सुग्रीव पहिं'* के अनुसार सुग्रीवके पास भयसे न जाना कहा गया है।

नोट—२ *'मोहि न सुनि कछु कोह।'* भाव कि तेरे वचन ललकारके हैं अतः क्रोध होना संभव था पर यह समझकर मैंने क्रोध न किया कि तुझपर क्रोध करनेसे यश न होगा। ☞ यह रावणके *'मो सन भिरिहि कवन जोधा बद'* का उत्तर है। इसमें स्तुतिके व्याजसे निन्दा है।

दो०—प्रीति बिरोध समान सन करिअ नीति असि आहि।
जौं मृगपति बध मेडुकन्हि भल कि कहै कोउ ताहि॥ २३ (ग)॥
जद्यपि लघुता राम कहुँ तोहि बधे बड़ दोष।
तदपि कठिन दसकंठ सुनु छत्रजाति कर रोष॥ २३ (घ)॥

अर्थ—प्रीति और विरोध बराबरवालेसे करे, यह नीति है। यदि सिंह मेढकोंको मारे तो क्या उसे कोई भला कहेगा?* यद्यपि तेरे वधमें श्रीरामचन्द्रजीकी लघुता है और बड़ा दोष है तो भी हे दशग्रीव! क्षत्रिय जातिका क्रोध कठिन होता है॥ २३ (ग-घ)॥

बं० पा०—**'ययोरात्मसमं वित्तं जन्मैश्वर्य्याकृतिर्भवः। तयोर्विवाहो मैत्री च नोत्तमाधमयोः क्वचित्॥'** (भागवत) अर्थात् जिनका धन, कुलीनता (जन्म), ऐश्वर्य, आकृति, भव (उत्पत्ति) अपने समान हो, उनमें विवाह, मित्रता आदि करनी चाहिये; अपनेसे उत्तम या मध्यममें कहीं ही उपयुक्त होती है।

नोट—यहाँ अपने दलके सब योधाओंको सिंह और रावणको मेढक कहा। सिंहकी शोभा मत्तगजगणके विदीर्ण करनेमें है वैसे ही हमारी शोभा बड़े-बड़े शूरवीरोंसे भिड़नेमें है। पुनः, जैसे मेढकवधसे सिंहकी शोभा नहीं वैसे ही चोरीसे परस्त्रीहरण करनेवालेके वधसे हमारी शोभा नहीं। यदि वह कहें कि लड़ेंगे नहीं तो आये क्यों और सीताजी उनको कैसे मिलेंगी? तो उसपर कहते हैं कि *'जद्यपि लघुता ·····'* अर्थात् तेरे वधसे उनकी शोभा नहीं वरन् लघुता होगी, पर यदि तू समझानेसे नहीं ही मानेगा और नीचता करता ही जायगा जिससे उन्हें क्रोध उत्पन्न हो तो समझ ले कि वे क्षत्रिय हैं, क्रोध आनेपर फिर कुछ विचार, यश-अपयशका न रह जायगा और वे तुझे मार ही डालेंगे। अपयश होगा, कोई भला न कहेगा, यही

* 'अपि जलधरपोतो लेढि किं स्वल्पकुल्यामपि मशककुटुम्बं केशरी किं विनष्टि॥' अर्थात् बादलका छोटा बच्चा क्या छोटी-छोटी नदियोंको चाटता है? क्या सिंह मशकोंका नाश करता है? (र० ब०)

'बड़ दोष' है। किसी-किसीका मत है कि ब्राह्मणवध होगा, यह दोष है, पर प्रसङ्ग सिंह और मेढकका चला आता है। उसीसे यहाँ तात्पर्य है। ब्राह्मण भी यदि आततायी हो तो उसके वधमें दोष नहीं है। भगवान् श्रीकृष्णजीके वचन अर्जुनके प्रति प्रसिद्ध ही हैं कि **'ब्रह्मबन्धुर्न हन्तव्य आततायी वधार्हण:।'**—(आ० २८ सीताहरणरहस्य देखिये)। यहाँ 'कारण-निबन्धना-अप्रस्तुत-प्रशंसा' अलंकार है।

टिप्पणी—१ तात्पर्य यह है कि क्रोध होनेसे लोग अनुचित भी कर बैठते हैं, क्रोधमें विचार नहीं रह जाता, यथा—*'लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि क्रोध पाप कर मूल। जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं बिस्व प्रतिकूल॥'* (१। २७७) टिप्पणी २—क्षत्रिय जातिका रोष सबसे अधिक होता है, क्रोधरूपी तलवारसहित क्षत्रिय महाप्रबल होते हैं। उनकी क्रोधरूपी तलवार बड़ी तीक्ष्ण होती है—**'क्रोधो ह्यसिर्महातीक्ष्ण:'** (वाल्मी० ६। २। २०) में इसीलिये सुग्रीवने रामजीसे क्रोधका अवलम्बन लेनेको कहा है क्योंकि उससे सब डरते हैं—**'सर्वे चण्डस्य बिभ्यति।'**

दो०—बक्र उक्ति धनु बचन सर हृदय दहेउ रिपु कीस।
प्रतिउत्तर सडसिन्ह मनहु काढ़त भट दससीस॥ २३ (ङ)॥

शब्दार्थ—**बक्र उक्ति** =वक्रोक्ति। यह एक प्रकारका अलंकार है जिसमें काकु या श्लेषसे वाक्यका और-का-और अर्थ किया जाता है। यथा—**'वक्रोक्तिः श्लेषकाकुभ्यामपरार्थप्रकल्पनम्। नानार्थसंश्रयः श्लेषः। काकुस्त्रियां विकारो यः शोकभीत्यादिभिर्ध्वनेः॥'** (अमर०) अर्थात् श्लेष और काकुद्वारा दूसरे अर्थकी कल्पना करनेको वक्रोक्ति कहते हैं। अनेक प्रकारके अर्थोंका आश्रयण श्लेष कहलाता है। **सँड़सी** (सं० संदंश)=पतले छड़ोंका एक प्रकारका सँड़सा होता है जिसके दोनों छड़ोंका अगला भाग अर्द्धवृत्ताकार मुड़ा हुआ होता है। इससे पकड़कर प्रायः चूल्हेपरसे गरम बटुली आदि गोल मुँह वाले बर्तन उतारते हैं। जँबूरी।

अर्थ—वक्रोक्तिरूपी धनुषसे वचनरूपी बाण मारकर वानर अङ्गदने शत्रुका हृदय जला दिया। योद्धा रावण उन बाणोंको मानो प्रत्युत्तर रूपी सँड़सियोंसे निकाल रहा है॥ २३ (ङ)

टिप्पणी—१ वक्रोक्तिको धनुष कहा क्योंकि दोनोंमें टेढ़ेपनकी समता है। *'हृदय दहेउ रिपु'* से अङ्गदकी उक्तिकी उत्तमता सूचित की। धनुर्धरके धनुषबाणकी यही बड़ाई है कि वह शत्रुके हृदयको वेध डाले। यथा—**'किं कवेस्तस्य काव्येन किं काण्डेन धनुष्मतः। परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति तत्क्षणात्॥'** अर्थात्—कविकी उस कवितासे क्या और धनुर्धारीके उस धनुषसे क्या (अर्थात् वे व्यर्थ हैं) जिसने अन्य हृदयमें लगकर उसको उसी समय चूर्ण-विचूर्ण न कर दिया।

टिप्पणी—२—'प्रत्युत्तर' इति। *'जनि जलपसि जड़ जंतु कपि……'* इत्यादि प्रत्युत्तर सँड़सी हैं जिससे वह चुभे हुए बाणोंको निकालता है। अतएव भट है क्योंकि किंचित् भी क्षोभको नहीं प्राप्त होता।

पं०—१ बाण सीधे हैं वैसे ही वचन देखनेमें सीधे हैं पर वे वक्रोक्तिके साथ लगे हुए हैं। २—प्रति उत्तररूपी सँड़सीसे निकालता है। भाव कि प्रबल यथार्थ उत्तर तो आता नहीं इससे केवल हँसी आदि रूपी उत्तरसे हृदयकी जलन निकालता है। (रा० प्र०)

नोट—'दशकंठ, दशशीश' शब्दोंका भाव कि तू इस अभिमानमें न रह कि दस सिर कहाँतक कोई काटेगा, क्योंकि प्रभु प्रतिज्ञा कर चुके हैं।

दो०—हँसि बोलेउ दसमौलि तब कपि कर बड़ गुन एक।
जो प्रतिपालै तासु हित करै उपाय अनेक॥ २३ (च)॥

अर्थ—तब रावण हँसकर बोला कि कपिका एक बड़ा गुण यह है कि जो उसका पालन-पोषण करता है उसका वह अनेक उपायोंसे हित करता है॥ २३ (च)॥

टिप्पणी—१-हँसकर बोलनेका भाव कि अङ्गदके वचनको कुछ न माना, उनका निरादर किया। टिप्पणी-२—*'कपिकर गुन एक……।'* यह सँडसी है। टिप्पणी—३—['दशमौलिका भाव कि दसोमुखोंसे हँसा।] २४ (१) देखिये।

धन्य कीस जो निज प्रभु काजा। जहँ तहँ नाचै परिहरि लाजा॥ १॥
नाचि कूदि करि लोग रिझाई। पति हित करै धर्म निपुनाई॥ २॥

अर्थ—अरे वानर! तू धन्य है कि अपने स्वामीके कार्यके लिये लज्जा छोड़कर जहाँ-तहाँ नाचता है॥ १॥ नाच-कूदकर लोगोंको रिझाकर स्वामीका हित करता है, यह उसके धर्मकी निपुणता है॥ २॥

रा० चं० शुक्लजी—रावण और अङ्गदके संवादमें दोनोंकी 'व्याज निन्दा' बहुत ही अच्छी है। रावणके इस वचनसे कुछ बेपरवाई झलकती है। बन्दरोंका आदमीके हाथमें पड़कर नाचना-कूदना एक नित्यप्रति देखी जानेवाली बात है।—[*'धन्य'; 'धर्म निपुनाई'* में व्यंग यह है कि तुझे धिक्कार है, तू निर्लज्ज है। यहाँ 'व्याज निन्दा' और 'लक्षणामूलक व्यंग हैं।]

टिप्पणी—*'तासु हित करै उपाय अनेक'·····'निज प्रभु काजा। जहँ तहँ नाचै॥'* भाव कि अपने स्वामीके हितार्थ लङ्कावासियोंको नाचकूदकर रिझा रहा है, सेवक-धर्म निबाहनेके लिये ऐसा कर रहा है। नट बन्दरको नचाता है, वैसे ही इसका स्वामी इसे नचाता है। अच्छी जगह नाच नाचने आया है क्योंकि यहाँ मैं गुणग्राहक हूँ।

अंगद स्वामि भक्त तव जाती। प्रभु गुन कस न कहसि एहि भाँती॥ ३॥
मैं गुनगाहक परम सुजाना। तव कटु रटनि करौं नहिं काना॥ ४॥

शब्दार्थ—*गुणग्राहक*=गुणोंकी खोज करनेवाला, गुणियोंका आदर करनेवाला, कदरदान। *'रटनि'*—बारंबार एक ही बातको उच्चारण करना, वचन, बोल।

अर्थ—हे अङ्गद! तेरी जाति स्वामिभक्त है, (तब) तू अपने स्वामीका गुण इस प्रकार कैसे न कहे (अर्थात् स्वामिभक्तको स्वामीकी बड़ाई करना योग्य ही है)॥ ३॥ मैं गुणग्राहक और परम सुजान हूँ; इसीसे तेरी कडुवी रटन (रटी हुई बातों) पर ध्यान नहीं देता। (यह समझकर कि यह तो स्वामिभक्त है ऐसा कहेगा ही, स्वभाव छूट नहीं सकता, अतः बकने दो)॥ ४॥

नोट—१ *स्वामि भक्त तव जाती'* इससे सब वानरसेनाको भी निर्लज्ज करार दिया, जो बातें ऊपर अङ्गदको कहीं, वही उनकी जाति भरके लिये सूचित की, यथा—*'धन्य कीस जो निज प्रभु काजा।'*·····। इत्यादि।' पुनः, भाव कि तुम्हारी जातिका यह स्वभाव है, तब तुम भी तो उसीमें हो, तुममें भी यह गुण हुआ ही चाहे।

नोट—२ *'परम सुजान'* का भाव कि—(क) राजा सभी सुजान होते हैं, वे सबका गुण अपनी सुजानतासे जानकर सबका सम्मान करते हैं, यथा—*'साधु सुजान सुसील नृपाला॥'·····'सुनि सनमानहिं सबहि सुबानी। भनिति भगति नति गति पहिचानी॥'* (१। २८। ८, ९) और मैं तो दिग्विजयी राजा हूँ इससे परम सुजान हूँ। तब मैं तेरे गुणोंका सम्मान क्योंकर न करूँ? पुनः परम सुजान हूँ। अतः गुण जान लेता हूँ और गुणग्राहक हूँ अतः सम्मान करता हूँ। कटु वचनपर ध्यान नहीं देना यही यहाँ आदर है।

नोट—३ *'करउँ नहिं काना'* से जनाया कि ये वचन अनर्गल हैं, सुनने या ध्यान देने योग्य नहीं है। यह भी गुण सुजानका है कि व्यर्थ बातोंपर ध्यान न दे। यथा—*'सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना। बालक बचन करिय नहिं काना॥'* (१। २७९। २)

वीर—यहाँ आत्मप्रशंसासे अङ्गदको मूर्ख बकवादी ठहरानेका भाव व्यञ्जित होना 'वाच्यविशेष व्यङ्ग' है।

कह कपि तव गुन गाहकताई। सत्य पवनसुत मोहि सुनाई॥ ५॥

अर्थ—अङ्गद बोले कि तेरी गुणग्राहकता सत्य है, पवनसुतने सत्य ही मुझे सुनायी है॥ ५॥

नोट—१ *'सत्य पवनसुत मोहि सुनाई'* से सिद्ध हुआ कि पूर्व जो हनुमान्‌जीका छिप रहना आदि कहा था, वह केवल रावणका गर्व चूर्ण करने और जैसेको तैसा उत्तर देनेके ही निमित्त था।

नोट—२ जब लघुता कही तब लघु शब्द *'कीस' 'अलप कपि'* आदि पद दिये, यथा—*'साँचेहु कीस कीन्ह पुरदाहा', 'रावन नगर अलप कपि दहई' 'सत्य नगर कपि जारेउ'·····।'* और जब प्रशंसा करनेको हुए तब बड़ा और पराक्रमसूचक *'पवनसुत'* पद दिया।

नोट—३ जब कपिकी लघुता कही तब 'नगर' बड़ा पद और 'कपि' छोटा पद दिया—'*रावन नगर अलप कपि दहई*' '*सत्य नगर कपि जारेउ।*' जब आश्चर्य प्रकट किया तब एवं जब पराक्रमरूपी गुण दिखाया तब 'पुर' छोटा पद दिया और 'कीस' तथा 'पवनसुत' बड़े पद दिये। यथा—'*साँचेहु कीन्ह कीस पुर दाहा', बन बिधंसि सुत बधि पुर जारा। तदपि न तेहि (पवन सुतकर) कछु कृत अपकारा॥*'

बन बिधंसि सुत बधि पुर जारा। तदपि न तेहिं कछु कृत अपकारा॥ ६॥
सोइ बिचारि तव प्रकृति सुहाई। दसकंधर मैं किन्हि ढिठाई॥ ७॥

शब्दार्थ—**अपकार**=बुराई, अहित, हानि, अनादर।

अर्थ—अशोक वनको विध्वंस करके, पुत्रको मारकर उसने नगरको जलाया तो भी (तुम्हारी समझमें) उसके द्वारा तुम्हारा कोई अपकार नहीं किया गया॥ ६॥ वही तेरा सुन्दर स्वभाव विचारकर, रे दशकन्धर! मैंने ढिठाई की॥ ७॥

नोट—१ '*बन बिधंसि*''''' इति। अब बतलाते हैं कि हनुमान्‌जीने क्या 'गुणग्राहकता' सुनायी थी, क्या गुण तुमने हनुमान्‌जीमें देखे और क्या आदर उनका किया। नोट २—अशोकवन-विध्वंस, अक्षवध और लंकादहन तीन गुण देखे, इसीसे कुछ दण्ड न दिया। यह गुणोंका आदर तुम्हारी ओरसे तब हुआ जब तुमने गुणको ग्रहण किया अर्थात् स्वयं भोग लिया। वन उजाड़ना कपिस्वभाव है इसीसे वन उजाड़नेपर न बोले। व्यङ्ग यह है कि तुमने अकेलेके मारनेके लिये अनेक राक्षस योद्धा भेजे। फिर, अक्षको मारनेपर न बोले क्योंकि वानरस्वभावसे जो कपिने किया उसपर ये उससे जा लड़े, इन्हींका अपराध था; यथा—'*जिन्ह मोहिं मारा ते मैं मारा। तेहि पर बाँधेउ तनय तुम्हारा॥*' व्यङ्ग यह है कि तू इतना नीच है कि तब भी तूने दूतको बँधवाया और उसको मारनेकी आज्ञा दी। यथा—'*बेगि न हरहु मूढ़कर प्राना।*' नीति-धर्म विरुद्ध करने लगा, तब विभीषणने अनीतिसे बचाया। तब भी पूँछमें आग लगाकर जलाना चाहा। फिर उसने नगर जलाया। तब भी तुमने दण्ड न दे उसका आदर किया कि वानरका स्वभाव ही तो है कि '*नाचि कूदि करि लोग रिझाई।* ''''', वा, अग्निका स्वभाव है जलाना—(२८। १-२) देखिये। इसमें व्यङ्ग यह है कि तुमने बसभर सब उपाय किये पर एक न चली। इसी तरह तुम मनमें समझते हो कि इसका कुछ कर तो सकते ही नहीं इसीसे कोरी बातें गढ़ते जाओ। रा० चं० प्र० १६। ८ से मिलान कीजिये, यथा—'*श्रीरघुनाथ को बानर केशव आयो हो एक न काहू हयो जू। सागर को मद झारि चिकारि त्रिकूट की देह बिदारि गयो जू॥ सीय निहारि सँहारिकै राक्षस शोक अशोक बनी हि दयो जू। अक्षकुमारहि मारि कै लंकहि जारि कै नीकेहि जात भयो जू॥*'

'*सोइ बिचारि तव प्रकृति सुहाई।*''''' इति। (क) तुमने जब पवनसुतके इतना करनेपर भी बुरा न माना और भलाई समझी तो ऐसे अच्छे स्वभावको देखकर मुझे भी आशा हुई कि मेरी ढिठाईको भी तुम उसी भली निगाहसे देखोगे और बुरा न मानोगे। यही समझ मैंने भी तुम्हारे एक लड़केको मारा और तुमको कटु वचन कहे। (ख) '*सुहाई*' कहकर 'असुहाई' अर्थात् नीच और मलिन सूचित किया। व्यञ्जना यह है कि तुम ऐसे कायर और असमर्थ हो कि न हनुमान्‌जीका कुछ कर सके और न मेरा कुछ कर सकोगे। इसीलिये मैंने भी उसी तरह निःशंक व्यवहार किया है।

देखेउँ आइ जो कछु कपि भाषा। तुम्हरे लाज न रोष न माषा॥ ८॥
जौं असि मति पितु खाएहु कीसा। कहि अस बचन हँसा दससीसा॥ ९॥

अर्थ—जो कुछ हनुमान्‌जीने कहा था वह आकर मैंने प्रत्यक्ष देखा कि तुममें न लज्जा है, न रोष है और न माष है॥ ८॥ (रावण बोला—) 'अरे वानर! जब तुम्हारी ऐसी बुद्धि है तभी तो तूने अपने बापको खा लिया (मरवा डाला)', ऐसे वचन कहकर दशशीश (दसों मुखोंसे) हँसा॥ ९॥

नोट—१ (क) '*देखेउँ आइ*' का भाव कि सुनकर विश्वास न होता था कि त्रैलोक्यविजयी प्रतापी रावणमें लज्जा, रोष और माष न होंगे, स्वयं देखनेपर प्रतीति हुई कि उनने सत्य कहा था। (ख) '*तुम्हरे*

लाज न····' इति। भाव कि लज्जा होती तो तुम डूब मरते, यथा—*'सुनी हमहु परतिय कृत चोरी॥ देखी नयन दूत रखवारी। बूड़ि न मरहु धर्मब्रतधारी॥'* भाव कि ये सब लज्जित करनेवाले कर्म हैं पर तुम्हें लज्जा नहीं। रोष होता तो बहिनकी नाक-कान काटनेवालेको क्षमा करके घरमें चुपके न बैठ रहते। २२ (५-७) देखिये। 'माष' होता तो मेरे गर्वहारी कटु वचन न सह सकते, पर तुम सुनते हो और बोलते नहीं।

☞ माष 'दम्भ, दोष छिपानेकी प्रवृत्ति, रोष, अधीरता, असहनशीलता।' यहाँ 'असहनशीलता' अर्थ लिया गया है। बलका गर्व होनेसे दूसरेके प्रतिकूल वचन न सह सकनेका भाव *'माष'* है। यथा—*'अब जनि कोउ माषै भट मानी। बीर बिहीन मही मैं जानी॥'* (१। २५२। ३), *'माषे लषन कुटिल भैं भौंहैं। रदपट फरकत नयन रिसौंहें॥'* (१। २५२। ८), *'देखि रसाल बिटप बर साखा। तेहि पर चढ़ेउ मदन मन माषा॥'* (१। ८७। १), *'भट मानी अतिसय मन माषे। परिकर बाँधि उठे अकुलाई।'* (१। २५०। ५-६) माष अन्तःकरणका विकार है और रोष बाहरका; यथा—*'मुनि तन भएउ क्रोध कर चीन्हा', 'रिस बस कछुक अरुन होइ आवा', 'रदपट फटकत नयन रिसौंहें'*—ये बाहरके चिह्न क्रोधके हैं। 'माष'—दोहा २४ में भी देखिये।

गौड़जी—'माष' क्रिया 'मक्ष' और 'अमर्ष' दोनोंसे बनी हुई मानी जा सकती है। 'मक्ष' का अर्थ है—दम्भ, दोष छिपानेकी चालाकीसे कोशिश। 'मर्ष' सहनशीलताको कहते हैं। 'अमर्ष' का अर्थ हुआ 'अधीरता', 'असहनशीलता' और इसीलिये 'रोष' और 'क्रोध' भी जो असहनशीलता और अधीरतासे होता *'माषे लखन'*···इत्यादि' प्रसङ्गमें न सह सकनेका भाव 'माषे' से निकलता है। यहाँ भी रावणके 'माष' नहीं है, अर्थात् रावण 'सह लेता' है। चालाकीसे दोष छिपानेकी कोशिश भी करता है, अतः 'मक्ष' से बनी हुई 'माष' क्रिया भी मानी जा सकती है। 'रोष' लक्ष्यार्थ है और इस प्रसङ्गमें इस अर्थके लिये जानेसे पुनरुक्ति होगी।

नोट—२ **'असि मति'** यह कि जो अपकार न माने और सह ले उसके साथ अपकार करनेमें जो तुम हर्ज नहीं समझते, तुम्हारी ऐसी बुद्धि है, तभी तो तुमने अपने बापको ही मरवा डाला; क्योंकि तुम अपने बापके दुश्मनोंसे मिले रहते थे, तब भी बाली अपकार नहीं मानता था। इसी उसके सहनेवाले स्वभावके कारण तुम बढ़ते ही गये और अन्तमें उसे मरवा ही डाला। तुम्हारी लायकी इस दरजेपर पहुँची। तुममें लज्जा और रोष होता तो क्रोध करके सुग्रीव और रामसे बापका बदला लेते, माताको सुग्रीवकी पत्नी बनी देख लज्जासे डूब मरते और तापसके दूत न बनते।

नोट—३ *'हँसा'* इस प्रत्युत्तरसे भी उसे संतोष न हुआ। इसीलिये कमीकी पूर्त्तिके लिये निरादर सूचित करते हँसा।

पितहि खाइ खातेउँ पुनि तोही। अबहीं समुझि परा कछु मोही॥ १०॥
बालि बिमल जस भाजन जानी। हतौं न तोहि अधम अभिमानी॥ ११॥
कहु* रावन रावन जग केते। मैं निज श्रवन सुने सुनु तेते†॥ १२॥

अर्थ—(अङ्गद बोले कि चाहिये तो यह था कि) पिताको खाकर फिर तुझको खाता, पर अभी-अभी कुछ बात मेरे विचारमें आयी (जिससे न खाया)॥ १०॥ अरे अधम और अभिमानी! बालीके निर्मल यशका पात्र जानकर मैं तुझे नहीं मारता, छोड़ देता हूँ॥ ११॥ अरे रावण! बता तो सही कि जगत्‌में कितने रावण हैं? मैंने जितने अपने कानों सुने हैं उनको सुन॥ १२॥

नोट—१—*'खातेउँ पुनि तोही'* का भाव कि तुम उसके मित्र हो, इससे तुमको भी खानेवाला था। नोट—२—*'बिमल जस भाजन जानी'* का भाव कि जबतक तू जीता रहेगा तबतक सब बालीकी कीर्ति कहेंगे कि अरे यही पर्वताकार, बीस भुजा दस सिरवाला दिग्विजयी रावण बालीकी काँखमें महीनों दबा रहा, यह वही है जिसको बालीका पुत्र पैरोंसे मार-मारकर गेंदकी क्रीड़ा करता था, इत्यादि। यदि तू मर जायगा तो बालीकी कीर्तिका स्मरण कौन करायेगा? किसको देखकर लोग बालीके भुजबलका अंदाजा

* सुनु। † जेते—(का०)।

कर सकेंगे? यथा—'**मम जनकदोर्दण्डविजयस्फुरत्कीर्तिस्तम्भः।**' '**हन्यात्किं नाङ्गदस्त्वामतिपुरुषरुषा तातकक्षावशिष्टः प्रोद्धृत्योद्धृत्य पादप्रहतबहुशिरःकन्दुकैः क्रीडितोऽस्मि।**' (हनुमन्नाटक ८। ३८, ४६) अर्थात् तुझे घोर क्रोधसे मैं अङ्गद क्यों नहीं मारता? कारण कि तू हमारे पिताकी काँखमेंसे बचा हुआ है और मैं भी अपने चरणोंके तलवोंसे तेरे बहुत सिरोंसे गेंदकी क्रीड़ा करता रहा हूँ। नोट—३—यहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।

वि० त्रि०—'**पितहिके खा**' यह आसुरी प्रकृतिके लोगोंकी बोली है, जो कि किसी प्रियके मरणके सहन करनेवालेपर बोली जाती है। आसुरी प्रकृतिके शिरोमणि रावण यही बोली अङ्गदपर बोले कि जब तुम 'लाज, रोष और माष' का न होना गुण समझते हो, तभी तुम्हें बापके मारे जानेपर लाज, रोष और माष न हुआ और पितृहन्ताकी सेवा स्वीकार की। अङ्गदजी उसीके शब्दोंमें उत्तर देते हैं कि रामविरोधीका वध मुझे इष्ट है, तुम भी रामविरोधी हो, तुम्हारे वधके लिये ही मैं यहाँ आया था, पर एक बात अभी मेरे मनमें आ गयी कि पिताका भौतिक शरीर तो नष्ट हो गया, पर उसका कीर्तिमयी शरीर तेरे जीते रहनेसे बना है। लोग कहते हैं कि रावणको बालीने काँख-तले दाब लिया था, पर दया करके छोड़ दिया और राज्य भी नहीं लिया। सो तू उनका कीर्त्तिस्तम्भ है, उसे मैं हाथसे कैसे तोड़ूँ।

नोट—४ '**रावण जग केते**······'। भाव यह कि रावण तो एक ही है और उसीके ये सब चरित हैं जो मैं कहता हूँ, पर तू संकुचित होगा, बतायेगा नहीं। पुनः, जितने हैं वह सब मैं गिनाता हूँ। इनमेंसे कम-से-कम एक तो स्वीकार करेगा, इतनेसे ही शूरता प्रकट हो जायगी। इस बहाने रावणकी जहाँ-जहाँ हार हुई वह सब अङ्गदने सभामें कह डाला।

बलिहि जितन एकु गयउ पताला। राखेउ* बाँधि सिसुन्ह हयसाला॥ १३॥
खेलहिं बालक मारहिं जाई। दया लागि बलि दीन्ह छोड़ाई॥ १४॥

अर्थ—एक तो बलिको जीतनेके लिये पातालमें गया था तब लड़कोंने उसे घुड़शालमें बाँध रखा था॥ १३॥ बालक खेलते थे और जा-जाकर मारते थे। बलिको दया लगी तब उन्होंने उसे छुड़ा दिया॥ १४॥

'बलिहि जितन एकु गयउ'

दिग्विजय करता हुआ रावण वहाँ इससे गया कि उसने सुन रखा था कि उनकी ड्योढ़ीपर एक दरवान बड़ा बली है; जिसके कारण कोई बलिको जीत नहीं सकता। अतः यदि बलिको जीत लूँगा तो सबपर जीत मानी जायगी। पर यहाँ भगवान्ने अपना बल बालकोंको देकर उसके पीछे लगा दिया। उन्होंने पकड़कर घुड़शालमें उसे बाँध दिया। अङ्गदके वचनोंमें आशय यह है कि बच्चोंसे न जीत सका तब बलिके जीतनेकी बात ही क्या कही जाय?—(पता नहीं कि यह कथा कहाँकी है)। वाल्मीकीयमें कथा यों है कि—राजा बलिने इसे पकड़कर गोदमें बिठा लिया—'**स गृहीत्वा च तद्रक्ष उत्सङ्गे स्थाप्य चाब्रवीत्॥**' (७। २४। २८)—और कहा कि हम तुम्हारी कौन वासना पूर्ण करें, यहाँ आनेका प्रयोजन कहो। वह बोला कि विष्णुने तुमको बाँधा था, हम तुमको छुड़ानेको समर्थ हैं। बलिने मुसुकाकर उत्तर दिया कि द्वारपर जो साँवले पुरुष विराजमान हैं इन्होंने समस्त बलवान् दानवेन्द्रोंको वश कर लिया, इनको कौन वशमें कर सकता है? इत्यादि······कहते हुए वह रावणसे बोले कि तुम्हारे सामने जो अग्निके समान चक्र पड़े हुए हैं उन्हें उठाकर हमारे पास लाओ तब फिर मैं तुमसे अव्यय मुक्तिके कारणकी व्याख्या करूँगा। रावण न उठा सका। लज्जाके मारे फिर उठानेका यत्न किया जिससे वह पृथ्वीपर गिर पड़ा, रुधिर निकल पड़ा और वह मूर्छित हो गया। मूर्छा जगनेपर उसे बलिने पास बुलाकर कहा कि जिस कुण्डलके उठानेकी चेष्टा तुमने की वह हमारे पूर्वज हिरण्यकशिपुके कानका आभूषण है जो यहाँ गिरा था। दूसरा कुण्डल पर्वतपर गिरा है। उनकी मृत्यु किसी अस्त्र-शस्त्रसे न थी; पर प्रह्लादसे झगड़ा ठाननेसे नृसिंहभगवान्ने उनका विनाश नखोंसे कर डाला।—पर अङ्गदके वाक्यमें यह कथा नहीं है।

* राखा—पाठान्तर।

(ख)—आ० रा० १। १३। १०८—११५ मेंकी कथा यहाँ कुछ-कुछ मिलती है। वह इस प्रकार है—'राजा बलि स्त्रीके साथ पाँसा खेल रहे थे। रावण वहाँ जा खड़ा हुआ। कुछ देर बाद पाँसा दूर जा गिरा, तब राजा बलिने कहा कि जा पाँसा उठा ला। रावण न उठा सका और रोने लगा। तब एक दासीने उसे मार भगाया और पाँसा लाकर राजाको दे दिया। रावणको नौकरोंने रख लिया, वह घुड़शालका लीद आदि उठाया करता और उसे जूठन खानेको मिलता""इत्यादि।

पर वहाँ छूटनेकी कथा यह है कि द्वारपालसे यह बहुत रोया-गाया, उसने लात मारी जिससे यह समुद्रमें आ गिरा।

नोट—*'दया लागि बलि दीन्ह छोड़ाई'* का भाव कि उसका छूटना उनकी दयापर निर्भर रहा, पुत्र-पौत्र, सेना आदिका साहस न पड़ा कि युद्ध करके छुड़ा लाते। इस प्रकार रावण और उसके परिवार सेना आदि सबको बल-पुरुषार्थहीन जनाया।

एक बहोरि सहसभुज देखा। धाइ धरा जिमि जंतु बिसेषा॥ १५॥
कौतुक लागि भवन लै आवा। सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा॥ १६॥

अर्थ—फिर एक रावणको सहस्रबाहुने देखा तो जैसे कोई विचित्र जन्तुको देखकर पकड़े उसी तरह उन्होंने उसको दौड़कर पकड़ लिया॥ १५॥ कौतुकके लिये वह उसे घर ले गया। तब पुलस्त्य मुनिने जाकर उसे छुड़ाया*॥ १६॥

नोट—१ *'जिमि जंतु बिसेषा'* इति। (क) भाव कि जैसे वर्षादि कालमें अनेक प्रकारके विचित्र जीव देखनेमें आते हैं, लड़के कौतुकके लिये उन्हें पकड़ रखते हैं, वैसे ही दस सिरवाला कीड़ा जानकर इसे पकड़ लिया। *'जन्तु'* कहकर उसको असमर्थ और तुच्छ जनाया। (ख) ☞ रावणने अङ्गदको जन्तु कहा था—*'जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि।'* (२२) उसका बदला यहाँ उसको मिला।

नोट—२ (क) *'भवन लै आवा'* से जनाया कि घरसे दूर कहीं पकड़ा था। घरमें लड़कोंके लिये मानो खिलौना खेलनेको लाया; क्योंकि दससिरका यह विचित्र ही जीव सबने तभी देखा होगा। (ख) ***'सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा।'*** भाव कि याचक बनकर उसे छुड़ाया, यथा—'**दोर्दण्डाहितपौत्रभिक्षुरभवद्यस्मिन् पुलस्त्यो मुनिः**'—(हनु० ८। ५७) अर्थात्—सहस्रार्जुनके बाहुबलसे बाँधे हुए अपने नाती 'रावणको छुड़ानेके लिये पुलस्त्य मुनि भिक्षुक हुए थे। वाल्मीकीयमें महर्षि पुलस्त्यजीने कहा है कि '**सोऽयं मृधे त्वया बद्धः पौत्रो मे रणदुर्जयः। पुत्रकस्य यशः पीतं नाम विश्रावितं त्वया॥ मद्वाक्याद्याच्यमानोऽद्य मुञ्च वत्सं दशाननम्। पुलस्त्याज्ञां प्रगृह्योचे न किञ्चन वचोऽर्जुनः॥**' (७। ३३। १६-१७) तुमने मेरे अजेय पौत्रको जीतकर बन्दी बना दिया। मेरे पौत्रका यश नष्ट कर दिया और अपना नाम प्रसिद्ध किया है। अब मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि तुम मेरे पौत्र दशग्रीवको छोड़ दो। महर्षिके वचन सुनकर अर्जुनने बिना कुछ कहे राक्षसराजको छोड़ दिया।

वाल्मी० उ० ३१—३३ में सहस्रार्जुनवाली कथा यों है कि—कार्तवीर्य अर्जुन महिष्मतीका राजा था। एक दिन वह स्त्रियोंसहित नर्मदामें जलविहार कर रहा था। उसी समय रावण उस स्थानके निकट पहुँचा और स्नानकर शिवपूजन करने लगा, तटपर पुष्पोंका ढेर लगा था। इधर अर्जुनने नदीका प्रवाह अपनी भुजाओंसे रोका जिससे जल किनारेपर उफलता हुआ बहने लगा और रावणके सब पुष्प बह गये। जलको उलटा बहते देख रावणने शुक-सारनको कारणका पता लगाने भेजा। पता लगनेपर समझ गया कि यह सहस्रार्जुन ही है और वह उससे युद्ध करने चला। मन्त्रियोंसे समाचार पाकर कि रावण सेनाका नाश कर रहा है सहस्रबाहु जलसे निकल, गदा लिये राक्षसोंपर दौड़े। प्रहस्त गिरा और साथके राक्षस भगे; तब रावणसे युद्ध होने लगा। अन्तमें उसने रावणको

* 'शप्तोऽप्यगणयन् वाक्यं ययौ हैहयपत्तनम्। तेन बद्धो दशग्रीवः पुलस्त्येन विमोचितः॥' (अ० रा० ७। २। ५७) अर्थात् नन्दीश्वरके शापको कुछ न गिनता हुआ वह हैहयपति सहस्रार्जुनके यहाँ गया। उसने रावणको बाँध लिया तब पुलस्त्यजीने जाकर उसे छुड़ाया।

ऐसी गदा मारी कि वह घायल हो चार हाथोंपर बैठ गया; इसी बीचमें उसे अर्जुनने पकड़कर बाँध लिया और नगरमें ले आया। आ० रा० १। १३। ९४-९५ में उल्लेख है कि सहस्रबाहुने गला बाँधकर उसे लाकर अपनी कन्याको दे दिया कि खेले जैसे काष्ठके हाथी खेले जाते हैं। इसी भावसे उसे 'जन्तुविशेष' कविने कहा है। अन्तमें पुलस्त्यजीने इसे जाकर छुड़ाया और मित्रता करा दी।

मानसी वन्दन पाठकजी लिखते हैं कि सहस्रबाहुने जलकी बाढ़ देख इसे जलमें ही पकड़ा इसीसे जलजन्तु जाना। पर कौतुक यह होता था कि सभामें खड़ा करके इसके ऊपर ३० दीपक रखकर जलाता था। पर यह कथा कहाँकी है इसका कोई प्रमाण नहीं दिया है।

दो०—एक कहत मोहि सकुच अति रहा बालि की काँख।
इन्ह* महुँ रावन तैं कवन सत्य बदहि तजि माष॥ २४॥

अर्थ—एकके बतानेमें तो मुझे अत्यन्त संकोच होता है; क्योंकि वह बालीकी काँखमें दबा रहा। इनमेंसे तू कौन रावण है? माष छोड़कर सत्य-सत्य कह। भाव कि ये सब घटनाएँ तुम्हींपर तो नहीं बीतीं?॥ २४॥

नोट—१ *'मोहि सकुच अति।'* 'सकुच' का कारण यह कि अपने मुँह अपनी बड़ाई करनेसे मनुष्य तुच्छताको प्राप्त होता है।—*'अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी॥ नहिं संतोषु त पुनि कछु कहहू।'* (१। २७४। ६-७) (परशुरामकी तुच्छता दिखानेके लिये ये वचन लक्ष्मणजीने कहे हैं। *'लाजवंत तव सहज सुभाऊ। निज मुख निज गुन कहसि न काऊ॥'* (२९। ६) भी देखिये। अपने घरकी बात है अतः यह अपनी ही बड़ाई हुई।) बालिसे रावणके पराजयकी कथा २१ (३) में आ चुकी है।

नोट—२—यहाँ *'माष'* शब्द मक्षसे निकला है और उसका अर्थ है 'दम्भ' वा चालाकीसे अपना दोष छिपाना। दम्भ छोड़कर सच-सच कहो। (गौड़जी) पूर्व कहा था कि *'तुम्हरे लाज न रोष न माषा'* और यहाँ कहते हैं कि *'बदहि तजि माष।'* जब *'माष'* है ही नहीं तब छोड़ना कैसा? अतएव यह निश्चय हुआ कि यहाँ *'माष'* का अर्थ असहनशीलता नहीं है।

२४ (१२)—२४ से मिलते हुए श्लोक ये हैं—**'रे रे रावण रावणाः कति बहूनेतान्वयं शुश्रुमः प्रागेकं किल कार्तवीर्यनृपतेर्दोर्दण्डपिण्डीकृतम्। एकं नर्तनदापितान्नकवलं दैत्येन्द्रदासीगणैरन्यं वक्तुमपि त्रपामह इति त्वं तेषु कोऽन्योऽथवा॥'** (हनु० ८। ३२।)' अर्थात् रे रे रावण! रावण कितने हैं? बहुतोंमेंसे मैंने कुछ सुने हैं—एकको सहस्रबाहुने अपने भुजदण्डोंसे बाँध लिया था, एकको दैत्येन्द्र राजा बलिकी दासियोंने नचाकर खानेको अन्न दिया था और एकको कहते हमें लज्जा लगती है। सो तू इनमेंसे कौन है?

वि० त्रि०—अङ्गदजी कहते हैं कि एक रावणका हाल कहनेमें मुझे संकोच मालूम होता है, पर वह रावण सङ्कोचसे डूब नहीं मरा। वह सङ्कोचकी बात यह है कि उसे बालीने काँख-तले दाब लिया और उसका किया कुछ न हुआ। आजतक संसारमें कहीं सुना नहीं गया कि कोई वीर अपने प्रतिद्वन्द्वीकी काँखमें दाबा गया हो एक वीरमानीकी इतनी बड़ी अप्रतिष्ठाके कहनेमें दूसरे वीरको लज्जा आती है, पर सुनते हैं कि उसे लज्जा न आयी। इस प्रकार तीन रावणोंकी गाथा मैंने सुनी है, उसमेंसे तुम कौन हो? यह बात माष छोड़कर बतला दो। इसमें तुम्हारा लाभ है, यदि तुम्हीं बालीकी काँखमें रहे हो तो फिर मुझसे तुम्हें भय नहीं है, मैं नहीं मारूँगा।

सुनु सठ सोइ रावन बलसीला। हर गिरि जान जासु भुजलीला॥ १॥
जान उमापति जासु सुराई। पूजेउँ जेहि सिर सुमन चढ़ाई॥ २॥
सिर-सरोज निज करन्हि उतारी। पूजेउँ अमित बार† त्रिपुरारी॥ ३॥

अर्थ—(रावण बोला) अरे शठ! सुन, मैं वही बलसे परिपूर्ण रावण हूँ जिसकी भुजाओंका चरित

* तिन्ह, माष—(का०)। माँष—(भा० दा०)। † अमित बार पूजेउँ—(का०)

एवं क्रीड़ा शिवजी और कैलास जानते हैं॥ १॥ जिसकी शूरता उमापति जानते हैं कि जिनकी पूजा मैंने अपने सिररूपी पुष्प चढ़ा-चढ़ाकर की॥ २॥ सिर-कमलोंको अपने हाथों उतारकर अगणित बार मैंने त्रिपुरदैत्यके शत्रु शिवजीकी पूजा की है॥ ३॥

नोट—१—*'हर गिरि'* से हर और गिरि दोनों जनाये। इसीसे यहाँ *'जान'* के साथ *'भुजलीला'* पद दिया। लीला है; इसीसे शिवजी इससे प्रसन्न हुए। आगे *'हरगिरि मथन निरखु मम बाहू'* कहा है। वहाँ *'हरगिरि'* से केवल कैलाससे तात्पर्य है। यद्यपि *'लीला'* और *'मथन'* का भाव एक ही है फिर भी दो जगह दो पृथक्-पृथक् शब्द देकर पृथक्-पृथक् भाव कविने दरसाये हैं। 'मथन' में दूसरेको क्लेश पहुँचानेका भाव है और *'लीला'* में प्रसन्नता पहुँचानेका। यहाँ शिवजीकी प्रसन्नता और वहाँ कैलासका पीड़ित होना दिखाया है। हनुमन्नाटकके उद्धरणोंसे इनके (जान, लीला और मथनके) भाव स्पष्ट हो जाते हैं—**'नासीदेतदनागतं श्रुतिपथं स्वर्लोकधूमध्वजः पौलस्त्यः करकन्दुकीकृतहरक्रीडावलो रावणः॥'** (८। ४१), **'हेलोत्क्षिप्तमहीध्रकम्पजनितवासांगनालिङ्गनप्राप्तानन्द हरप्रसाद मुदितश्चिन्त्यः सः मेऽन्यो रिपुः॥'** (८। ३५), **'यद्दोर्मण्डलगाढपीडनवशान्निस्पन्दरक्तच्छटाः शङ्कामङ्कुरयन्ति शङ्करगिरेरद्यापि धातुद्रवाः॥'** (८। ४२)

अर्थात् रामने सुना होगा कि स्वर्गलोक-धूमध्वजाके समान पुलस्त्यकुल उत्पन्न रावण शिवजीके क्रीड़ास्थल कैलासपर्वतको अपने हाथोंकी क्रीड़ाका गेंद बनानेवाला है। जब मैंने खेलसे ही कैलासको उठाया तब पर्वतके काँपनेसे पार्वतीजी शिवजीको लिपट गयीं। शिवजी बड़े प्रसन्न हुए। तब यह शत्रु (राम) क्या हैं? कोई मेरे जोड़का दूसरा शत्रु बता। जिसके भुजदण्डमण्डलकी गाढ़ पीड़ावश निकलते हुए रक्तके प्रवाहवाले कैलासके धातुस्थल आज भी शङ्काको प्राप्त होते हैं। (वही मैं रावण हूँ।)

नोट—२—*'जान उमापति जासु सुराई।'''* इति। (क) *'उमापति'* का भाव कि मैंने शक्तिसहित शिवजीकी पूजा की। *'जान उमापति'* अर्थात् मेरी *'सुराई'* के वे साक्षी हैं, उन्होंने प्रसन्न होकर वर दिये। (ख) कैलास उठानेको कौतुक मानता है अतः वहाँ *'लीला'* कहा। अपने हाथों अपना सिर काट-काटकर चढ़ानेके सम्बन्धसे अपनेको शूर समझता है, यथा—*'**सूर कवन रावन सरिख स्वकर काटि जेहि सीस। हुने अनल**'''* (२९) अतः यहाँ *'जान सुराई'* कहा। सिरको फूल कहकर जनाया कि सिर काटनेमें उत्साह बना रहा, खेद या कष्ट नहीं हुआ; जैसे पूजनके लिये पुष्प उतारे जाते हैं।

☞ मिलान कीजिये—**'आस्कन्धादपि कण्ठकाण्डविपिने द्राक् चन्द्रहासासिना छेत्तुं प्रक्रमिते मयैव झटिति त्रुट्यच्छिरः संततौ। अस्मेरं गलिताश्रुगद्गदवचो भग्नभ्रुवा यद्यभूद्वक्त्रेष्वेवमपि स्वयं स भगवाँस्तन्मे प्रमाणं शिवः॥ 'येऽहं पूर्विकया प्रहारमभजन्मां छिन्धि मां छिन्धि मां, छिन्धीत्युक्तिपराः पुरारिपुरतो लंकापतेर्मौलयः॥ मूले पञ्च ततश्चतुष्टयमिति स्त्रक्सन्निवेशैः शिरःपुष्पैरन्यतमावलोकनमितैरुच्छ्रोणि तैरञ्चति। हस्तस्पर्शवशेन मूर्ध्नि दशमं मूर्धानमालोकयञ्छम्भोरद्भुतसाहसैकरसिकः कैर्न स्तुतो रावणः॥'** (हनुमन्नाटक ८। ५२—५४) अर्थात् शीघ्र ही चन्द्रहास खड्गद्वारा कंधोंसे कण्ठरूप वनके काटनेको उद्यत होनेपर शीघ्रतासे सिरोंकी पंक्तियोंके काटनेमें यदि मेरा कोई भी मुख हास्यशून्य हुआ हो अथवा मेरे आँसू गिरे हों वा मेरी वाणी गद्गद हुई हो तो भगवान् भवानीपति आप ही मेरे प्रमाण (साक्षी) हैं। सिरोंपर प्रहार करनेके समय मेरे दसों सिर 'मैं पहले, मैं पहले, मुझे पहले काटो', मुझे पहले काटो, यह कहते-कहते त्रिपुरारिके आगे भूमिपर गिरे थे। मूलमें पाँच और फिर चार इस प्रकार मालामें स्थितिवाले उछलते हुए और सिरोंको देखनेके लिये नम्रीभूत सिररूप पुष्पोंसे पूजन करते समय मस्तकमें हाथ स्पर्शद्वारा दसवें मस्तकको देखता हुआ शिवजीके साहसका एक मात्र रसिक रावण किसके द्वारा स्तुत्य नहीं हुआ?

'सुराई' शब्दमें उपर्युक्त श्लोकोंके सब भाव आ जाते हैं कि—इन्हें काटनेके समय मेरा एक भी मुख हास्यशून्य न हुआ, न आँसू गिरे, न वाणी गद्गद हुई। सिरोंपर प्रहार करनेके समय वे सब उत्साहपूर्वक कहते थे कि मुझे ही पहले काटो। मैं ऐसा धीर वीर हूँ कि सिर काटता था और फिर भी सावधानतापूर्वक पूजा भी करता रहा, किञ्चित् व्यथा न प्राप्त हुई।

नोट—३ (क) *'सिर सुमन चढ़ाई'* इति। हनु० ८। ५४ में भी सिरको पुष्प कहा है—**'शिर:पुष्पै:** (ख) *'सुमन'* में यह भी भाव है कि 'सुन्दर मनसे' अर्थात् प्रसन्नतापूर्वक चढ़ाया। (शीला)। इससे यह न ज्ञात हुआ कि किसने सिर काटे। अतः फिर *'निज करन्हि उतारी'* कहा। देवताओंको कमल विशेष प्रिय होता है इसीसे सिरको कमल कहा। (ग) नैष्ठिक महात्मा तुलसी, वेलपत्र आदि अपने ही हाथ उतारते हैं। अतः *'निज करन्हि उतारी'* कहा। भक्त लोग पुष्प आदिके वृक्षसे तोड़नेको 'उतारना' कहते हैं उसी सम्बन्धसे यहाँ भी *'उतारी'* कहा।

नोट—४ (क) *'पूजेउँ अमित बार त्रिपुरारी।'* भाव कि मैंने निष्काम पूजन किया, कोई वर नहीं माँगा। पुनः, यह भी जनाया कि जैसे-जैसे मैं चढ़ाता था तैसे-तैसे मेरे सिर नवीन उत्पन्न होते थे। अतः *'अमित बार'* पूजा करना कहा। पुनः, *'अमित बार'* काटकर चढ़ाया इससे नित्य नया उत्साह जनाया। देवपूजनमें उत्साह न हो तो वह सफल नहीं होता।—*'श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई।'*

☞ मिलान कीजिये—**'ते भूमौ पतिताः पुनर्नवभवानालोक्य मूर्ध्नोऽपरान् याचिष्यन्त इमे हि नो वयमिति प्रीत्याट्टहासं व्यधुः॥'** (हनु० ८। ५३), अर्थात् पृथ्वीपर गिरनेपर फिर नवीन उत्पन्न हुए और मस्तकोंको देखकर, ये ही वर माँगेंगे, हम नहीं, ऐसी प्रतीतिसे अट्टहास करने लगे, अर्थात् हमें कुछ वर माँगनेकी इच्छा नहीं है।

भुजबिक्रम जानहिं दिगपाला। सठ अजहूँ जिन्ह के उर साला॥ ४॥

शब्दार्थ—**बिक्रम**=बल, शौर्य या शक्तिकी अधिकता, पराक्रम। साल=कसक, पीड़ा, घाव, वेदना।—*'साल तुम्हार कौसिलहि माई।'*

अर्थ—और, अरे शठ! दिक्पाल मेरी भुजाओंका पराक्रम जानते हैं कि जिनके हृदयमें अब भी करक हो रही है॥ ४॥

☞ यहाँतक रावणने चारके सम्बन्धमें अपनी शूरता कही। हरगिरि, उमापति, दिग्पाल और दिग्गज। हरगिरिके सम्बन्धमें *'भुजलीला'*, उमापतिके सम्बन्धमें *'सुराई'*, दिक्पालोंके सम्बन्धमें *'भुजविक्रम'* और दिग्गजोंके सम्बन्धमें *'उर कठिनाई'* इन पृथक्-पृथक्-पदोंका प्रयोग रावणने किया है। *'भुजलीला'* कैलासके सम्बन्धमें कहा क्योंकि गेंदकी तरह उसे अनायास उठा लिया था' यथा—*'जेहि कौतुक सिवसैलु उठावा।'* (१। २९२), तथा *'निज भुजबल अति अतुल कहौं क्यों कंदुक ज्यों कैलास उठायो।'* (गी० लं० ३) कौतुक और लीला एक ही बात है। प्राण और देह सबको प्रिय है, कोई अपना सिर काटकर नहीं देता, इसीसे सिर चढ़ानेको शूरता कहा। दिग्पालोंको भुजबलसे हराया, यथा—*'भुजबल जितेउँ सकल दिगपाला।'* (लं० ७। ३) अतः वहाँ 'भुजविक्रम' प्रख्यात हुआ। और, दिग्गजके दाँतोंसे छाती टकरायी इससे छातीकी कठोरता दिखायी। यथा—*'जिन्ह के दसन कराल न फूटे। उर लागत मूलक इव टूटे॥'*

नोट—*'अजहूँ जिन्ह के उर साला।'* यहा—*'इहाँ देवतन्ह अस्तुति कीन्ही। दारुन बिपति हमहिं एहि दीन्ही॥ अब जनि राम खेलावहु एही।'* (८५। ५-६) और भी इसी तरह देवताओंका समय-समय अपना दुखड़ा रोना इस 'शाल' का प्रमाण है।

जानहिं दिग्गज उर कठिनाई। जब जब भिरेउँ* जाइ बरिआई॥ ५॥
जिन्ह के दसन कराल न फूटे। उर लागत मूलक इव टूटे॥ ६॥

शब्दार्थ—दिग्गज—**'ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदो जनः। पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः॥'** (अमरकोश) **'फूटना'**=धसना—यह गुजराती बोली है।

अर्थ—पुनः, दिशाओंके हाथी मेरे हृदयकी कठोरताको जानते हैं। (क्योंकि) जब-तब मैं उनसे जबरदस्ती जा भिड़ा, तब-तब उनके विकराल (निकले हुए बड़े-बड़े भयङ्कर) दाँत मेरी छातीमें न धँसे वरन् लगते

* 'भिरौं' (का०)।

ही मूलीकी तरह टूट गये। अर्थात् वक्षःस्थलको कुछ श्रम न हुआ, वे लगते ही टूट गये, यथा—'**सकउँ मेरु मूलक इव तोरी**' ॥ ५-६ ॥

नोट—१ '**बरिआई**' का भाव कि—(क) वे अपनेसे नहीं सम्मुख होते। (ख) वे भागते थे, मैं भिड़ता था। (बं० पा०)

नोट—'**कराल न फूटे**' के अनेक प्रकारसे अर्थ टीकाकारोंने किये हैं—(१) जिनके दाँतोंसे कराल पर्वत भी फूट जाते हैं—(करु०)। (२)—जिनके दाँत कराल वज्रसे भी न फूटे। (३)—जिनके कराल दाँतोंसे छाती न फूटी और जो०। (बै०)। इत्यादि। पर यहाँ फूटनेके ये कोई अर्थ ठीक नहीं बैठते। पं० रामकुमारजीने इसका अर्थ 'धसना' लिखा है और महन्त मथुरादासजी (गुजरात) से मालूम हुआ कि गुजरातमें फूटना धसनेके अर्थमें बोला जाता है। यही अर्थ यहाँ बैठता है।

मिलान कीजिये—'**सर्वैर्यस्य समं समेत्य कठिनां वक्षःस्थलीं संयुगे निर्भग्नं मुखमेव दन्तमुसलैरैरावतस्योन्नतैः ॥**' (हनु० ८। ३५) अर्थात् जिस समय रणभूमिमें ऐरावत हाथीके दाँत मूसलके समान मेरे कठिन वक्षःस्थलमें लगे तो वे अग्रभागसे टूट गये, मुझे कुछ पीड़ा न हुई।

जासु चलत डोलति इमि धरनी। चढ़त मत्त गज जिमि लघु तरनी ॥ ७ ॥
सोइ रावन जग बिदित प्रतापी। सुनेहि न स्त्रवन अलीक प्रलापी ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—**अलीक**=बे सिर-पैरका, झूठा, मर्यादारहित। **प्रलाप**=निरर्थक वाक्य, अनापशनाप, पागलकी-सी बड़बड़, जैसे ज्वरादिके वेगमें रोगी कभी-कभी बकते हैं। **तरनी**=नाव।

अर्थ—जिसके चलते समय पृथ्वी इस प्रकार हिलती है जैसे मतवाले हाथीके चढ़ते समय छोटी नाव॥ ७॥ मैं वही जगत्प्रसिद्ध प्रतापी रावण हूँ। अरे अलीकप्रलापी! क्या तूने कभी मुझे कानोंसे नहीं सुना?॥ ८॥

नोट—१ '*चलत डोलति धरनी*' इति। ऐसा अन्यत्र भी कहा है, यथा—'***चलत दसानन डोलति अवनी। गर्जत गर्भ स्त्रवहिं सुररवनी॥***' (१। १८२। ५), '*तव बल नाथ डोल नित धरनी।*' (१०३। ५), पृथ्वीमात्र इसके भयसे काँपती थी, सभी डरते थे। दूसरी प्रकार ग्रन्थकारने इसे यों समझाया है कि रावणके पापका भार वह नहीं सह सकती, यथा—***गिरि सरि सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही॥***' (१। १८४। ५) यह भाव उसके हिलनेका है जिसे रावण अपने बलका प्रताप बताता है, न कि पापका।

नोट २—'***प्रतापी***' इस शब्दमें यह भी ध्वनि है कि मैं राघवका प्रतापी नामक सखा हूँ जो आकर रावण हुआ और किसीसे हारा नहीं। यथा—'**प्रतापी राघवसखा भ्राता वै सह रावणः। राघवेण तदा साक्षात् साकेतादवतीर्यते॥**' (सदाशिवसंहिता; पु० रा० कु०, बं० पा०, करु०)

नोट—३—'***प्रलापी***' कहकर सभासदोंको जनाया कि इसने जो कुछ कहा वह सब झूठ है।

नोट—४—बं० पा०, करु०—यहाँ आन्तरिक आशय इस प्रकरणमें कविके शब्दोंका यह है कि तूने जो तीन रावण गिनाये वे अन्य कल्पोंके तूने सुने होंगे, मैं उनमेंसे नहीं हूँ। (अङ्गदने कहा है कि '***मैं निज श्रवन सुना सुनु तेते***', वे देखना नहीं कहते। इस प्रकार यह भी भाव आ जाता है। देखना कहा होता तो ऐसा उत्तर न दे सकता।)

दो०—तेहि रावन कहँ लघु कहसि नर कर करसि बखान।
रे कपि बर्बर खर्ब खल अब जाना तव ग्यान* ॥ २५ ॥

शब्दार्थ—**बखान**=बड़ाई या प्रशंसाका वर्णन। **बर्बर**=जंगली, असभ्य, अशिष्ट। यथा—'***परम बर्बर खर्ब गर्ब पर्बत चढ्यो अज्ञ सर्वज्ञ जनमनि जनावौं***'—(विनय०) **खर्ब**=जिसका अङ्ग भग्न या अपूर्ण हो। छोटा,

* 'तव जान' (का०)।

तुच्छ।—'*महामत्त गजराज कहँ बस कर अंकुस खर्ब।*' (१। २५६), '**खर्वो ह्रस्वश्च वामनः**' (अमरकोश)

अर्थ—उस रावणको तू लघु कहता है और मनुष्यकी प्रशंसा करता है। अरे जंगली तुच्छ वानर! अरे दुष्ट! अब मैंने तेरा ज्ञान जान लिया (तेरी बुद्धिकी थाह पा ली)॥ २५॥

बं० पा०, पु० रा० कु०—अब तेरा ज्ञान जान लिया कि तू कपि है, बर्बर है, खर्व है और खल है। कपिसे पशु, वाणीसे बर्बर, आकृति छोटी इसलिये खर्व, और स्वभावसे खल। इस प्रकार जाति, वचन, तन और स्वभाव सभीसे अङ्गदको दूषित ठहराया।

☞ २५ (१)-२५ के रावण-उत्तरका मिलान निम्न उद्धरणोंसे करें—

१—(गी० लं० ३)—'*तैं मेरो मरम, कछू नहि पायो।*

रे कपि कुटिल ढीठ पाँवर! पसु! मोहिं दास ज्यों डाटन आयो।
निज भुजबल अति अतुल कहौं क्यों कंदुक ज्यों कैलास उठायो॥
सुर नर असुर नाग खग किन्नर सकल करत मेरो मन भायो।
निसिचर रुचिर अहार मनुज तन ताको जस खल मोहि सुनायो॥'

२—'**इन्द्रं माल्यकरं सहस्रकिरणं द्वारि प्रतीहारकं चन्द्रं छत्रधरं समीरवरुणौ संमार्जयन्तौ गृहान्। पाचक्ये परिनिष्ठितं हुतवहं किं मद्गृहे नेक्षसे रक्षोभक्ष्यमनुष्यमात्रवपुषं तं राघवं स्तौषि किम्॥**' (हनु० ८। २३)

अर्थात् इन्द्र माली है, सूर्य ड्योढ़ीवान है, चन्द्रमा छत्र लिये रहता है, पवन और वरुण झाड़ूबरदार हैं, अग्नि रसोइया है—क्या तुझे नहीं देख पड़ता? राक्षसोंके भोजन मनुष्य राघवकी तू क्या स्तुति करता है? १९ (७) में भी रावणके प्रलापके उदाहरण आये हैं।

सुनि अंगद सकोप कह बानी। बोलु सँभारि अधम अभिमानी॥ १॥

अर्थ—रावणके ये वचन सुनकर अङ्गद क्रोधपूर्वक वचन बोले—अरे नीच! अधर्मी! अभिमानी! (वा, अधम अभिमानी) सँभालकर बोल।

नोट—१ रावणने प्रभुको 'नर' कहा और वह भी बड़े निरादरपूर्वक—'*नर कर करसि बखान।*' इसीसे अङ्गद सकोप बोले। '*हरिहर निंदा सुनहिं जे काना। होइ पाप गोघात समाना॥*' (३०। १—३) देखिये। अङ्गद समर्थ हैं अतः इन्होंने क्रुद्ध होकर कहा कि '*बोलु सँभारि*' अर्थात् सँभालकर न बोलेगा तो जीभ काट ली जायगी। ☞ रावणने कहा था कि '*रे कपिपोतु न बोलु सँभारी*' वैसे ही अङ्गदने कहा '*बोलु सँभारि अधम अभिमानी।*'

नोट—२ श्रीरामजीको केवल 'नर' माननेसे अधम अभिमानी कहा, यथा—'*कहहिं सुनहिं अस अधम नर*……*।*' ☞ '*सुनु सठ सोइ रावन बल सीला।*' उपक्रम है और '*सुनि अङ्गद*' उपसंहार।'

प० प० प्र०—अधम देह। अतः अधम अभिमानी=प्रकृति अभिमानी=देहाभिमानी। विशेष '*मारा चहसि अधम अभिमानी।*' (४। ९। १०) में देखिये।

वि० त्रि०—'*सुनि अंगद*……' इति। जो भगवान् रामचन्द्रके स्वभावके जानकार हैं, उनसे सरकारको नर कहकर अपमान करना सहा नहीं जाता। ऐसी शङ्का करनेमें भरद्वाजजी डरे [यथा—'*कहत सो मोहि लागत भय लाजा।*' (१। ४५। ८)] पार्वतीजी डरीं (यथा—'*अज्ञ जानि रिसि जनि उर धरहू। जेहि बिधि मोह मिटै सोइ करहू॥*') इतनेपर भी शिवजीने कह ही डाला कि '*कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच। पाखण्डी हरिपद बिमुख जानहिं झूठ न साँच॥*' ईश्वरसे अभिमान करनेवाला अधम अभिमानी है (यथा—'*मम भुजबल आश्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी॥*'))। सरकारको अपमानपूर्वक नर कहते हुए सुनकर अङ्गदजी क्रुद्ध हो गये, और कहा कि तू अधम अभिमानी है, ईश्वरका अपमान करता है। इसके सुननेमें पाप है। '*काटिय तासु जीभ जो बसाई।*' अतः सावधान करते हैं कि 'सँभालकर बोल' नहीं तो जो दूतको नहीं करना चाहिये, ऐसी क्रिया मुझसे हो पड़ेगी। आगे इसी भावको स्पष्ट करेंगे। यथा—'*अस रिसि होत दसहु मुख तोरौं।*'

सहसबाहुभुज गहन अपारा। दहन अनल सम जासु कुठारा॥ २॥

अर्थ—जिसका फरसा सहस्रबाहुकी सहस्र भुजाओंरूपी अपार वनको जलानेके लिये अग्नि-समान था॥ २॥

नोट—१—एक हजार भुजाएँ होनेसे अपार वनकी उपमा दी। *'अपार'* का भाव कि उस वनमें पड़कर फिर किसीने उसका पार न पाया एवं जो वनमें गया वह खो ही गया, फिर न निकल सका। तात्पर्य कि सहस्रार्जुनके समीप जो भी गया वह जीतकर न लौट सका, मारा ही गया। यह रूपक है।

नोट—२—भुजाओंको वन कहा। उसके सम्बन्धसे परशुरामजीके परशुको अग्निकी उपमा दी। अग्निसे काष्ठ बिना परिश्रम जल जाता है वैसे ही परशुरामजीने बिना परिश्रम ऐसे बलवान् सहस्रबाहुकी सारी भुजाएँ काट डालीं और उसको मार डाला। यह भाव *'अनल सम'* का हुआ। यहाँ पूर्णोपमा है।

नोट—☞ हनु० ८। ५७ में सहस्रबाहुकी भुजाओंको वन कहा है पर वहाँ परशेसे वनका काटना कहा है—**'तद्बह्वोर्वनमच्छिनत्परशुना यो राजवीजान्तकः।'** और यहाँ कविने परशेको अनल कहा। पाठक स्वयं देख सकते हैं कि किसमें विशेषता है। अग्निसे फिर उत्पत्तिकी सम्भावना नहीं। दोहा २६ (४) भी देखिये।

जासु परसु सागर खर धारा। बूड़े नृप अगनित बहु बारा॥ ३॥

अर्थ—और जिसके फरसारूपी समुद्रकी तीक्ष्ण धारामें अगणित राजा अनेक बार डूबे॥ ३॥

नोट—१—यहाँ परशु सागर है और परशुकी तीक्ष्ण धार सागरकी तीक्ष्ण धारा है तथा नृप अगणित जहाज (वा वणिक्-समाज) हुए। *'बहु बारा'* अर्थात् २१ बार। यहाँ परम्परित रूपक है। कोई-कोई महानुभाव परशु और सागरखरधाराका रूपक मानते हैं। पर उसमें रूपकका यथार्थ चमत्कार नहीं देख पड़ता।

नोट—२—फरसेकी 'तीक्ष्ण धारा' का भाव निम्न श्लोक एवं क० लं० २५ में मन्दोदरीके वचनोंमें देखिये—

'जाके रोष दुसह त्रिदोष दाह दूरि कीन्हें पैयत न छत्री खोज खोजत खलक में।
माहिषमतीको नाथ साहसी सहसबाहु समर-समर्थ नाथ! हेरिये हलक में।
सहित समाज महाराज सो जहाजराज बड़ि गयो जाके बल बारिधि छलक में।
टूटत पिनाकके मनाक बाम राम से, ते नाक बिनु भये भृगुनायक पलक में॥' (२५)

'येन त्रिःसप्तकृत्वो नृपबहलवसामांसमस्तिष्कपङ्कप्राग्भारेऽकारि भूरिच्युतरुधिरसरिद्वारिपूरेऽभिषेकः। यस्य स्त्रीबालवृद्धावधिनिधनविधौ निर्दयो विश्रुतोऽसौ राजन्योच्चांसकूटकथनपटुरटद्घोरधारः कुठारः॥' (हनु० १। ३३) अर्थात् जिसने २१ बार राजाओंकी, बहुत-सी मज्जामांस मस्तिष्करूप पंकयुक्त अत्यन्त गिरते हुए रुधिरकी नदीके जल-प्रवाहमें अभिषेक किया और जिसका निर्दयपन स्त्री-बालक-वृद्ध-पर्यन्तके मारनेकी विधिमें प्रसिद्ध है ऐसा यह मेरा फरसा राजाओंके ऊँचे-ऊँचे कंधेरूप पर्वतोंको विदीर्ण करनेमें चतुर शब्दायमान भयानक धारवाला है।

तासु गर्ब जेहि देखत भागा। सो नर क्यों दससीस अभागा॥ ४॥

अर्थ—उन परशुरामजीका गर्व जिन्हें देखते ही भाग गया, क्यों रे हतभाग्य दशशीश! क्या वह नर हैं? वह मनुष्य कैसे हो सकते हैं?॥ ४॥

नोट १—चौ० २, ३, ४ के भावके श्लोक हनुमन्नाटकमें ये हैं—

१ **'दोर्दण्डाहितपौत्रभिक्षुरभवद्यस्मिन् पुलस्त्यो मुनिस्तद्बाहोर्वनमच्छिनत्परशुना यो राजबीजान्तकः। शौर्यं शौर्यरसाम्बुधेर्भृगुपतेर्ग्रासोऽपि नासीजलं तत्तेजो वडवानलस्य किमसौ लंकापतिः पल्वलम्॥'** (८। ५७) अर्थात्—जिस राजा सहस्रार्जुनके बाहुओंसे बद्ध अपने पौत्र रावणको छुड़ानेके लिये पुलस्त्यमुनि भिक्षुक बने, उसीके भुजा-वनको राजबीजनाशक परशुरामने परशुसे काट डाला। ऐसे वीररस-सागर परशुरामजीमें जिस बड़वानलके ग्रसनेसे (बलरूपी) जल नहीं रह गया उसके लिये फिर यह लङ्कापति तो गड़हिया या कीचड़के समान क्या है?

२-**'यः कीर्तवीर्यस्य भुजासहस्त्रं चिच्छेद वीरो युधिजामदग्न्यः। स सायके रामकराधिरूढे ब्राह्मण्यदैन्यप्रणयी बभूव॥'** (१। ५१) अर्थात्—जिस परशुरामने कीर्तवीर्यकी सहस्र भुजाओंको रणमें काटा था वे ही रामचन्द्रजीके हाथमें बाण होनेसे ब्राह्मणपनेकी दीनतासे नम्र हो गये।

३—'**त्वद्दोर्दण्डप्रचण्डप्रतिहननविधिप्रौढबाह्वोः सहस्त्रच्छेदक्रीडाप्रवीणस्थिरपरशुमहागर्वनिर्वापकस्य॥**' (८। ४०) अर्थात् तेरे प्रचण्ड भुजदण्डोंकी ताड़नविधिमें सगर्व सहस्रार्जुनके सहस्र भुजाओंके काटनेकी क्रीड़ामें चतुर और स्थिर परशुरामके गर्वके नाश करनेवाले (राघवका मैं दूत हूँ)।

नोट—२ (क) '***जेहि देखत भागा***' का भाव कि युद्ध भी नहीं करना पड़ा, बात-की-बातमें ही हार मान ली। यथा—'***सुनि सरोष भृगुनायक आए। बहुत भाँति तिन्ह आँखि दिखाए॥ देखि रामबल निज धनु दीन्हा। करि बहु बिनय गवन बन कीन्हा॥***' (१। २९३। २; जनकदूतवाक्य) निज धनु देना, विनय करना, यही हार है। (ख) '***भागा***' का भाव कि तबसे आजतक उनको गर्व न हुआ। नहीं तो वे क्षत्रियोंका विनाश करनेमें फिर भी न चूकते। सब क्षत्रियोंसे पृथ्वीको निःक्षत्र करना रूपी गर्व था।

(ग) तीन अर्धालियोंमें परशुरामजीका चरित कहा पर उनका नाम न लिया। केवल उनके चरित और फरसेके कार्योंसे ही उनका परिचय कराया गया। उनके चरित ऐसे प्रसिद्ध हैं कि उनका नाम भी बतानेकी आवश्यकता नहीं। ऐसे चरित दूसरेके नहीं हैं, यह सूचित करनेके लिये नाम न कहा। यहाँ प्रथम पर्यायोक्ति अलंकार है।

नोट—३ यहाँ '***नर कर करसि बखान***' का उत्तर हुआ। एकसे दूसरे, दूसरेसे तीसरे और तीसरेसे चौथेका बल अधिक दिखाकर रावणको श्रीरामजीसे अत्यन्त कम बलवाला सिद्ध किया। भाव यह कि तुम सहस्रबाहुसे हारे, सहस्रबाहु परशुरामजीसे और परशुराम श्रीरामजीसे हारे, अब तुम उनके सामने क्या हो? चौथे दर्जेमें हो। दोहा ६। ७। ८ देखिये।

बं० पा०—'***दससीस अभागा।***' भाव कि एक सिरवाले भाग्यवान् होते हैं और तेरे तो दस सिर हैं, पर सभी भाग्यरहित हैं। भगवत्तत्त्वरहित होनेसे 'अभागा' कहा।

नोट—४ ☞ वक्ताओंने रामविमुखको '***अभागा***' कहा है, यथा—'***सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी॥***' (अ० ३३। ३), '***अस प्रभु सुनि न भजहिं भ्रम त्यागी। नर मतिमंद ते परम अभागी॥***' विनयपत्रिकामें भी कहा है '***ते नर नरक रूप जीवत जग भव भञ्जन पद बिमुख अभागी।***' (१४०)

राम मनुज कस रे सठ बंगा। धन्वी कामु नदी पुनि गंगा॥ ५॥

पसु सुरधेनु कल्पतरु रूखा। अन्न दान अरु रस पीयूषा॥ ६॥

शब्दार्थ—बंगा (सं० बङ्क)=मूर्ख, उद्दण्ड, टेढ़ा। सठ बंगा=लुच्चा—(पां०)। कस=क्यों—'***सो कासी सेइय कस न***'—(कि०)। क्योंकर, कैसे। यथा—'***कस रे सठ हनुमान कपि*****', '***कस न सुमनमय मारग कीन्हा।***' (अ० १२१), '***कस कीन्ह बर बौराह बिधि जेहि तुम्हहिं सुंदरता दई।***' (१। ९६), '***तौ कस मरन न माँगे दीन्हा।***'

अर्थ—क्यों रे उद्दण्ड मूर्ख! श्रीरामचन्द्रजी मनुष्य हैं? क्या कामदेव (जो पञ्चपुष्प-बाणों और पुष्प धनुषसे ही सारे संसारको वशीभूत कर लेता है वह कोई साधारण) धनुर्धारी है? और क्या गङ्गा (त्रिपथगामिनी, शिवशीशपर रहनेवाली और जगत्‌को पावन करनेवाली साधारण) नदी हैं?॥ ५॥ क्या कामधेनु (अर्थ-धर्मादिकी देनेवाली साधारण) पशु हो सकती है? (मनोवांछित देनेवाला) कल्पवृक्ष क्या (साधारण) वृक्ष है? क्या अन्नदान (जो अभ्यन्तर दान है और प्राणका देनेवाला है वह बाह्य सुख देनेवाला साधारण) दान है? और (मृतकको जिला देनेवाला) अमृत क्या (साधारण) रस है?॥ ६॥

☞ अन्नदानका माहात्म्य सब दानोंसे अधिक है। पद्मपुराण सृष्टिखण्ड अ० ३५ में इसके माहात्म्यका विस्तृत उल्लेख है। विदर्भ नगरके राजा श्वेतने अनेक दान किये थे पर अन्नदान न किया था। स्वर्ग प्राप्त होनेपर भी उन्हें अपना मांस भक्षण करना पड़ता था……अगस्त्यजीने उनका उद्धार किया। (सु० र० भ०) दानप्रशंसामें भी कहा है कि '**तुरगशतसहस्त्रं गोगजानां च लक्षं कनकरजतपात्रं मेदिनीं सागरान्ताम्। विमलकुलवधूनां कोटिकन्याश्च दद्यान्नहि नहि सममेतैरन्नदानं प्रधानम्॥**' अर्थात् एक लक्ष घोड़े, लक्ष गौ

और हाथी, स्वर्ण और चाँदीके पात्र, सागरान्ततक पृथ्वी, कुलीन स्त्रियों और करोड़ों कन्याओंका दान भी अन्नदानके समान प्रधान नहीं है।

☞ २६ (५)-२६ के अङ्गदवाक्योंसे मिलता हुआ श्लोक यह है—'**रे रे रावण हीन दीन कुमते रामोऽपि किं मानुषः किं गङ्गाऽपि नदी गजः सुरगजोऽप्युच्चैःश्रवाः किं हयः। किं रम्भाऽप्यबला कृतं किमु युगं कामोऽपि धन्वी नु किं त्रैलोक्यप्रकटप्रतापविभवः किं रे हनूमान् कपिः।**' (हनु० ८। २४) अर्थात् रे रे हीन दीन दुर्बुद्धि रावण! क्या राम मनुष्य हैं? क्या गङ्गाजी भी नदी हैं? क्या ऐरावत (साधारण) गज है? क्या उच्चैःश्रवा साधारण घोड़ा है? क्या रम्भा अप्सरा भी स्त्री है? क्या कृतयुग साधारण युग है? क्या कामदेव धनुर्धारी है? जिनका प्रताप, वैभव त्रिलोकमें प्रकट है, वे हनुमान् क्या सामान्य कपि हैं?

☞ इस श्लोकमें सुरधेनु, कल्पवृक्ष, अन्न, पीयूष, गरुड़, शेष, चिन्तामणि और वैकुण्ठ नहीं हैं। इनके स्थानपर ऐरावत, उच्चैःश्रवा, रम्भा और कृतयुग हैं। राम नर नहीं हैं इसकी पुष्टिके लिये मानसकविने यहाँ १२ उदाहरण दिये हैं और श्लोकमें ७ दिये गये हैं।

बैनतेय खग अहि सहसानन। चिंतामनि पुनि उपल दसानन॥ ७॥

शब्दार्थ—**बैनतेय**=विनता (कश्यपजीकी स्त्री दक्षप्रजापतिकी कन्या) के पुत्र गरुड़। **सहसानन**= सहस्रमुखवाले= शेषजी। **चिंतामणि**=एक रत्न जो मनमें चाही हुई पदार्थका देनेवाला है—'*रामचरित चिन्तामनि चारू।*' **उपल**=पत्थर।

अर्थ—गरुड़ (जो भगवान्‌के वाहन, कामरूप और भगवान्‌के सखा हैं जिनके पक्षोंसे सामवेदकी ध्वनि होती है, वे साधारण) पक्षी हैं? (एक ही सिरपर सारे ब्रह्माण्डको धारण करनेवाले) सहस्रमुखवाले शेषजी (साधारण) सर्प हैं? और, अरे दशमुख! सुन, क्या (मनोरथका देनेवाला) चिन्तामणि (साधारण) पत्थर है?॥ ७॥

☞ आगेकी चौ० ८ के '*सुनु*' को दीपदेहली मानकर अर्थ किया गया है। '*दसानन सुनु*' का भाव कि बीसों कानोंसे ध्यान देकर सुन, कान इधर-उधर न कर।

वीरकवि—यहाँ प्रसिद्ध वस्तुओंका निषेध प्रकट करना अर्थात् राम मनुष्य नहीं हैं, गङ्गा नदी नहीं है इत्यादि 'प्रतिषेध' अलङ्कार है।

सुनु मतिमंद लोक बैकुंठा। लाभ कि रघुपति भगति अकुंठा॥ ८॥

शब्दार्थ—अकुण्ठ=उत्तम, चोखी, तीव्र, कुण्ठित न होनेवाली। यथा—'*गयउ गरुड़ जहँ बसै भुसुंडा। मति अकुंठ हरिभगति अखंडा*'॥

अर्थ—अरे मन्दबुद्धि! सुन। क्या वैकुण्ठ (जहाँसे पुनरागमन नहीं होता साधारण) लोक है? क्या श्रीरघुनाथजीकी अविचल भक्ति (साधारण) लाभ है?॥ ८॥

नोट—१ (क) '*मतिमंद*' का भाव कि ऐसी समझवाला मन्दबुद्धि है, क्योंकि मोह-भ्रममें पड़ा है, समझानेपर भी समझता नहीं, कुछ-का-कुछ समझता है और रघुनाथजीको नर कहता है, यथा—'*अति बिचित्र रघुपतिचरित जानहिं परम सुजान। जे मतिमंद बिमोहबस हृदय धरहिं कछु आन॥*' (१। ४९)

नोट—२ यहाँ 'सुनु' और इसके पहिले 'दसानन' सम्बोधन देकर जनाया कि रावण इधर-उधरकी बातोंमें टालना चाहता था अथवा ध्यान नहीं देता था इसीसे कहा कि 'सुनु'। (ख) '*लाभ कि*......' यथा—'*लाभ कि कछु हरि भगति समाना। जेहि गावहिं श्रुति बेद पुराना॥*' (७। ११२। ८)

दो०—सेनसहित तव मान मथि बन उजारि पुर जारि।
कस रे सठ हनुमान कपि गएउ जो तव सुत मारि॥ २६॥

अर्थ—क्यों रे शठ! जो सेनासहित तेरा मान-मर्दन कर वनको उजाड़, नगरको जला और तेरे पुत्रको मारकर (सुखपूर्वक यहाँसे) लौट गया वह हनुमान् क्या साधारण वानर है?॥ २६॥

नोट—१ भाव कि तुझे घमण्ड है कि लोकपालादि आज भी तुझसे शङ्कित रहते हैं तब भी हनुमान्‌जीके सामने तेरा किया कुछ भी न हो सका। तेरा वह बलका गर्व तब कहाँ था? यथा—'*जारि सकल पुर*

कीन्हेसि छारा। कहाँ रहा बल गर्ब तुम्हारा॥' (३५। ६) इससे तुझे समझ लेना था कि साधारण वानर नहीं हैं, कुछ और ही हैं कि जिनका बल लोकपालादिसे कहीं अधिक त्रिलोकमें प्रसिद्ध है, रुद्रावतार हैं।—यह व्यञ्जनामूलक गूढ़ व्यङ्ग है।

नोट—२—अपना व्यर्थका हठ नहीं छोड़ता अतः शठ कहा।

☞ *'बोलु सँभारि अधम अभिमानी'* (१६। १) से यहाँतक *'नर कर करसि बखान'* का उत्तर है। यहाँतक काकुद्वारा विपरीत एवं विशेष अर्थका बोध कराया। यह वक्रोक्ति है। भाव यह है कि जो कार्य कामदेव, गङ्गाजी, कामधेनु आदिके हैं वे प्राकृत धनुर्धरों, नदियों और पशुओं आदिसे नहीं हो सकते।

सुनु रावन परिहरि चतुराई। भजसि न कृपासिंधु रघुराई॥ १॥
जौं खल भएसि राम कर द्रोही। ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही॥ २॥

शब्दार्थ—**चतुराई**=धूर्तता, चालाकी, वाग्बिलास।

अर्थ—अरे रावण! धूर्तता छोड़कर सुन। चतुराई छोड़कर दयासागर रघुपतिका भजन क्यों नहीं करता?॥ १॥ अरे दुष्ट! यदि तू श्रीरामजीका द्रोही हुआ तो ब्रह्मा और रुद्र भी तुझे नहीं रख सकते॥ २॥

नोट—१ *'सुनु'* का भाव कि फिर रावणका ध्यान इधर-उधर चला गया था, या वह कुछ कहनेको हुआ था; अतः डाँटकर उसे रोक दिया और उसका ध्यान अपनी ओर खींचा।

नोट—२—*'परिहरि चतुराई भजसि न……।'* चतुराई रहते प्रभु कृपा नहीं करते, अतः इसका त्याग करनेको कहकर तब भजन करना कहा। यथा—*'मन क्रम बचन छाँड़ि चतुराई। भजन कृपा करिहहिं रघुराई॥'* (१। २००। ६) कपटकी चतुराई यथार्थ चतुराई नहीं है, रामभजन यथार्थ चतुरता है, यथा—*'रामहिं भजहिं ते चतुर नर।'* (अ० ६) रावण कपट—चतुराई करता है।

वि० त्रि०—चतुराई अर्थात् बुद्धिका चमत्कार बहुत अच्छी वस्तु है, यदि उसका सदुपयोग किया जाय। दुष्प्रयोगसे जितनी ही अच्छी वस्तु होगी, वह उतनी ही बुरी हो जायगी। चतुराईका सदुपयोग सुतीक्ष्ण मुनिने किया, सरकार हँस पड़े (यथा—*'देखि कृपानिधि मुनि चतुराई। लिये संग बिहँसे दोउ भाई॥'*) भुशुण्डिजीकी चतुराईपर प्रसन्न हो गये, कहने लगे। *'सुनु बायस तैं सहज सयाना। काहे न माँगसि अस बरदाना॥'* पर बलिकी चतुराईपर बिगड़ गये, 'मूढ़, अधम, अभिमानी' आदि शब्द कहने लगे। जब उसने चतुराई छोड़ी (यथा—*'सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि'*) तभी प्रसन्न हुए। अर्थात् रामकी सम्मुखताके लिये जितनी चतुराई की जाय, वह सब ठीक है पर जिस चतुराईसे प्राणी रामविमुख होता है, जिस चतुराईके कारण वह भजन नहीं कर सकता, वह सर्वथा हेय है। यहाँ दोनों प्रकारकी चतुराइयोंका दिग्दर्शन कराया गया है। हरि-विमुख करनेवाली चतुराई रावणमें और सम्मुख करनेवाली चतुराई अङ्गदजीमें है। अङ्गदजी रावणको हरिभजनसे दूर रखनेवाली चतुराईको त्यागकर कृपासिन्धु रघुराईके भजनका उपदेश देते हैं, क्योंकि कृपाकी प्रयोगभूमि सिधाई है, चतुराई नहीं।

नोट—३ *'कृपासिंधु रघुराई'* का भाव कि वे दयासागर हैं, सब अपराध भूल जाते हैं, यथा—*'निज गुन अरि कृत अनहितो दास दोष सुरति चित रहति न, दिये दान की।'* (वि० ४२) और दया करते हैं। अतः उनका भजन कर। *'रघुराई'* का भाव कि उनसे मिलनेमें तेरी लघुता नहीं है—दोहा ७। (१) देखिये।

पु० रा० कु०—*'ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही।'* भाव कि सब श्रीरामजीके ही बलसे बलवान् हैं, यथा—*'जाके बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥'* (५। २१। ५) और श्रीरामजीके ही अधीन हैं, यथा—*'देखे सिव बिधि बिष्नु अनेका। अमित प्रभाउ एक ते एका॥ बंदत चरन करत प्रभु सेवा।'* (१। ५४) पुनः, भाव कि जबतक तू चराचरका द्रोही रहा तबतक उन्होंने तेरी रक्षा की और अब तो तू उन्हींसे द्रोह करता है इसलिये अब रक्षा न करेंगे। *'संकर सहज बिष्नु अज तोही। सकहिं न राखि राम कर द्रोही॥'* (सुं० २३। ८ एवं २१। ९) देखिये।

नोट—४ *'रुद्र'* का भाव कि जो कराल रूपसे प्रलयमें संहार करते हैं वे भी रक्षा नहीं कर सकते। रुद्रोंकी पूजा सिर चढ़ाकर की। इन्हींके वरके अभिमानसे रावण फूला है। इसीसे यहाँ इन दोका नाम

दिया है। यहाँ लक्षणामूलक व्यङ्ग है कि जिनके बलपर तू इतराता है वे तेरी रक्षाके लिये अशक्य हैं। यथा—'**ब्रह्मास्वयंभूश्चतुराननो वा रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा। इन्द्रो महेन्द्रः सुरनायको वा स्थातुं न शक्तो युधि राघवस्य॥**' (वाल्मी० सुं० ५१)

मूढ़ बृथा* जनि मारसि गाला। रामबयरु अस† होइहि हाला॥ ३॥

तव सिर निकर कपिन्ह के आगें। परिहहिं धरनि रामसर लागें॥ ४॥

ते तव सिर कंदुक सम‡ नाना। खेलिहहिं भालु कीस चौगाना॥ ५॥

शब्दार्थ—गाल मारना=डींग मारना, व्यर्थ बकवाद करना। **कंदुक**=गेंद। ***चौगाना***=एक खेल जिसमें लकड़ीके बल्लेसे गेंद मारते हैं।=खेलनेका मैदान।

अर्थ—अरे मूढ़! व्यर्थ गाल न मार। श्रीरामजीसे वैर करनेसे तेरा यह हाल होगा कि—॥ ३॥ तेरे सिरसमूह रामबाणके लगनेसे वानरोंके आगे पृथ्वीपर गिरेंगे॥ ४॥ और रीछ-वानर तेरे गेंदके समान उन अनेक सिरोंसे चौगान खेल खेलेंगे॥ ५॥

नोट—१ गर्व होनेसे डींग मारी जाती है, यथा—'***कहाँ रहा बल गर्ब तुम्हारा। अब पति मृषा गाल जनि मारहु।***' (३५। ६-७) अभिमान होने और किसीकी न सुननेसे '***मूढ़***' कहा, यथा—'***मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावन करसि न काना॥***'

नोट—२ (क) '***तव सिर निकर*****·····**' इति। वानर-भालू अगणित हैं और सिर दस हैं। '***निकर***' पद देकर जनाया कि तुझे अभिमान है कि तेरे सिर कटनेपर वे पुनः उत्पन्न होते हैं [२५ (३) देखिये] वे सब तेरे सिर कटेंगे जबतक नवीन पैदा होते जायेंगे। इस प्रकार वे सब वानर खेल सकेंगे। सिर गोलाई लिये हुए हैं और गेंद भी गोल होता है, यह समता है। चौगान खेलमें बल्ले होते हैं यहाँ लात ही बल्ले हैं। गेंद पास आनेपर मारा जाता है, सिर कटकर पैरके पास गिरेंगे तब वानर पैरसे उसे मारेंगे। मिलान कीजिये—'***रे रे राक्षसवंशघात समरे नाराचचक्राहतं रामोत्तुङ्गपतङ्गचापयुगले तेजोभिराडम्बरे। मन्ये शैर्षमिदं त्वदीयमखिलं भूमण्डले पातितम्॥*****·····**' (हनु० ८। २०) अर्थात् अरे निशाचरवंशघातक! रघुनाथजीके बड़े भारी धनुषबाणके तेजसे व्याप्त हुए संग्राममें, जानता हूँ कि बाणसमूहोंसे ताड़ित तेरे सम्पूर्ण सिर पृथ्वीमण्डलमें गिरकर लुढ़केंगे।—इन श्लोकके अन्तिम चरण '***गृध्रैरालुठितं शिवाकवलितं काकैः क्षतं यास्यति***' (अर्थात् गृध्र लेकर उड़ेंगे, सियारिनियाँ भक्षण करेंगी और कौओंद्वारा क्षत-विक्षत होंगे) के स्थानपर मानसके अङ्गदवाक्यमें '***खेलिहहिं भालु कीस चौगाना***' है।

जबहिं समर कोपिहि रघुनायक। छुटिहहिं अति कराल बहु सायक॥ ६॥

तब कि चलिहि अस गाल तुम्हारा। अस बिचारि भजु रामु उदारा॥ ७॥

अर्थ—जब श्रीरघुनाथजी समरमें कोप करेंगे और उनके अत्यन्त तीक्ष्ण बहुत-से बाण छूटेंगे तब क्या इस प्रकार तुम्हारा गाल चलेगा? (अर्थात् तब तुम यह सब शेखी भूल जाओगे।) ऐसा विचारकर उदार श्रीरामजीको भजो॥ ६-७॥

पु० रा० कु०—'***तब कि चलिहि।***' भाव कि तब तुमको अवकाश भी न मिलेगा।

नोट १—'***अस बिचारि***' का भाव कि जब आगे तुम्हारी शेखी जाती ही रहेगी तब भला इसीमें है कि अभी उनसे मिल लो जिसमें तुम्हारा बाहुबलका गर्व भी बना रह जाय। '***अस बिचारी***' में वह सब आ गया जो '***जौं खल भएसि*****·····**' से यहाँतक कहा गया।

नोट—२—'उदार' इस भावसे कि वे राज्य अचल कर देंगे, कृपा करेंगे, तेरा मान रखेंगे और अपराध क्षमा करेंगे। यथा—'***त्यज व्यलीक भजु कारुनीक प्रभु दै जानकिहि सुनहि समुझायो। याते तव हित होहि कुसल***

* मुधा। मृषा-पाठान्तर। † होइहि अस।—(का०)। ‡ इव—(का०)।

कुल अचल राज चलिहै न चलायो॥' (गी० लं० २), *'मिलत कृपा तुम्हपर प्रभु करिहीं। उर अपराध न एकउ धरिहीं॥'* (५। ५७। ६), *'ऐसो को उदार जग माहीं। बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं॥ जो गति जोग बिराग जतन करि नहिं पावत मुनि ज्ञानी। सो गति दई गीध सबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी॥ जो संपति दससीस अर्पि करि रावन सिव पहँ लीन्हीं। सोइ संपदा बिभीषन कहँ अति सकुच सहित हरि दीन्हीं॥ तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो। तौ भजु राम काम सब पूरन करिहिं कृपानिधि तेरो॥'*—(वि० १६२)—विशेष *'आयसु दीन्ह न राम उदारा।'* (३३। ४) में देखिये।

नोट—३—प्रथम *'नर कर करसि बखान'* का उत्तर दिया, फिर भजन करनेका उपदेश यहाँतक दिया। *'सुनु रावन परिहरि चतुराई। भजसि न कृपासिंधु रघुराई॥'* (२७। १) उपक्रम है और *'अस बिचारि भजु राम उदारा'* उपसंहार। उपक्रममें *'कृपासिंधु रघुराई'* और अन्तमें *'राम उदारा'* देकर जनाया कि भजन करते ही समुद्रवत् कृपा करेंगे। यह न समझो कि विभीषणका तिलक कर चुके हैं तब हमारा राज्य कैसे रखेंगे?

सुनत बचन रावन परजरा। जरत महानल जनु घृत परा॥८॥

शब्दार्थ—परजरना=बहुत जल उठना, बहुत कुढ़ना, क्रुद्ध होना।

अर्थ—ये वचन सुनते ही रावण बहुत ही जल उठा। मानो जलती हुई प्रचण्ड अग्निमें घी पड़ गया॥८॥

नोट—१ जल तो पहले ही रहा था, यथा—*'बक्र उक्ति धनु बचन सर हृदय दहेउ दससीस।'* (२३), अब इन वचनोंसे एकदम अधिक जल उठा। जैसे खूब जलती हुई अग्निमें घी पड़नेसे वह और भी प्रचण्ड हो जाती है। इससे जनाया कि उसका सारा मुखमण्डल और उसकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। होंठ फड़कने लगे। यथा—**'जज्वाल क्रोधताम्राक्षः सर्पिरद्भिरिवाग्निमत्'**। नोट—२—यहाँ अङ्गदका उत्तर घृतकी आहुति है, हृदय यज्ञकुण्ड है, हृदयका कोप महानल है। यथा—*'लखन उतरु आहुति सरिस भृगुबर कोप कृसानु। बढ़त देखि'''''।'* (१। २७६) यहाँ उक्तविषयावस्तूत्प्रेक्षा है। यथा—*'सुनि अंगद सकोप कह बानी।'* (२६। १) उपक्रम और *'सुनत बचन'* उपसंहार है।

प० प० प्र०—यहाँ *'जरेउ' 'परेउ'*, अथवा *'मनहु घृत परा'* इत्यादि लिखकर १६ मात्राकी पूर्ति कवि कर सकते थे पर ऐसा न करके १५। १५ मात्राके चरण ही रखे। इस प्रकार गति-विच्छेदद्वारा कवि बताता है कि रावणके मुखपर भयानक भावके चिह्न प्रकट देखकर सभासदोंके हृदयको एकाएक धक्का लग गया।

नोट—३ चौपाई १५। १५ मात्राकी भी होती है यह सुन्दरकाण्डमें तथा इस काण्डमें २ (४) भी लिखा गया है। अतएव प्रेमी पाठक जो छन्दोंके भेद जानते हों वे उन भेदोंके अनुसार पृथक्-पृथक् भेदके छन्दोंके प्रयोगका भाव सोचें।

दो०—कुंभकरन अस बंधु मम सुत प्रसिद्ध सक्रारि।
मोर पराक्रम नहिं सुनेहि जितेउँ चराचर झारि॥२७॥

अर्थ—कुम्भकर्ण ऐसा तो मेरा भाई है। इन्द्रको जीतनेवाला विख्यात इन्द्रजित् मेरा पुत्र है। और, क्या तूने मेरा पराक्रम नहीं सुना कि मैंने सारा चराचर जगत् जीत लिया?॥२७॥

नोट—१ *'कुंभकरन अस बन्धु'* का भाव कि उसका पराक्रम त्रैलोक्यमें विख्यात है कि उसका कोई प्रतिभट है ही नहीं, उसका जागना सुनते ही त्रैलोक्य काँप जाता है। वह शत्रुकुलसमूहके संहारकी मूर्ति है, उसे देखकर ही सब भाग जाते हैं; इससे उसके बलके कथनकी आवश्यकता नहीं। यथा—*'अतिबल कुंभकरन अस भ्राता। जेहि कहुँ नहि प्रतिभट जग जाता॥''''''जागत होइ तिहू पुर त्रासा।'* (१। १८०) ☞ रावणको तीनके बलका अभिमान है, अतः तीनोंका वर्णन किया। मिलान कीजिये—*'भ्राता कुंभकरन रिपुघातक सुत सुरपतिहि बंदि करि ल्यायो। निज भुजबल अति अतुल कहाँ क्यों कंदुक ज्यों कैलास उठायो॥'* (गी० ६। ३)

☞ मिलान कीजिये—'**भ्राता मे कुम्भकर्णः सकलरिपुकुलव्रातसंहारमूर्तिः पुत्रो मे मेघनादः प्रहसितवदनो येन बद्धः सुरेन्द्रः। खड्गो मे चन्द्रहासो रणमुखचपलो राक्षसा मे सहायाः सोऽहं वै देवशत्रुस्त्रिभुवनविजयी रावणो नाम राजा॥**' (हनु० ८। ३३) अर्थात् समस्त रिपुकुलसमूहके संहारकी मूर्ति कुम्भकर्ण मेरा भाई है, प्रसन्नमुख मेघनाद जिसने देवराजको बाँधा वह मेरा पुत्र है, समरमें चपल चन्द्रहास मेरा खड्ग है और समरमें चपल राक्षस मेरे सहायक हैं ऐसा मैं देवताओंका शत्रु त्रिलोकविजयी 'रावण' नामका राजा हूँ।

सठ साखामृग जोरि सहाई। बाँधा सिंधु इहै मनुसाई*॥ १॥
नाघहिं खग अनेक बारीसा। सूर न होहिं ते सुनु सठ कीसा॥ २॥

अर्थ—रे शठ! वानरोंकी सहायता जुटाकर समुद्रमें सेतु बाँधा, यही शूरता है (न)?॥१॥ अनेक पक्षी समुद्रको लाँघ जाते हैं। पर, रे शठ कीश! वे समुद्र लाँघनेसे शूर नहीं हो सकते॥२॥

नोट—'*जोरि सहाई*' का भाव कि पराक्रम होता तो समुद्र सोख लेते। असमर्थ हैं, इसीसे वानरोंकी सेनाकी सहायता ली, उनसे पुल बँधवाया तब पार आ सके। इसमें रामकी शूरता क्या?

☞ मिलान कीजिये—'**बद्धः सेतुर्यदि जलनिधौ वानरैस्तावता किं नो वल्मीकाः क्षितिधरनिभाः किं क्रियन्ते पिपीलैः॥ दग्धा लङ्का यदपि कपिना स स्वभावः किलाग्नेः शौर्याश्चर्यं निज भुजजये किं कृतं रामनाम्ना॥**' (हनु० ८। २९) अर्थात् जो वानरोंने समुद्रमें सेतु बाँधा तो उससे क्या? क्या छोटी-छोटी चींटियाँ पर्वत-सदृश बाँबियाँ नहीं बना लेंती? यदि वानरने लङ्कादहन किया तो क्या? यह तो अग्निका स्वभाव ही है। अपनी भुजाओंकी जयमें रामने क्या शूरताका आश्चर्य किया?—

रा० प्र०—'*साखामृग*' का भाव कि जो ताली बजते ही भागनेवाले हैं वे सिंहादिके आहार करनेवालोंके सामने कैसे ठहर सकते हैं? दूसरे, वानर बुद्धिहीन होते हैं। '*बँध्यो कीर मर्कट की नाईं*' कहावत प्रसिद्ध है। बेर आदिके खानेवालोंमें बुद्धि कहाँ?

पं०—'*सूर न होहिं ते*·····' का भाव कि पक्षी समुद्र लाँघते हैं तब भी शूर नहीं कहे जाते और तुम सब तो उनसे भी गये-गुजरे हो कि क्षुद्र समुद्रको सेतुके आश्रित हो उतरे। जो अङ्गद कहें कि हम खगवत् नहीं लाँघे, हम तो उसको बाँधकर उतरे यह शूरता है, उसपर आगे समुद्रका रूपक देकर अपना बल कहता है।

वीर—श्रीरामचन्द्रजीका पुल बाँधना उपमेय वाक्य है और पक्षियोंका समुद्र लाँघना उपमान वाक्य है। उपमानद्वारा उपमेयका गर्व परिहार करना 'द्वितीय प्रतीप' अलङ्कार है।

मम भुजसागर बलजल पूरा। जहँ बूड़े बहु सुर नर सूरा॥ ३॥
बीस पयोधि अगाध अपारा। को अस सूर जो पाइहि पारा॥ ४॥

अर्थ—मेरा भुजारूपी सागर बलरूपी जलसे पूर्ण है, जिसमें बहुत-से शूरवीर देवता और मनुष्य डूब गये॥३॥ कौन ऐसा शूरवीर है जो मेरे इन अगाध और अपार बीस समुद्रोंका पार पायेगा?॥४॥

नोट—१ अङ्गदने परशुरामजीके फरसेको समुद्रका रूपक दिया था, इसीसे रावणने अपनी भुजाओंको सागर कहा। परशुरामजीसे अपनेमें अधिक बल दिखाता है। यथा—

परशुराम	रावण
१ परशुरामका फरसा सागर है	यहाँ भुजा ही सागर है, अस्त्र-शस्त्रकी तो अभी बात ही नहीं। भुजबल इतना है कि हथियारका काम ही न पड़े।
२ वहाँ अगणित नृप बूड़े। (वे शूर न थे)	यहाँ बहुत शूरवीर देवता और मनुष्य बूड़े।
३ वहाँ मनुष्यमात्र डूबे	यहाँ देवतातक डूब गये।
४ वहाँ एक फरसा सागर	यहाँ २० भुजारूपी २० सागर

* प्रभुताई।

नोट—२—पुनः, पहले समुद्रमें वानरोंकी सहायतासे पुल बाँधकर पार उतरना कहकर हीनता कही। अब भुजका सागरसे रूपक देकर दूसरी प्रकार अपना बल अधिक दिखाता है। इस तरह कि—

वह समुद्र लघु था इससे वह बँध गया	यह अगाध और अपार समुद्र है।
वह थोड़ी महिमावाला एक समुद्र था	यहाँ बड़ी महिमावाले अनेक समुद्र हैं।
वह पर्वतोंसे पट गया, गहरा न था	यहाँ बड़े-बड़े पर्वतोंका पता भी न चलेगा।

रा० प्र०—एक-एक भुजा एक-एक समुद्र है, एक ही समुद्रमें अगणित शूरवीर सुर-नर डूब गये (शेषका आजतक काम ही न पड़ा), एकहीको कोई पार न पा सका तब बीस समुद्रोंको कौन पार कर सकता है जो इसी प्रकार बलसे परिपूर्ण हैं। और तुम सबको एक क्षुद्र सिन्धुके लाँधनेपर इतनी शेखी?

☞ मिलान कीजिये—*'कहा भयो बानर सहाय मिलि करि उपाय जो सिंधु बँधायो। जो तरिहै भुज बीस घोर निधि ऐसो को त्रिभुवन जन जायो॥'* (गी० लं० ३), **'परिमितमहिमानं क्षुद्रमेनं समुद्रं क्षितिधरघटनाभिः कोऽयमुत्तीर्य गर्वः। अकलितमहिमानः सन्ति दुष्प्रापपारा दशवदनभुजास्ते विंशतिः सिन्धुनाथाः॥'** (हनु० ८। ३१) अर्थात् थोड़ी महिमावाले क्षुद्र समुद्रको पर्वतोंद्वारा पार किया, यह क्या गर्व है? दशवदनके बीस भुजारूपी समुद्र अमित महिमावाले और दुःखसे पार पाने योग्य हैं।

वीर—भुजाओंको समुद्रका रूपक और बलको जलका रूपक देकर अगाध अपार शब्दोंसे अधिकत्व प्रकट करना 'अधिक अभेद रूपक अलङ्कार' है। इन वाक्योंसे बँधे हुए समुद्रकी लघुता व्यञ्जित करना 'गुणीभूत व्यङ्ग' है।

दिगपालन्ह मैं नीरु भरावा। भूप सुजसु खलु मोहि सुनावा॥५॥

अर्थ—रे दुष्ट! मैंने लोकपालोंसे जल भरवाया और तू एक राजाका सुयश मुझे सुनाता है! (मुझसे बढ़कर तेज और प्रताप जिसमें हो उसका यश सुनाता तो ठीक था)॥५॥

नोट—दिग्पालोंसे जल भरवाया। ये देवता हैं, इनका बल मनुष्योंसे बहुत अधिक है। देवता मेरी नीच टहल करते हैं, इतनेसे ही मनुष्य मेरे यहाँ किस गिनतीमें होंगे समझ ले। वे तो खा लिये जाते हैं। यथा—*'खाहिं निसाचर दिवस निसि।'* विशेष दोहा (२५) देखिये।

वीरकवि—दिग्पालोंमें अयोग्यता प्रकट करके अपने पराक्रमका अतिशय बखान करना 'सम्बन्धातिशयोक्ति अलङ्कार' है और इसमें काव्यार्थापत्ति अलङ्कारकी ध्वनि भी है।

जौं* पै समर सुभट तव नाथा। पुनि पुनि कहसि जासु गुनगाथा॥६॥
तौ† बसीठ पठवत केहि काजा। रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा॥७॥

शब्दार्थ—**बसीठ**=सँदेशा ले जानेवाला, दूत।

अर्थ—यदि तेरा स्वामी जिसका तू बारम्बार यश कहता है समरमें सुभट है तो दूत किस कार्यके लिये भेजता है? शत्रुसे प्रीति (सन्धि) करते उसे लज्जा नहीं लगती॥६-७॥

नोट—१ *'पुनि पुनि कहसि……'*, यथा—*'राम बिरोध कुसल जसि होई।'*, *'सिव बिरंचि सुर मुनि समुदाई। चाहत जासु चरन सेवकाई॥'*, *'जद्यपि लघुता राम कहँ तोहि बधे बड़ दोष'* इत्यादि बार-बार कहना है।

नोट—२—*'समरसुभट'*, *'बसीठ पठवत केहि काजा'*। (क) भाव कि *'सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु। बिद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रतापु॥'* (१। २७४) समर-शूर होते तो मुखसे प्रताप न कहला भेजते, वीरता दिखाते। पुनः, व्यंग यह भी है कि मैं समर-सुभट हूँ; इसीसे मैंने न कभी दूत भेजा न संधिकी बात की। (ख)—*'बसीठ पठवत'* अर्थात् बार-बार भेजते हैं क्योंकि सुभट नहीं हैं, मुझसे डरते हैं, नहीं तो एक दूतके लौटनेपर समाचार सुन फिर दूसरा दूत न भेजते। उनका बारम्बार दूत भेजना ही प्रमाण है कि मेरा बल अधिक है। उनमें बल नहीं है। यथा—**'रामश्चेद्रिपुहा प्रियापहरणे संधिं विधत्ते कथम्।'** (हनु० ८। ३७) अर्थात् यदि राम शत्रुहन्ता हैं तो स्त्रीके हर जानेपर संधि क्यों करते हैं?

* जौं—(भा० दा०), जौ—(का०)। † तौ—(का०)। तब—(भा० दा०)।

नोट—३ '*रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा*', यथा—'*रन चढ़ि करिअ कपट चतुराई। रिपु पर कृपा परम कदराई॥*' (अ० १९) ☞ यह '*राम बयरु होइहि अस हाला।*'.....'*तब कि चलिहि अस गाल तुम्हारा*' और '*भजसि न कृपासिंधु रघुराई*' का उत्तर है। (ख) '*नहि लाजा*' अर्थात् लोग क्या कहेंगे यह संकोच किञ्चित् नहीं है। पुनः, (ग) '*प्रीति बिरोध समान सन करिय*.....' इन अङ्गदके वचनोंका लक्ष्य लेकर भाव यह है कि जब तू उनको मुझसे अधिक कहता है तब प्रीति करनेको कैसे कहता है? प्रीति तो बराबरवालोंसे की जाती है।

वि० त्रि०—'*तौ बसीठ*......*लाजा*'। इति। जो बात प्रभुने खरदूषणको कहला भेजी थी, प्रायेण वैसी ही बात आज रावण अङ्गदसे कहते हैं। उन्होंने कहा था '*रिपु पर कृपा परम कदराई।*' (३। १९। १३) रावण कहते हैं '*रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा।*' बात एक ही हुई। ऐसा न होना चाहिये। खरदूषण और रावणके साथ व्यवहार-भेदका कारण होना चाहिये।

यहाँ बात यह है कि दूतके भेजनेसे ही रावण यह अर्थ लगाता है कि यदि मैं सीता लौटा दूँ तो रामजी प्रीति करनेके लिये प्रस्तुत हैं, और इसीलिये दूत भेजा है, यह तो कादरके लक्षण हैं; वीरके नहीं हैं (ऐसी ही प्रीति चाहनेवाले अर्जुनको भगवान्ने कहा '**कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्। अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन॥**' (गीता २। २) अर्थात् हे अर्जुन! लड़ाईके मैदानमें तुझमें ऐसा दोष कहाँसे उत्पन्न हो गया?)

परंतु यहाँ ऐसी बात नहीं है, प्रभु अपनी शरणागतिके द्वारको सबके लिये निरर्गल रखना चाहते हैं, अतः यह प्रभुकी उदारता है कि ऐसे शत्रुको भी शरणमें आनेका अवसर देते हैं। तदनुसार अङ्गदजी कहते हैं '*दसन गहहु तृन कंठ कुठारी। परिजन सहित संग निज नारी॥*' इसी भाँति खर-दूषणको भी अवसर दिया। '*जौं न होइ बल घर फिरि जाहू। समर बिमुख मैं हतौं न काहू॥*'

हर गिरि मथन निरखु मम बाहू। पुनि सठ कपि निज प्रभुहि सराहू॥ ८॥

अर्थ—रे मूर्ख बंदर! कैलाशको मन्थन करनेवाली मेरी भुजाएँ देख, फिर अपने प्रभुकी सराहना करना। भाव कि इनको देख लेगा तब उनकी सराहना न करेगा॥ ८॥

नोट—१ '*मथन*' शब्द यहाँ भावगर्भित है। दोहा २५ (१-३) देखिये। नोट २—'*निरखु*'। इससे जनाया कि पूर्व जब कहा था कि '*बिलोकु मम बाहू।*' (२२) तब अङ्गदने बाहुकी ओर न देखा था, इससे अब पुनः कहा कि प्रथम देख ले तब कुछ कह। देख ले कि वे इनके योग्य हैं कि नहीं।

वीरकवि—'*मथन*' शब्दमें 'रूढ़िलक्षणा' है। कैलाश पर्वत दही, दूध या पानी नहीं है जो मथा जा सकेगा, मुख्य अर्थका बोध होनेपर भी वचन व्यावहारिक है। मुख्यार्थ उठानेका है। भुजा दिखाकर अपनी महान् शूरता व्यञ्जित करनेका भाव 'अगूढ़ व्यङ्ग' है।

दो०—सूर कवन रावन सरिस स्वकर काटि जेहिं सीस।
हुने अनल अति हरष बहु बार साखि गौरीस॥ २८॥

अर्थ—रावणके समान कौन शूर है जिसने अत्यन्त हर्षपूर्वक बहुत बार अपने हाथों अपने सिर काटकर अग्निमें हवन कर दिये। साक्षात् गौरीपति इसके साक्षी हैं॥ २८॥

नोट—१ इस दोहेके भाव (२५ १-३) में ही आ गये हैं। २-'*हुने अनल महुँ बार बहु हरषित साखि गिरीस*' पाठ रा० प्र० में काशीकी प्राचीन प्रतिका दिया हुआ है। गौड़जीका मत है कि काशीका पाठ इसलिये अधिक अच्छा जँचता है कि इसमें 'हरषित' पद दीपदेहरी-न्यायसे '*हुने*' और '*साखि*' (हैं), दोनों क्रियाओंका विशेषण बन जाता है।

'*स्वकर*' का भाव कि अपने हाथ अपना सिर काटकर हवन करनेवाला कोई नहीं सुना गया। दूसरेसे भी अपना सिर कोई न कटवायेगा फिर भला अपने हाथ कौन काटेगा। सबको अपने प्राण प्रिय हैं।

जरत बिलोकेउँ जबहिं कपाला। बिधि के लिखे अंक निज भाला॥ १॥
नर के कर आपन बध बाँची। हसेउँ जानि बिधि गिरा असाँची॥ २॥
सोउ मन समुझि त्रास नहिं मोरे। लिखा बिरंचि जरठ मति भोरे॥ ३॥
आन बीर बल सठ मम आगे। पुनि पुनि कहसि लाज पति त्यागे॥ ४॥

शब्दार्थ—जरठ=बुड्ढा, वृद्ध। यथा—*'जाना जरठ जटायू एहा।'* (अ० २९)

अर्थ—जब मैंने मस्तकोंके जलते समय विधिके लिखे हुए अक्षर ललाटोंपर देखे तब मनुष्यके हाथों अपना वध पढ़ विधिकी वाणी असत्य जानकर हँसा॥१-२॥ वह भी समझकर मेरे मनमें डर नहीं है, बुढ़ापेमें बुद्धि भुलक्कड़ हो जानेसे बुड्ढे ब्रह्माने ऐसा लिख दिया होगा॥३॥ अरे शठ! तू लज्जा और प्रतिष्ठा छोड़कर मेरे आगे बारम्बार दूसरे वीरका बल (क्या) कहता है!॥४॥

नोट—१ (क) विधिकी लिपि 'अङ्क' कही जाती है। आगे *'बिधि गिरा असाँची'* कहकर *'गिरा'* से 'अङ्क' का बोध कराया। बाबा हरिहरप्रसादजी लिखते हैं कि कोई अस्थिमें जो जोड़ हैं उनको 'अङ्क' मानते हैं, कोई सामुद्रिक आदि रीतिको और कोई (आसुरी सभ्यतावाले) फ्रेनालोजी (Phrenology) विद्याद्वारा सिरके ४० भागोंके उच्च, निम्न, तिर्यग् या सम होनेमें समस्त फल कहते हैं—परंतु *'सो जानइ जेहि देहु जनाई।'* (ख)—*'हसेउँ जानि असाँची'*। हँसने और झूठ जाननेका कारण यह कि मनुष्य जिसके वश और मृत्यु जिसकी दासी है उसकी मृत्यु हो और वह भी मनुष्यके हाथ! ब्रह्माकी इस बुद्धिपर हँसी आयी।

वि० त्रि०—यह तामसी प्रकृतिका ज्वलन्त उदाहरण है कि ब्रह्मदेवके लेखको तो झूठ माना, और उनकी वाणीको अमोघ मानकर उनसे वरदान माँगता है *'हम काहूके मरें न मारे। बानर मनुज जाति दुइ बारे॥'* दूसरी बात यह कि जो ब्रह्मदेवने लिखा था, उसीको वरदान माँगकर पुष्ट करता है, अपने बलका इतना अभिमान है कि उसके सामने ब्रह्माके वचनको भी तुच्छ समझता है। देखें तो कि मनुष्य मुझे कैसे मार लेता है।

वीर—ब्रह्माके लिखे अङ्क झूठे हो नहीं सकते, इस सच्ची बातको जानते हुए भी झूठ अनुमान करना 'काकुक्षिप्त गुणीभूतव्यंग' है। रावणके कथनमें गूढ़ ध्वनि यह है कि मैं जानता हूँ पर जिद न छोड़ूँगा। तू बराबर व्यर्थ ही क्यों समझाता है, जब इस सम्बन्धमें ब्रह्माकी बातें नहीं मानता तब दूसरे किसीका समझाना बेमतलब है।

मिलान कीजिये—**'मृत्युः पादान्तभृत्यस्तपति दिनकरो मन्दमन्दं ममाग्रेऽप्यष्टौ ते लोकपाला मम भयचकिताः पादरेणुं ववन्दुः॥ दृष्ट्वा तं चन्द्रहासं स्रवति सुरवधूपन्नगीनां च गर्भो निर्लज्जौ तापसौ तौ कथमिह भवतो वानरान्मेलयित्वा॥'** (हनु० ८। १९) अर्थात् मृत्यु चरणसेवक है, सूर्य मेरे सामने मन्द होकर तपते हैं, अष्टलोकपाल डरके मारे मेरे पदरजकी वन्दना करते हैं, मेरे चन्द्रहास खड्गको देखकर देवाङ्गना और नागकन्याओंके गर्भ गिर जाते हैं तो फिर वे निर्लज्ज तपस्वी वानरोंसहित मेरे सामने कैसे समर्थ हो सकते हैं?

नोट—२ *'सोउ मन समुझि त्रास नहिं'* से जनाया कि अङ्क पढ़नेपर भी मैं वैसा ही निर्भय, सावधान और प्रसन्न बैठा आहुति देता हुआ शिवजीको विशेष रीतिसे प्रसन्न करता रहा। मैं ऐसा वीर हूँ, मेरा सामना कौन कर सकता है?

मिलान कीजिये—**'स्वेषूत्कृत्यहुतेषु मूर्धसु जवादग्नेः स्फटित्वा बहिर्व्याकीर्णेष्वलिकेषु दैवलिखितं दृष्ट्वापि रामार्पणम्॥ चिन्तेनास्खलितेन यस्तदधिकं ब्रह्माणमप्रीणयत् तस्मै कः प्रथमाय मानिषु महावीराय वैरायते॥'** (हनु० ८। ४३) अर्थात् बड़े वेगसे अपने सिरोंको काटकर होम करनेपर अग्निसे फूटकर बाहर फैले हुए सम्पूर्ण मस्तकोंमें दैवके लिखे हुए 'रामार्पण' (रामसे इसकी मृत्यु होगी) देखकर भी जो पहलेसे और भी सावधान चित्त करके प्रथमसे भी अधिक शिवजीको प्रसन्न करता रहा, उस महावीर मानियोंमें श्रेष्ठ मुझ रावणसे कौन वैर कर सकता है। नाटकमें **'रामार्पणम्'** है, उसकी जगह मानसमें *'नर के कर आपन बध'* है। नरका नाम यहाँ नहीं खोला है।

नोट—३ '*लाज पति त्यागे*'। भाव कि जिसकी बात कोई एक बार न सुने उसे चाहिये कि फिर न कहे। न सुननेपर फिर कहनेसे कहनेवालेकी प्रतिष्ठा नहीं रह जाती। जैसे रावणके '*रिपु उत्कर्ष कहत सठ दोऊ। दूरि न करहु इहाँ है कोऊ॥*' ये वचन सुनकर माल्यवन्त अपने मानमर्यादाके विचारसे फिर न बोले, चल दिये। विभीषण फिर भी बोले। फल यह हुआ कि उसने खल, शठ आदि अनेक दुर्वचन कहे और लात भी मारी।

बं० पा०—'लाज पति' अर्थात् लोककी लज्जा और कुलकी मर्यादा।

शङ्का—यहाँ रावण कहता है कि '*नर के कर आपन बध बाँची।*' पूर्व बालकाण्डमें सतीमोह-प्रसंगमें भी '*रावन मरन मनुज कर जाँचा*' कहा है। पर रावणने तो वरदान यह माँगा है कि '*हम काहू के मरहिं न मारे। बानर मनुज जाति दुइ बारे॥*' (१। १७७) इस भेदका समन्वय कैसे किया जायगा? समाधान—(१) 'हम' बहुवचनके प्रयोगसे ज्ञात होता है कि रावण अपनेसे सम्बन्धित सारे परिवार राक्षसवर्गके लिये वरदान माँग रहा है। हम=सपरिवार हमलोग। वानर और मनुष्य इन दो जातियोंके अतिरिक्त अन्य किसीके हाथ कोई न मरे। तात्पर्य कि कोई नरके हाथ मरे, कोई वानरके हाथ। (वे० भू०) (२) मेरी समझमें रावणने नर और वानर दोको विवर्जित किया है। विधाताने दोमेंसे '*नर*' को चुन लिया कि इनके हाथ रावणकी मृत्यु होगी, इसमें कोई प्रश्न उठनेकी जगह ही नहीं है। '*हम*' वाला भाव भी उत्तम है पर शङ्का होती है कि क्या देवासुर-संग्राम जो अनेक बार रावणदल और सुरदलमें हुआ, क्या उसमें जो राक्षस मरे वे नर या वानरके हाथ मरे थे?

कह अंगद सलज्ज जग माहीं। रावन तोहि समान कोउ नाहीं॥५॥
लाजवंत तव सहज सुभाऊ। निज मुख निज गुन कहसि न काऊ॥६॥
सिर अरु सैल कथा चित रही। तातें बार बीस तैं कही॥७॥

अर्थ—अङ्गदने कहा—हे रावण! तेरे समान लज्जावान् संसारमें कोई नहीं है॥५॥ तेरा सहज स्वभाव ही लाजवन्त है, तू तो अपने मुखसे अपना गुण कभी कहता ही नहीं॥६॥ सिर काटने और कैलाश पर्वत उठानेकी कथा चित्तमें रह गयी, इससे बीसों बार तूने कही॥७॥

नोट—१ '*निज मुख निज गुन कहसि न काऊ।*' भाव कि अपने मुखसे अपनी प्रशंसा करनेमें लज्जा लगती है, इसीसे कहनेमें संकोच होता है। यथा—'**निजगुणगरिमासुखाकरः स्यात् स्वयमनुवर्णयतां सतां न तावत्। निजकरकमलेन कामिनीनां कुचकलशाकलनेन को विनोदः॥**' (सु० र० भ० आत्मश्लाघानिन्दाप्रकरण ५) अर्थात् अपने ही मुखसे कहते हुए सज्जनोंको अपने गुणोंकी गुरुता सुखकारी नहीं होती; जैसे अपने ही करकमलोंसे अपने कुचरूपी कलशोंको मलनेसे कामिनीको क्या विनोद प्राप्त हो सकता है? तू ऐसा लज्जावान् है कि कभी कहता ही नहीं। इसमें व्यंग यह है कि तू निर्लज्ज है, क्योंकि अपनी प्रशंसा अपने मुखसे बारम्बार करनेपर भी लज्जित नहीं होता। इसी भावसे श्रीलक्ष्मणजीने परशुरामजीसे कहा था कि '*अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी॥ नहिं संतोष त पुनि कछु कहहू।*' (१। २७४) यहाँ कण्ठध्वनिसे काकुद्वारा विपरीत अर्थ होना 'वक्रोक्ति अलंकार' है। कोई-कोई आचार्य इसे लक्षणामूलक अगूढ़ व्यंग' कहते हैं।

नोट—२ '*सिर अरु सैल कथा चित रही।....*' का भाव कि—(क) जीवनभरमें तूने यही दो पुरुषार्थ किये। इससे ये मस्तिष्कमें जमे हुए हैं। (ख) बहुत सुना चुका अब बस कर। (ग) इनको छोड़ और कोई कथा याद हो, या और कोई पुरुषार्थ किया हो तो कह।

मिलान कीजिये—'**आस्तां मस्तकहोमविक्रमकथा पौलस्त्य विस्तारिणी देहं किं न निपातयन्ति दहने वैधव्यभीताः स्त्रियः। कैलासोद्धरणेन भारवहनप्रौढिस्त्वयाऽऽविष्कृता तूर्णं वर्णय किं च किंचिदपरं यत्पौरुषस्यास्पदम्॥**' (हनु० ८। ५६) अर्थात् अरे रावण! अपने मस्तकोंके होमके विस्तारकी कथा रख दे, क्या वैधव्यके भयसे भीत

हुई स्त्रियाँ अपने शरीरको अग्निमें नहीं डाल देतीं? कैलासको उखाड़कर उस भारको धारण करनेकी प्रसिद्धि तूने प्रकट की और भी जो कुछ तेरे पुरुषार्थकी वार्ता हो उसको भी तू शीघ्र ही कह डाल।

बं॰ पा॰—'*बार बीस।*' अर्थात् बीसों बिस्वा यही कथाएँ तेरे पास हैं, अन्य नहीं। अथवा, दोपर शून्य होनेसे बीस होता है सो तेरे पास 'सिर' और 'सैल' दो कथाएँ हैं; आगे सब शून्य हैं।

रा॰ प्र॰—'बार बीस' अर्थात् दसों मुखोंसे बार-बार दो कथाएँ।

नोट—३ ☞ यह '*पुनि पुनि कहसि लाज पति त्यागे*' का उत्तर है। दोहा २४ देखिये।

सो भुज बल राखेहु उर घाली। जीतेहु सहसबाहु बलि बाली॥ ८॥

अर्थ—वह अपना भुजबल हृदयमें डाल रखा है जिससे तुमने सहस्रबाहु, बलि और वालीको जीता था॥ ८॥

नोट—१ अङ्गदजीका पूरा कथन यहाँतक व्यङ्गसे भरा हुआ है। उसको निर्लज्ज कहना है पर सलज्ज कहा, उसने अनेक बार अपनी प्रशंसा की, इसपर वे कहते हैं कि तुम तो कभी अपनी प्रशंसा करते ही नहीं, यही लाजवंतका स्वभाव है। रही सिर और शैलकी कथा, यह तो साधारण बात थी, स्मरण आ गयी कह दी; पर अपने पुरुषार्थकी कथाएँ नहीं कहते। इसमें व्यंग है कि और पुरुषार्थ किया ही नहीं। हारनेकी बातको '*जीतेहु*' कहा। सहस्रबाहु आदिके जीतनेकी कथा छिपा रखी, क्योंकि उसमें बड़ा पुरुषार्थ है, अपने मुखसे कैसे कहें? इसमें व्यंग यह है कि तुम निर्लज्ज हो, इससे हारनेवाली बात नहीं कहते, केवल प्रशंसावाली कहते हो।

नोट—२ टीकाकारोंने प्रायः यों अर्थ किया है कि जब सहस्रबाहु आदिको जीतने गये तब क्या सिर और शैलवाला बल छिपा रखा था, इसीसे वहाँ दुर्दशा हुई; यदि वह बल वहाँ प्रकट करता तो वे न जाने क्या करते। (बं॰ पा॰)

वीरकविजी '*जीतेहु····बाली*' का अर्थ करते हैं कि 'तभी तो सहस्रबाहु, बलि और वालीने तुम्हें जीत लिया!' इन वाक्योंमें वाच्यार्थ, व्यंगार्थ बराबर होनेसे 'तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यंग' है। अर्थात् जब भुजाओंमें अप्रमेय बल था तब सहस्रार्जुन, बलि और वालीने कैसे जीत लिया? (वीर)

पु॰ रा॰ कु॰—अपमान आदि कुछ बातें गुप्त रखनेकी हैं, यथा—'**सिद्धिं मन्त्रौषधं धर्म गृहच्छिद्रं च मैथुनम्। कुभुक्तं कुत्सितं कर्म मतिमान् न प्रकाशयेत्॥**' (चाणक्य) '**आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं मन्त्रं मैथुनभेषजम्। दानमानापमानानि नवैते गोपकारकाः॥**'

भाव कि तू इनमेंसे किस नीतिसे उसे छिपाता है?

शङ्का—पूर्व कहा है कि '*ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनु धारी। दसमुख बसबर्ती नर नारी॥*' (१। १८२। १२) तो क्या सहस्रबाहु, बलि और वाली ब्रह्मसृष्टिके बाहर थे अथवा तनधारी नहीं थे?

समाधान—राजनीतिकी अज्ञता इस शङ्कासे प्रकट होती है। 'साम-दान अरु दंड-विभेद' चार राजनीतियाँ हैं। रावणने बलि और वालीसे मित्रताकर उनको वशमें कर लिया था और सहस्रबाहु श्रीपरशुरामजीके हाथों जब मारा जा चुका था उसके बादकी बात है कि '*ब्रह्मसृष्टि जहँ····।*' (वे॰ भू॰) सहस्रार्जुनसे भी मित्रता हो गयी थी।

सुनु मतिमंद देहि अब पूरा। काटे सीस कि होइअ सूरा॥ ९॥
इंद्रजालि कहुँ कहिअ न बीरा। काटइ निज कर सकल सरीरा॥ १०॥

शब्दार्थ—'पूर देना'-'पूरा=उत्तर। जैसे समस्यापूर्ति। प्रश्न आधा है, उत्तर होनेपर पूरा होता है, इसीसे पूर्वार्ध और उत्तरार्ध, पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा आदि नाम हुए।' (रा॰ प्र॰)। यथा—'*दुइ सुत मारेउ दहेउ पुर अजहु पूर पिय देहु।*' (३६) **इंद्रजाली**=इन्द्रजाल करनेवाला। इन्द्रजाल—यह तन्त्रका एक अङ्ग है। जादूगरी, मायाकर्म।

अर्थ—अरे मन्दबुद्धि! अब उत्तर दे। सिर काटनेसे क्या कोई शूर हो जाता है?॥ ९॥ इन्द्रजालीको

कोई वीर नहीं कहता, (यद्यपि) वह तो अपने हाथसे अपना सारा शरीर काट डालता है। (भाव कि तूने तो अपने सिर ही काटे, इसीपर इतना गर्व कि अपनेको शूर मान बैठा है। और दूसरोंसे अपनी गणना शूरोंमें कराना चाहता है) ॥१०॥*

नोट—रावणने जो कहा था कि *'नाँघहिं खग अनेक बारीसा। सूर न होहिं ते सुनु जड़ कीसा॥'* तथा *'सूर कवन रावन सरिस स्वकर काटि जेहि सीस।'* (२७) उसीका यह उत्तर है। पूर्व जो कहा कि सिर काटनेसे कोई शूर नहीं हो जाता, उसीका यहाँ विशेष उदाहरणसे समर्थन करते हैं—यह 'अर्थान्तरन्यास अलङ्कार' है।

दो०—जरहिं पतंग बिमोह† बस भार बहहि खरबृंद।
ते नहिं सूर कहावहिं‡ समुझि देखु मतिमंद॥२९॥

शब्दार्थ—वहना=लादकर ले चलना। मोह=भ्रम, अज्ञान, प्रेम।

अर्थ—अरे मंदबुद्धि! (मनमें) समझ देख कि मोहवश पतंगे अग्निमें जल मरते हैं और गधोंके झुण्ड बोझा लादकर ले चलते हैं; पर वे शूरवीर नहीं कहे जाते॥ २९॥§

नोट—*'समुझि देखु मतिमंद।'* (क) *'मतिमंद'* 'मंदबुद्धि' का भाव कि ऐसे न सुझायी देगा, बहुत विचारनेपर-समझनेपर सूझेगा कि मैंने जो कहा वह यथार्थ है। मंदबुद्धि है इसीसे अपनेको तू शूर मानने लगा, नहीं तो शूर न मानता। (ख) रावणके *'सुनु जड़ कीसा'* और *'निरखु'* के उत्तरमें *'समुझि देखु मतिमंद'* कहा गया।

पां०, बं० पा०—यहाँ दो दृष्टान्त दो देशमें कहे। सिर काटकर अग्निमें होम करनेके उत्तरमें पतंगका और कैलास उठानेमें गर्दभका दृष्टान्त है।

रावण	अङ्गदका प्रत्युत्तर
१ *नाघहिं खग अनेक बारीसा। सूर न होहिं ते सुनु जड़ कीसा॥ सूर कवन रावनसरिस स्वकर काटि ''''''।*	*इंद्रजालि कहँ कहिय न बीरा। काटइ निज कर सकल सरीरा॥ काटे सीस कि होइअ सूरा।*
२ *हरगिरिमथन निरखु मम बाहू।*	*भार बहहिं खरबृंद, समुझि देखु।*
३ *हुने अनल महँ बार बहु।*	*जरहिं पतंग बिमोह बस।*
४ *पुनि सठ कपि निज प्रभुहि सराहू।*	*अब जनि बतबढ़ाव खल करही। सो भुज बल राखेहु उर घाली।*
५ *जौं पै समर-सुभट तव नाथा। तौ बसीठ पठवत केहि काजा।*	*दसमुख मैं न बसीठी आएउ। अस बिचारि रघुबीर पठाएउ॥ नहिं गजारि जस बधे सृगाला।*
६ *रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा।*	*'मन महुँ समुझि बचन प्रभु केरे'* से *'लेइ जातेउँ सीतहिं बरजोरा'* तक
७ *मम भुजसागर बल जल पूरा।*	*जानेउँ तव बल अधम सुरारी। सूने हरि आनेहि परनारी॥*
८ *पुनि पुनि कहसि लाज पति त्यागे।*	*'कह अंगद सलज्ज जगमाहीं ''''''। सिर अरु सैल कथा चित रही। तातें बार बीस तैं कही॥'*

अब जनि बतबढ़ाव खल करही। सुनु मम बचन मान परिहरही॥१॥
दसमुख मैं न बसीठी आएउ। अस बिचारि रघुबीर पठाएउ॥२॥

* 'हतेषूत्तमांगेषु शौर्यं न भाति वचस्त्वं निशामय मदीयं दशास्य। समग्रेषु गात्रेषु भिन्नेषु वीरो निजेनापि हस्तेन वै इन्द्रजाली।' (रं० ब०)। अर्थात्—अरे रावण! तू मेरे वचन सुन, अङ्गोंके काटनेसे शूरता नहीं होती; इन्द्रजाली अपने हाथों सारा शरीर टुकड़े-टुकड़े कर डालनेपर भी वीर नहीं कहा जाता।

† बिमोह—(का०), मोह—(भा० दा०, छ०)

‡ सराहिये—(का०)।

§ अज्ञानभूताः सलभा दहन्ति वहन्ति भारं सुतरां च गर्दभाः।
ते सन्ति शूरा न च दुर्मते वै न भारवाही भवतीति शूरः॥ (रं० ब०)

बार बार अस* कहइ कृपाला। नहिं गजारि जसु बधें सृकाला॥ ३॥
मन महुँ समुझि बचन प्रभु केरे। सहेउँ कठोर बचन सठ तेरे॥ ४॥
नाहि त करि मुखभंजन तोरा। लै जातेउँ सीतहि बरजोरा॥ ५॥

शब्दार्थ—**बतबढ़ाव**—बात बढ़ना और बात बढ़ाना मुहावरे हैं। बातका विवादरूपमें हो जाना, कहा-सुनी करना। व्यर्थ बात बढ़ाना, विवाद वा झगड़ा-बखेड़ा। **सृकाल** (शृगाल)=गीदड़। **बसीठी**=दौत्यकर्मके लिये।

अर्थ—रे खल! अब विवाद न बढ़ा। मेरा वचन सुन और अभिमान छोड़ दे (कि मेरा कुम्भकर्ण ऐसा भाई है, इन्द्रजित पुत्र है और मैंने तो चराचरमात्रको जीता है तब मेरा कोई क्या कर सकता है? यदि राम सुभट होते तो संधिकी बात क्यों करते?)॥ १॥ रे दशमुख! मैं दौत्यकर्मके लिये नहीं आया हूँ। श्रीरघुवीरने यह विचारकर मुझे भेजा है॥ २॥ दयालु श्रीरामजी बराबर ऐसा कहते हैं कि गीदड़को मारनेमें सिंहको यश नहीं प्राप्त होता॥ ३॥ अरे शठ! प्रभुके वचन मनमें समझकर ही मैंने तेरे कठोर वचन सहे हैं॥ ४॥ नहीं तो तेरे मुँह तोड़कर मैं श्रीसीताजीको जबरदस्ती ले जाता॥ ५॥

नोट—१ (क) '*मान परिहरही।*' मान छोड़नेको कहा, क्योंकि मान रहते शिक्षा सुनी नहीं जाती, यथा—'*बिनती करउँ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन॥*' (५। २२) (ख) बतबढ़ाव न कर अर्थात् बहुत टंटा बढ़ानेका प्रयोजन नहीं; क्योंकि मैं अकेला तुझसे निर्बल नहीं हूँ। (ग) '*मैं न बसीठी आएउ।*' भाव कि दूत छोटेके यहाँ नहीं भेजा जाता, इसलिये मैं दूत होकर संधिके लिये नहीं आया हूँ—(पं०) वि० त्रि० जी लिखते हैं कि रावणके यह कहनेपर कि '*तौ बसीठ पठवत केहि काजा। रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा॥*' अङ्गदजी सीधे इनकार करते हैं कि मैं रामका दूत तो हूँ पर दूतत्वके लिये नहीं आया हूँ, यथा—'*मम जनकहि तोहि रही मिताई। तव हित कारन आयउँ भाई॥*' तुमसे मैंने कभी नहीं कहा कि रामजीसे प्रीति कर लो। तुम्हारे हितके लिये तुम्हे शरणमें जानेकी सलाह दी, और गुरुतर अपराधी होनेके कारण शरणागतिकी पूरी विधि बतलायी। प्रभु तो तेरे वधमें अपना यश नहीं मानते। '*अनुहुंकुरुते घनध्वनिं न तु गोमायुरुतानि केसरी*'† बादलके गरजनेपर सिंह दहाड़ता है, सियारोंके हुआँ-हुआँ करनेपर ध्यान भी नहीं देता। (घ)—'*रघुबीर पठाएउ*' और '*कृपाल*' का भाव कि वे पराक्रम-वीर हैं, उनको सन्धिकी जरूरत नहीं, पर वे दयावीर भी हैं, कृपालु हैं, तुझपर तरस आता है, अतः तेरे हितोपदेशके लिये मुझे भेजा।

नोट—२ '*नहिं गजारि जस बधे सृकाला*' इति। भाव कि राम सिंह हैं, तू गीदड़ है, तुझमें और उनमें इतना अन्तर है जितना गीदड़ और सिंहमें। गीदड़को सिंह मारे तो उसे सब थू-थू करेंगे, इसी प्रकार तुझे श्रीरामजी मारें तो उससे उनकी नामबरी नहीं होनी है, यश होना होता तो इतना विलम्ब न करते।

☞ मिलान कीजिये—'**यदन्तरं वायसवैनतेययोर्यदन्तरं सिंहशृगालयोर्वने।**
खद्योतमार्तण्डलयोर्यदन्तरं तदन्तरं ते रघुनन्दनस्य च॥'—(नाटक)

'**न दूये नः पूर्वं नृपतिमनरण्यं यदवधीर्जयो वा मृत्युर्वा युधि भुजभृतां कः परिभवः।**
जितं मन्ये कारागृहविनिहतं हैहयपतेः पुलस्त्यो यद्भिक्षामकृतकृपणं तद्व्यथयति॥' (हनु० १४। २५)

राम-रावण-युद्ध-समय रावणके कटु वचनोंके उत्तरमें श्रीरामजीके ये वचन हैं कि पूर्व जो तूने राजा अनरण्यको मारा उसका मुझे दुःख नहीं, क्योंकि युद्धमें बलशालीकी जय या मृत्यु ही होती है। पराजय क्या है? परन्तु हैहयराजके कारागृहमें जीते ही बँधे हुए तुझको मानकर मुझे दुःख होता है कि जिस तुझको पुलस्त्यने दीन होकर सहस्रार्जुनसे भिक्षामें माँगकर छुड़ाया उसे क्या मारूँ। भाव कि भिक्षामें माँगे हुएको मारनेमें मुझे लज्जा लगती है।—[यहाँ '**सारूप्यनिबन्धना अप्रस्तुत प्रशंसा**' अथवा 'अन्योक्ति' अलङ्कार है—(वीर)।]

नोट—३ '*मन महुँ समुझि*' में ध्वनि यह है कि मैं अकेला ही तेरा वध कर सकता हूँ पर तुझे

* इमि—(का०)। †—वीर—प्रथम बसीठी होनेसे इन्कार कर फिर अन्य प्रकार उसी बातका स्थापन करना 'निषेधाक्षेप अलङ्कार' है।

गीदड़ समझ नहीं मारता। इससे अपनेको सिंह सूचित किया।

जानेउँ तव बल अधम सुरारी। सूने हरि आनेहि परनारी॥ ६॥
तैं निसिचरपति गर्ब बहूता। मैं रघुपति-सेवक कर दूता॥ ७॥
जौं न राम अपमानहि डरऊँ। तोहि देखत अस कौतुक करऊँ॥ ८॥

अर्थ—हे सुरारि! हे अधम! मैंने तेरा बल तो उसी समय जान लिया जब तू सूनेमें परस्त्री चुरा लाया (बल होता तो श्रीलक्ष्मणजीसे ही लड़कर न लाता?)॥ ६॥ तू राक्षसराज है, तुझे बहुत गर्व है और मैं रघुनाथजीके दासका दूत हूँ॥ ७॥ यदि मुझे श्रीरामजीके अपमानका डर न होता तो तेरे देखते-देखते मैं ऐसा तमाशा करता॥ ८॥

नोट १—*'तैं निसिचर पति गर्ब बहूता।'* इति। भाव कि कहाँ तो तू दिग्विजयी राजा और कहाँ मैं दासका दास, कहाँ तू बलका अभिमानी और कहाँ मैं तुच्छ बलवाला, जिसको बलका अभिमान हो नहीं सकता। इस तरह रामदलमें अपनेको तुच्छ कहकर जनाया कि ऐसा एक तुच्छ सेवक भी तेरा वध करनेमें अपनी हीनता समझता है। इस प्रकार *'नहिं गजारि जस बधे सृकाला'* जो कहा उसीको पुष्ट कर रहे हैं। निशिचरपतिका भाव कि तू सेनासहित है और मैं अकेला हूँ।

पं०, पु० रा० कु०—*'जौं न राम अपमानहि डरऊँ।'…'* इति। श्रीरामजी अपने बाणोंसे तेरा वध करना चाहते हैं। यदि मैं श्रीसीताजीको ले जाऊँ तो उनकी प्रतिज्ञा मिथ्या होती है, यही अपमान है। यथा *'तव सोनित की प्यास तृषित राम सायक निकर। तजउँ तोहि तेहि त्रास कटु जलपक निसिचर अधम॥'* (३२)

नोट—२ *'तोहि देखत'* अर्थात् तेरी तरह सूनेमें चोरीसे नहीं, वरन् तेरे सम्मुख तुझे ललकारकर। लक्ष्मणजीके रहते भी तुझे सीताजीको ले आनेका साहस न हुआ और मैं तेरे और सब सभाके सामने ऐसा करता।

नोट—३ *'कौतुक करऊँ।'* भाव कि (क) मेरे लिये यह खेल ही होगा, मुझे इसमें कुछ परिश्रम न होगा और न विशेष कुछ यत्न ही करना पड़ेगा। यथा, *'नाथ जानि अस आयसु होऊ। कौतुक करउँ बिलोकिअ सोऊ॥'* (१। २५३। ७) देखिये। (ख) तुम कौतुक देखनेवाले गुणग्राहक हो, यथा—*'मैं गुनगाहक परम सुजाना।'* (२४। ४) अतः मैं तुमको यह कौतुक दिखाता।

☞ मिलान कीजिये—'**एकोऽहं पवनात्मजो दशमुख त्वं चापि कोटीश्वरस्त्वां जित्वा समरे प्रभोः प्रणयिनीं सीतां च नेतुं क्षमः। किन्तूत्थाप्य भुजं पुरा भगवता रामेण सुग्रीवतो हत्वा दक्षिणपाणिना वसुमतीं त्वां हन्तुमुक्तं वचः॥**' (हनु० ६। ३०)

श्रीहनुमान्‌जीने रावणसे कहा—हे दशमुख! मैं पवनका पुत्र अकेला हूँ और तू करोड़ोंका स्वामी है, मैं तुझे संग्राममें जीतकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी पतिव्रता सीताको ले जानेको समर्थ हूँ। पर भगवान् रामचन्द्रने प्रथम भुजा उठाकर सुग्रीवके सामने दक्षिण हाथसे पृथ्वीको ताड़ित कर तेरे मारनेकी प्रतिज्ञा की है।

'**कोसलराज के काज हौं आज त्रिकूट उपारि लै बारिधि बोरौं। महाभुजदंड द्वै अंडकटाह चपेट की चोट चटाक दै फोरौं॥ आयसु भंग तें जौं न डरौं सब मींजि सभासद् सोनित खोरौं। बालि को बालक जौ तुलसी दसहू मुख के रनमें रद तोरौं॥**' (क० लं० १४), '**तू रजनीचरनाथ महा रघुनाथके सेवकको जन हौं हौं। बलवान है स्वान गली अपनी तोहि लाज न गालु बजावत सौं हौं॥ बीस भुजा दससीस हरौं न डरौं प्रभु आयसु भंग तें जौं हौं। खेत में केहरि ज्यों गजराज दलौं दल बालिको बालकु तौ हौं॥**' (क० लं० १३); '**लंक लाय दियो बली हनुमंत संतन गाइयो। सिंधु बाँधत सोधि कै नल छीर छींट बहाइयो॥ ताहि तोहि समेत अन्ध उखारि हौं उलटा करौं। आजु राज कहाँ बिभीषण बैठिहैं तेहि ते हरौं॥**' (रा० चं० प्र० १६। ३३)

उपर्युक्त उद्धरण सब इन्हीं चौपाइयोंकी व्याख्या समझिये। ये सब भाव इन चौपाइयोंमें हैं।

यहाँ अङ्गदके कथनमें 'आत्मतुष्टि-प्रमाण अलंकार' है।

दो०—तोहि पटकि महि सेन हति चौपट करि तव गाउँ।
तव जुवतिन्ह* समेत सठ जनकसुतहि लै जाउँ॥ ३०॥

शब्दार्थ—**चौपट**=नष्टभ्रष्ट, विध्वंस, यथा—'*जो दिन प्रति अहार कर सोई। बिस्व बेगि सब चौपट होई*' (बा०)

अर्थ—रे शठ! तुझको पृथ्वीपर पटककर, तेरी सेनाको मारकर और तेरे गाँवको चौपट करके तेरी स्त्रियोंसमेत श्रीजनकसुताको लेकर चला जाऊँ॥ ३०॥

नोट—१ '*गाउँ*' पद लङ्काकी तुच्छता दिखानेके लिये एवं तिरस्कारहेतु दिया।

नोट—२'*तव जुवतिन्ह समेत* ""।' भाव कि (क) तेरी सब रानियाँ उनकी दासी होकर साथ चलतीं, (ख) तू एकको चुराकर लाया मैं तेरी सब रानियोंको तुझे जीतकर जबरदस्ती ले जाता।—[(ग) पं०—मन्दोदरी भक्त है, तेरे योग्य नहीं है। उसे सीताजीकी सेवाके लिये सङ्ग ले जाऊँ। (घ) मा० म०—रामानुरागिनी और अपनी माता जानकर ले जाता। अथवा, अब विभीषण लङ्काका राजा है, मन्दोदरी लङ्कापतिकी स्त्री होती है' अतः विभीषणको उसका पति बनानेके लिये ले जाता।]

जौं अस करौं तदपि न बड़ाई। मुएहि बधे नहिं कछु मनुसाई॥ १॥

अर्थ—जो ऐसा करूँ तो भी इसमें कुछ बड़ाई (की बात) नहीं है। मरे हुएको मारनेमें कुछ पुरुषत्व नहीं (कहा जा सकता)॥ १॥

पु० रा० कु०—रावण कह सकता था कि ऐसा पुरुषार्थ तुममें है तो जानकीजीको ले क्यों नहीं जाते, तुम्हारी करतूतसे तुम्हारे प्रभुकी अधिक बड़ाई होगी? यथा—'*जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आए पुर कवन भलाई॥*' इसीको लक्ष्य करके अङ्गद कहते हैं कि जो ऐसा करूँ तो भी बड़ाई नहीं है। कारण कि '*मुएहि बधे* ""।' अर्थात् अपनेको शूर माननेवाला यदि डरपोकका वध करे तो न प्रशंसास्पद है, न स्वर्गप्रद है।

कौल कामबस कृपिन बिमूढ़ा। अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा॥ २॥
सदा रोगबस संतत क्रोधी। बिष्नु बिमुख श्रुति संत बिरोधी॥ ३॥
तनुपोषक निंदक अघखानी। जीवत सव सम चौदह प्रानी॥ ४॥
अस बिचारि खल बधउँ न तोही। अब जनि रिस उपजावसि मोही॥ ५॥

शब्दार्थ—**कौल**=वाममार्गी—'**अन्तःशैवाः बहिःशाक्ताः सभायां वैष्णवा मताः। नानाबेषधराः कौला विचरन्ति महीतले॥**', '**मद्यं मांसं तथा मन्त्रो मैथुनं मत्स्यमेव च। मकाराः पञ्च विख्याताः कौलानां सिद्धिदायकाः॥**', '**तजि श्रुतिपंथ बाम पथ चलहीं। बंचक बिरचि बेष जग छलहीं॥**' (पु० रा० कु०) कौलाचार्यकृत कौलार्णव ग्रन्थके अनुसार चलनेवाला जिसमें मद-मैथुनादिसे मुक्ति मानते हैं—(पु० रा० कु०) कृपण-सूम, कंजूस। =फलासक्ति आदिसे कर्म करनेवाले। '**फलसङ्गादिना कर्मकुर्वाणाः कृपणाः संसारिणो भवेयुः।**' (श्रीरामानुजभाष्य), '**कृपणाः फलहेतवः**' (गीता २। ४९) पुनः, कृपण=जो अक्षर ब्रह्मको बिना जाने ही इस लोकसे मरकर जाता है। यथा—'**यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वास्माल्लोकात् प्रैति स कृपणः॥**' (बृहदारण्यक अ० ३ ब्रा० ८। १०)=दीन।

अर्थ—वाममार्गी, कामी, कंजूस (सूम), अत्यन्त मूढ़, अत्यन्त दरिद्र, कलङ्की, अत्यन्त वृद्ध॥ २॥ सदा रोगी रहनेवाला, निरन्तर क्रोधयुक्त रहनेवाला, विष्णुविमुख, श्रुति और संतका विरोध करनेवाला॥ ३॥ अपना ही शरीर (वा, शरीरको ही आत्मा जानकर) पोषण करनेवाला, निन्दा करनेवाला, पापकी खानि—ये चौदह प्राणी जीते ही शव (मृतक) के समान हैं। वा, ये सब पापकी खानि हैं और जीते ही मुर्दातुल्य हैं॥ ४॥† अरे खल! ऐसा विचारकर मैं तेरा वध नहीं करता। बस अब मुझसे क्रोध न पैदा करवा॥ ५॥

* मन्दोदरी—(का०)। † वीर—यहाँ जीवित प्राणियोंको भिन्न-भिन्न अवगुणोंके योगसे मृतक स्थापन करना 'सारोपालक्षणा' है। मृतक उपमानका गुण जीवित प्राणी उपमेयमें स्थापन करना 'द्वितीयनिदर्शना' है।

पं० पा०—व्यासजीने दरिद्र, व्यथित (रोगवश), मूर्ख, परदेशमें वास करनेवाले और 'सदा सेवक' वा नृपसेवक—इन पाँचोंको मृतकसमान कहा है, यथा—**'जीवितोऽपि मृताः पञ्च व्यासेन परिकीर्तिताः। दरिद्रो व्यथितो मूर्खो प्रवासी नृपसेवकः॥'** इति (नीति) **'नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते। न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः॥'** (भागवत) अर्थात् जिसका कर्म धर्मके लिये नहीं होता, न वैराग्यके लिये और न भगवान् या भगवद्भक्तोंकी सेवाके लिये, वह जीते ही मरा हुआ है।

वि० त्रि०—*'कौल काम बस कृपिन बिमूढ़ा'* इति। श्रीगोस्वामीजीने किसी सम्प्रदायके विरोधमें कभी कुछ नहीं कहा। एक वाममार्गसे उनकी पटरी नहीं बैठी, यथा—*'तजि श्रुति पंथ बाम पथ चलहीं। बंचक बिरचि बेष जग छलहीं।'* क्योंकि द्विजातिके लिये वामपथ महानिषिद्ध है। तन्त्रोंमें भी यही सिद्धान्त पाया जाता है। श्रुतिसिद्धान्ततन्त्र कहता है—**विप्रो दक्षिणमार्गेण महामायां प्रपूजयेत्।** ब्राह्मण दक्षिण-मार्गसे महामायाकी पूजा करे। मेरुतन्त्र कहता है **'सर्वाचारपरिभ्रष्टः कुलाचारं समाश्रयेत्। कुलाचारपरिभ्रष्टो रौरवं नरकं व्रजेत्॥'** सब आचारोंसे जो भ्रष्ट हो जाय, वह कुलाचारका समाश्रयण करे, कुलाचारसे भी परिभ्रष्ट होनेपर तो रौरव नरक ही होता है। भावनिर्णयतन्त्रमें कहा है कि **'ब्राह्मणो वीरभावञ्च मनसापि न चिन्तयेत्।'** ब्राह्मण तो वीरभावको मनसे भी न चिन्तन करे। भैरवीतन्त्र कहता है **'ब्राह्मणास्ताम्रपात्रे तु गव्यं मद्यं प्रकल्पयेत्'** ब्राह्मण ताम्रपात्रमें दूध रखकर मद्यकी कल्पना करे। इत्यादि

टिप्पणी—१ (क) कौलमार्गीको शवसमान कहा; क्योंकि मद्यमांसादिका सेवन नरकदायक है। यथा—**'द्यूतं च मद्यं पिशितं च वेश्या परर्द्धिचौर्यं परदारसेवा। एतानि सप्तव्यसनानि लोके घोरातिघोरं नरकं नयन्ति॥'** (ख) कामीको शव कहा, क्योंकि कामके समान दूसरा रोग नहीं, यथा—**'नास्ति कामसमो व्याधिः।'** इति (सूक्तावली) दूसरे, कामी सदैव कलंकी रहता है और कलंकसे मृत्यु ही अच्छी है, यथा—**'अकलंकता कि कामी लहहीं', 'संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते'** (गीता २)। (ग) कृपण=लोभी। यह भी शवसमान है, क्योंकि **'गुनसागर नागर नर जोई। अल्पलोभ भल कहइ न कोई॥'** (सुं०)।* पुनः, कृपण=जो न स्वयं खाय और न दूसरेको खाने दे। (घ) *विमूढ़*=अनात्मदर्शी, ज्ञानदृष्टिरहित,† परधन, पर-अपवादरत, गृहासक्त, यथा—*'परधन पर अपवाद रत गृहासक्त दुखरूप। ते किमि जानहिं रघुपतिहि मूढ़ परे तम कूप॥'* [मनुष्यादिके शरीरमें आत्माभिमान रखनेवालोंका नाम विमूढ़ है—**'विमूढा मनुष्यत्वादिपिण्डात्माभिमानिनः'** (श्रीरामानुजभाष्य) वा, विमूढ़ वह है जिसको कोई उत्तम पुरुष उपदेश दे पर वह न सुने। (पं०)] (ङ) **अति दरिद्र**=अति तृष्णायुक्त, यथा—**'स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला।'** (तृष्णावाला कभी तृप्त नहीं होता, एक-न-एक सांसारिक चिन्तामें लगा हुआ ही मर जाता है। वह जीते ही मरा हुआ है—**'चिता चिन्ता समा प्रोक्ता विन्दुमात्रं विशेषतः। सजीवं दहते चिन्ता निर्जीवं दहते चिता॥'**) (च) *'अजसी'* मरेसे भी बुरा—*'मरन कोटि सम दारुन दाहू।'* **'अयशोऽकीर्तिसंयुक्तो जीवन्नपि मृतो हि सः।'** [(छ) **'अति बूढ़ा'** मृतकवत् है; क्योंकि सब अङ्ग शिथिल हो जानेसे पुत्र, परिवार सभी अनादर करते हैं और वह भी मृत्यु चाहने लगता है, यथा विनये—**'देखत ही आई बिरुधाई। जो तैं सपनेहु नाहि बुलाई॥ ताके गुन कछु कहे न जाहीं। सो अब प्रगट देखु तन माहीं। सो पगट तनु जर्जर जराबस व्याधि सूल सतावई। सिर कंप इन्द्रियसक्ति प्रतिहत बचन काहु न भावई॥ गृहपालहू तें अति निरादर खान पान न पावई। ऐसिहु दसा न बिराग तहँ तृष्णा तरंग बढ़ावई॥'** (१३५) वृद्धावस्थाको यमदूती कहा है—**'कृतान्तस्य दूती जरा कर्णमूले समागत्य वक्तीति लोकःशृणुध्वम्। परस्त्रीपरद्रव्यवाञ्छां त्यजध्वं भजध्वं रमानाथपादारविन्दम्॥'** इति (नीतिशतक)] (ज) **'सदा रोगवश'** मृतकवत् है, यथा—**'मे म्रियन्ते रुजाजितः। सम्यक् चिकित्समानोऽपि विकारो योऽभिवर्द्धते।**

---

* 'यशो यशस्विनां शुद्धं श्लाघ्योऽयं गुणिनां गुणाः। लोभः स्वल्पोऽपि तान् हन्ति श्वित्रो रूपमिवेप्सितः॥'

† 'उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्। विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः॥' (गीता १५। १०)। अर्थात् (शरीरका) त्याग करनेवाले या उसमें रहनेवाले या गुणोंका आश्रय ले भोग भोगनेवाले (इस अंशरूपी ईश्वरको) नहीं देखते, दिव्यदृष्टिवाले देखते हैं। (महात्मा गाँधी)

असाध्यः स तु विज्ञेयस्तेन युक्तं मृतं वदेत्॥' इति वाग्भट्टः। (झ) *'संतत क्रोधी'* क्रोधको प्राणहारक शत्रु कहा है, यथा—**'क्रोधः प्राणहरः शत्रुः क्रोधोऽमित्रमुखो रिपुः'** अर्थात् क्रोध प्राणघातक शत्रु है, अमित्रताका आरम्भ करनेवाला वैरी है। क्रोध समस्त अनर्थों और पापोंका मूल है, धर्मका नाशक और भवमें डालनेवाला है। यथा—*'लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि क्रोध पाप कर मूल''''' ।'* (१। २७७); **'क्रोधमूलमनर्थानां क्रोधः संसारबन्धनम्। धर्मक्षयकरः क्रोधस्तस्मात्क्रोधं विवर्जयेत्॥'** इति (सूक्तावली) (ञ) विष्णुविमुख, श्रुतिसंतविरोधी और तनपोषक तीनों नरकगामी हैं* इसीसे मृतकवत् हैं। यथा—**'आद्यं पुरुषमीशानं सर्वलोकमहेश्वरम्। न चिन्तयन्ति ये विष्णुं ते वै निरयगामिनः॥'**; **'वेदनिन्दापरो यस्तु द्विजनिन्दापरस्तथा। साधुनिन्दापरश्चापि सोऽक्षयं नरकं व्रजेत्॥'** (महाभारत); **'पश्यतां बन्धुबालानामेकाकी मिष्टमत्ति यः। स याति नरकं लौल्यात्केवलोदरपूरकः॥'** (पद्मपु०); **'त्रिषु कालेषु नोदत्तं ब्रह्मणेषु सुरेषु वै। यैः स्वयं भुज्यते मिष्टं पापं तैस्तु महत्कृतम्॥'**—(पु० रा० कु), *'कल्प-कल्प भरि एक एक नरका। परहिं जे दूषहिं श्रुति करि तरका॥'* (ट) निन्दककी गति यह कि दूसरे जन्ममें चमगादड़ होता है,—*'सब कै निंदा जे नर करहीं। ते चमगादुर होइ अवतरहीं॥'* (७। १२१। २७) इसीसे शवसम कहा। (ठ) 'अघखानि' से मन-कर्म-वचनजनित सब पातक उपपातक सूचित किये।† यथा—*'जे पातक उपपातक अहहीं। करम बचन मन भव कबि कहहीं॥'* (अ० १६७। १४) प्राणियोंको मृतकसम कहनेका भाव कि ये धर्महीन हैं, इसलिये इनका जीवन व्यर्थ है। प्रमाण—**'मूर्खोऽशान्तस्तपस्वी क्षितिपतिरलसो मत्सरोऽधर्मशीलो दुःस्थो मानी गृहस्थः प्रभुरतिकृपणः शास्त्रविद्धर्महीनः। प्रज्ञाहीनो नरेन्द्रः शुचिरपि सततं यः परान्नोपभोजी वृद्धो रोगी दरिद्रो बहुयुवतिपतिर्धिग् विडम्बप्रकाराः॥'** (प्रस्तावरत्नाकर)

मूर्ख, अशान्त, तपस्वी, आलसी, ईर्षालु और अधर्मी जमींदार, दुरवस्थाप्राप्त मानी गृहस्थ, अतिकृपण स्वामी, धर्महीन शास्त्रवेत्ता, दुर्बुद्धि राजा, शुद्ध साफ होते हुए भी सदा पराया अन्न भोजन करनेवाला, बूढ़ा, रोगी, दरिद्र, बहुयुवतियोंका एक पति—यह सब धिक्कारयोग्य विधि-विडम्बनाके प्रकारोंमेंसे हैं।

'अब जनि रिस उपजावसि मोही' का भाव वही है जो *'जद्यपि लघुता''''' '* दोहा २३ का है।

पं० विजयानन्द त्रिपाठी—'रावण कौन थे' यह प्रायः सभी जानते हैं। 'परंतु रावण क्या थे' यह प्रश्न टेढ़ा है। एक ओर तो रावण वेदोंके भाष्यकार थे। अब भी उनके भाष्यके खण्ड जहाँ-तहाँ पाये जाते हैं। ज्योतिषके पारदर्शी थे। भृगुसंहिताकी भाँति रावणसंहिता भी फलादेशका बड़ा उत्तम ग्रन्थ है। धनुर्वेदके भी प्रकाण्ड विद्वान् थे। कर्मठ थे, तपस्वी थे, उपासक थे, क्या नहीं थे? दूसरी ओर देखिये तो बहुत बड़े अत्याचारी, धर्मद्रोही, द्विजद्रोही, देवद्रोही और शास्त्रद्रोही मायावी थे। उनके दोषोंकी तालिका उनके गुणोंकी अपेक्षा बहुत बड़ी थी। ऐसे चमत्कृत गुणों और ऐसे भयानक दोषोंका योग एक व्यक्तिमें कहीं देखा नहीं जाता। अतः यह प्रश्न स्वाभाविक उठता है कि 'रावण क्या थे?'

इसका उत्तर हमें अङ्गद-रावण-संवादमें ही मिला। अङ्गदजी कहते हैं *'कौल काम बस चौदह प्रानी।'* यहाँ दीपकालङ्कार है। प्रसंगप्राप्त शब्द 'कौल' है। अङ्गदजी रावणको 'कौल' कहते हैं। बात बड़े ठिकानेकी है। वस्तुतः रावणको कौल मान लेनेसे सब सामञ्जस्य बैठ जाता है।

प्रबोधचन्द्रोदयकारने कौलधर्मकी विशेषताओंका दिग्दर्शन कराते हुए कहा है कि **'मस्तिष्कान्त्रवसाभिपूरित-महामांसाहुतीर्जुह्वतां वह्नौ ब्रह्मकपालकल्पितसुरापानेन नः पारणा। सद्यः कृत्तकठोरकण्ठविगलत्कीलालवारोज्ज्वलैरर्च्यो नः पुरुषोपहारबलिभिर्देवो महाभैरवः॥'** मस्तिष्क, आँत-चर्बीसे भरे हुए ब्राह्मणके मांसकी आहुतियाँ अग्निमें देना, ब्राह्मणकी खोपड़ीमें भरे हुए मद्यसे पारण करना और तुरंतके कटे हुए सिरसे निकली हुई रुधिरकी धारासे, पुरुषोपहार बलिसे कौल लोग महाभैरव शिवजीका पूजन करते हैं।

अङ्गदजीने रावणके वाक्यसे ही जान लिया कि बड़ा भारी कौल है। क्योंकि रावण उपर्युक्त **'मस्तिष्कान्त्रवसाभिपूरितमहामांसाहुतीर्जुह्वतां वह्नौ'** इस प्रक्रियाको *'सूर कवन रावन सरिस स्वकर काटि जेहि*

---

*-† 'कायेन कुरुते पापं मनसा सम्प्रधार्य तत्। अनृतं जिह्वया चाह त्रिविधं कर्मपातकम्॥ (वाल्मी०)

सीस। हुत्यौ अनल महँ बार बहु हर्षित साखि गिरीस॥' अपने इस कथनसे व्यक्त कर रहा है और *'सिर सरोज निज करन्ह उतारी। पूजेउ अमित बार त्रिपुरारी॥'* कहकर उपर्युक्त *'सद्यः कृत्त'''''महाभैरवः'* को ही कह रहा है। यह दूसरी बात है कि रावणकी राजसिक श्रद्धा बड़ी ही प्रबल थी। उसने किसी दूसरे ब्राह्मणको बलिके लिये न खोजकर अपने ही सिरोंकी आहुति देकर, अपने ही सिरोंका उपहार शिवजीको दिया। रावणकी पारणाके विषयमें तो स्वयं शूर्पणखाने कहा है कि *'करसि पान सोवसि दिन राती।'*

कौलधर्मकी विशेषता ऊपर कही गयी, अब उनकी मुक्तिकी विशेषता सुनिये—**'दृष्टं क्वापि सुखं विना न विषयैरानन्दबोधोज्झिता जीवस्य स्थितिरेव मुक्तिरुपलावस्थाकथं प्रार्थ्यते। पार्वत्याः प्रतिरूपया दयितया सानन्दमालिङ्गितो मुक्तः क्रीडति चन्द्रचूडवपुरित्यूचे मृडानीपतिः॥'**—बिना विषयके सुख तो कहीं देखा नहीं गया, फिर सुखोपलब्धिरहित जीवकी स्थितिको मुक्ति मानना पत्थरकी अवस्थाको चाहना है। भगवान् भवानीपतिने कहा है कि पार्वती-सी सुन्दरी प्रियाको आलिङ्गित किये हुए क्रीडा करना और आप शिव बने रहना ही मुक्ति है।

पार्वतीप्रतिरूपा दयिताकी खोजमें ही उसने देव, यक्ष, गन्धर्व, सुर, किन्नर-राजकुमारियोंको अपने भुजाबलसे जीतकर वरण किया था। उसकी प्रवृत्ति देखकर ही शूर्पणखा कहती है—*'तिन्ह के संग नारि एक स्यामा॥ रूपरासि बिधि नारि सँवारी। रति सत कोटि तासु बलिहारी॥'*

ऐसी राजसिक श्रद्धाके फलरूपमें उसे अलौकिक सिद्धियाँ भी प्राप्त थीं। यथा—*'कर जोरे सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता॥'* इत्यादि।

अतः कहा जा सकता है कि रावण निस्संदेह कौल थे, लङ्कामें कौलमतका साम्राज्य था। राम-रावण-युद्ध वस्तुतः दक्षिण और वामपथकी लड़ाई थी।

नोट—*'जीवत सव सम चौदह प्रानी।'* भाव कि इनमेंसे एक भी दोष जिसमें हो वह जीते ही मृतकवत् है और तुझमें तो ये सभी दोष हैं—१ कौल, यथा—*'करसि पान सोवसि दिनराती'*—(शूर्पणखा-वाक्य)। पुनः, *आवा निकट जती के बेषा।'* २—'कामवश' है इसीसे सीताहरण किया। ३—कृपण। सीताजीको देना नहीं चाहता यह लोभ है। लोभसे अपकीर्ति होती है और अपकीर्ति मरणतुल्य है। पुनः, ब्रह्म रामको बिना जाने मरेगा, अतः कृपण (दीन) है ही। [जिसकी वस्तु उसीको न देना कृपणता है। (पं०) कृपणता यह है कि जीवोंको दया-दान नहीं करता। (शीला)] ४—**'बिमूढ़'** है, यह नहीं मानता कि श्रीरामजी मनुष्य नहीं वरन् परात्पर ब्रह्म हैं। रावण काम, क्रोध, लोभ, मदमें रत है, मोहवश है इसीसे वह प्रभुको नहीं जानता। अतः उसे विमूढ़ कहा। यथा—*'काम क्रोध मद लोभ रत गृहासक्त दुख रूप। ते किमि जानहिं रघुपतिहि मूढ़ परे तम कूप॥'* (७। ७३) पुनः, भगवान्‌के अपार कारुण्यादि गुणोंके कारण मनुष्यत्व धारणरूप परम भावको न जानकर केवल मनुष्यत्व धारणमात्रसे साधारण मनुष्य जानकर श्रीरामजीका अपमान करनेसे मूढ़ कहा। यथा—**'अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्। परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥'** (गीता ९। ११) मन्दोदरीने भी कहा है—*'पति रघुपतिहि नृपति जनि मानहु। अग जग नाथ अतुल बल जानहु॥ कारुनीक दिनकर कुल केतू। दूत पठायउ तव हित हेतू॥ अंगद हनुमत अनुचर जाके।''''तेहिं कहँ पिय पुनि पुनि नर कहहू। मुधा मान ममता मद बहहू॥'* (लं० ३५। ८ ३६। ५) अतः विमूढ़ कहा। ५—*'अति दरिद्र'* ऐसा कि ऋषियोंसे भी रक्तरूपी कर लिया—(शीला)। ६—*'अजसी'*। अपकीर्ति प्रत्यक्ष है। ७—अति बूढ़ा—बहुत बुढ़ापेमें मतिमें भ्रम हो जाता है। रावणकी बुद्धिमें भ्रम है—(पं०)। यथा—*'मंदोदरि मन महुँ अस ठयऊ। पियहि काल बस मति भ्रम भयऊ॥'* (१६। ८), *'निकट काल जेहि आवत साईं। तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहि नाईं॥'* (३६। ९), *'देखहु तुमह निज कुलहि बिचारी। भ्रम तजि भजहु भगत भय हारी॥'* (सुं० २२) रावणराजकी यह ७२ वीं चौकड़ी (चतुर्युगी) है, अतः अत्यन्त वृद्ध है। ८—'रोगवश'। कामक्रोधादि मानसरोगोंसे युक्त है। रावण मोहका स्वरूप ही है—*'मोह दसमौलि''''।'* और मोह समस्त व्याधियोंकी जड़ है, यथा—*'मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला।'* (७। १२१। २९) ९—'संतत क्रोधी' प्रकट ही है। जो हितकी कहता है उसीको दुर्वचन कहता है। १०—विष्णुविमुखता शरीरपर चक्रके चिह्नोंसे प्रकट ही है।

११—श्रुति-संत-विरोधी, यथा—'*तेहि बहु बिधि त्रासै देस निकासै जो कह बेद पुराना।*' (१। १८३) इत्यादि। १२—तनपोषक, यथा—'*सुनासीर सत सरिस सो संतत करइ बिलास।*' (१०) '*भवन चलेउ निरखत भुज बीसा।*' (१०। ६) १३—निन्दक, यथा—'*जब तेहि कीन्हि राम कै निंदा।*' १४—अधखानि, यथा—'**आजन्म ते पर द्रोह रत पापौघमय तव तनु अयं।**' (१०३ मन्दोदरीवाक्य)

मा० म०—कामी और कौल एक हैं, श्रुति और संतविरोधी एक हैं, पर अघखानि सब हैं। श्रुति-विरोधी और संत-विरोधी ये दो मिलकर सब १४ हुए। अघखानि सबका विशेषण है।

सुनि सकोप कह निसिचरनाथा। अधर दसन दसि मीजत हाथा॥ ६॥
रे कपि* अधम मरन अब चहसी। छोटे बदन बात बड़ि कहसी॥ ७॥
कटु जल्पसि जड़ कपि बल जाकें। †बल प्रताप बुधि तेज न ताकें॥ ८॥

शब्दार्थ—जल्पना=व्यर्थ बकवाद करना, डींग मारना। दसना=काटना। दसन=दाँत।

अर्थ—(अङ्गदके वचन) सुनकर राक्षसराज क्रुद्ध होकर दाँतोंसे होठोंको काटकर हाथ मलता हुआ बोला॥ ६॥ अरे नीच वानर! अब तू मरना ही चाहता है? इसीसे छोटे मुख बड़ी बात करता है॥ ७॥ अरे जड़ वानर! तू जिसके बलपर कड़ुवे वचन बक रहा है, उसमें बल, प्रताप, बुद्धि और तेज (कुछ भी) नहीं हैं‡॥ ८॥

नोट—सकोप कहकर फिर दूसरे चरणमें कोपका स्वरूप और प्रभाव दिखाया। हाथ मलना, दाँतोंसे होंठ काटना क्रोधसूचक है, यथा—'*परम क्रोध मीजहिं सब हाथा। आयसु पै न देहिं रघुनाथा॥*' (सुं०) '*कटकटाहिं कोटिन्ह भट गर्जहिं। दसन ओठ काटहिं अति तर्जहिं॥*' (४०। ६) [कारण कि दूत अवध्य है। उसको मारना अनीति है और इसकी 'दुरुक्ति' सही नहीं जाती।—(पं०)§

वीरकवि—यहाँ अङ्गदका कठोर संभाषण उद्दीपन विभाव है। रावणका ओंठ चबाना, हाथ मलना, आँखें तरेरना अनुभाव हैं। अमर्ष, आवेग, उग्रतादि संचारी भावोंद्वारा क्रोध स्थायीभाव पुष्ट होकर 'रौद्ररस' संज्ञाको प्राप्त हुआ है।

दो०—अगुन अमान# जानि तेहि दीन्ह पिता बनबास।
सो दुख अरु जुबती बिरह पुनि निसिदिन मम त्रास॥ ३०॥

शब्दार्थ—अगुन=गुणरहित, मूर्ख, निर्गुण, अमान=अप्रतिष्ठित, आत्माभिमानरहित, मानरहित।—'*अगुन अमान मातु पितु हीना। उदासीन सब संसय छीना॥*' (१। ६७। ८) देखिये।

अर्थ—निर्गुण (गुणहीन), मानरहित (प्रतिष्ठाहीन) जानकर उसे पिताने वनवास दे दिया। एक तो उसको वह दुःख, उसपर स्त्री (के वियोग) का विरह और फिर रात-दिन मेरा डर बना रहता है॥ ३०॥

---

* कपिपोत—(का०), † 'बुधि बल तेजप्रताप न ताके'—(का०)।

‡ पु० रा० कु०—सरस्वतीकृत अर्थ—रे वानर! मुझ अधमका तू मरण चाहता है। तू छोटे मुख अर्थात् वानरमुखसे बड़ी बात (रामयश) कहता है। (पंजाबीजीने अगली चौपाई और दोहेका भी स्तुतिपक्षमें अर्थ किया है पर 'शत्रु' 'संत' शब्दोंका अध्याहार ऊपरसे किया है, जिससे वे अर्थ बिलकुल खींचतानके हो जाते हैं।)

वं० पा०—रावणने तो निन्दा की पर सरस्वती निन्दा न करेगी। अतः वास्तवार्थ सरस्वतीकृत यह है कि रे कपि! जिसके बलसे तू कड़वे वचन कहता है उसे मैं जानता हूँ कि वह जड़ है अर्थात् संसारवृक्षका मूल है, यथा—'अव्यक्त मूलमनादि तरु०' (वेद-स्तुति) जिनके ताकने (कृपावलोकन) से भक्तोंमें तेजादिकी प्राप्ति होती है तब उनकी स्वयं क्या कही जाय।

§ बं० पा०—इसमें एक अंतरंग भाव भी है। वह यह कि अधर लोभका स्थान है, उसको काटता है, मानो दंड देता है कि यदि जानकीविषयक लोभ न होता तो यह सब दुर्दशा क्यों होती? और हाथका मलना पुरुषार्थरहित होना है। इन्द्र हाथके देवता हैं, हाथको मलता क्या है मानो इन्द्रको सहायक जानकर दण्ड देता है।

विचारि—(का०)।

पु० रा० कु०—भक्ति वा स्तुतिपक्षमें रावणके इस वाणीका अर्थ यह है कि—वे मायिक गुणोंसे रहित हैं, अमान अर्थात् देश-काल-वस्तु-प्रमाणरहित हैं—(वा० मानरहितसे ज्ञानमय जनाया, यथा—*'ज्ञान मान जहँ एकउ नाहीं।'* पुनः साधुस्वभाव जनाया, यथा—*'सबहिं मानप्रद आपु अमानी'*।) *'सो दुख'* से जनाया कि भक्तके वशीभूत रहते हैं, यथा—*'भगति अवसहीं बस करी।'* उनकी आज्ञा माननी पड़ती हैं। *'युवती विरह'* अर्थात् परमभक्तके बिछोहसे दुःख होता है। *'मम त्रास'* अर्थात् मुझे सद्गति देनेकी चिन्ता है, विराट्का रोग छुड़ाना है।

बं० पा०—अर्थात् तेरे स्वामीमें त्रिदोष हैं। एक तो घर छूटनेका दुःख, दूसरे स्त्रीका वियोगविरह और तीसरे *'मेरा त्रास'*। यह तो प्रत्यक्ष निन्दा रावणने की। इसमें सरस्वतीकृत अर्थ यह है—*'पिता दीन्ह बनबास'* अर्थात् परपितामह ब्रह्माने प्रार्थनाकर अवतार लिवाकर विश्वभार उतारनेके लिये वनवास दिया—यह मैं जानता हूँ।'

नोट—*'अगुन अमान ......'* इति। भाव यह कि राजाको आत्माभिमानी और गुणवान् होना चाहिये। इन दोनोंमेसे एक भी गुण नहीं हैं, इसीसे राज्यके उत्तराधिकारी होनेपर भी राज्यसे निकाल दिये गये। यदि बल और आत्मगौरव होता तो लड़कर राज्य ले लेते कि हम तो उत्तराधिकारी हैं; दूसरे, हमें सब मन्त्रियोंके सामने राज्य देनेकी बात हो चुकी तब अब नहीं कैसे करते हो। वनमें आनेपर दो दुःख और बढ़ गये, जिससे वे पूरे असमर्थ एवं जीते भी मृतकवत् हैं, तब हमसे क्या लड़ेंगे? यही आशय वाल्मीकीयमें रावणके वाक्यका है। यथा—**'मानुषं कृपणं राममेकं शाखामृगाश्रयम्। समर्थं मन्यसे केन त्यक्तं पित्रा वनाश्रयम्॥ रक्षसामीश्वरं मां च देवानां च भयंकरम्। हीनं मां मन्यसे केन अहीनं सर्वविक्रमैः॥** (६। ३६। ४-५; रावणवाक्य माल्यवन्तप्रति) अर्थात् मनुष्य होनेके कारण राम दुर्बल हैं, एकमात्र वानर उनके सहायक हैं। यदि समर्थ होते तो बाप-दादोंका राज छोड़ वनमें क्यों आते और हमने तो देवताओंको भी जीता, तब हमें असमर्थ कैसे कहते हो? ☞ स्तुतिपक्षके भाव बा० ६७ (८) में देखिये।

☞ धनुषयज्ञके समय सखीने श्रीसुनयनाजीके संदेह-निवारणार्थ पाँच दृष्टान्तोंद्वारा श्रीरामजीका ऐश्वर्य दिखाया है। श्रीरामजीको प्रताप, तेज, बुद्धि, गुण और बलसे युक्त दिखाया है। रावण श्रीरामजीका उन पाँचोंसे रहित होना यहाँ कह रहा है। *'बल प्रताप बुधि तेज न ताकें'* कहकर प्रताप, तेज, बुद्धि और बलसे रहित जनाया और *'अगुन अमान'* से गुणरहित जनाया। भाव कि इन पाँचोंसे रहित पुरुष असमर्थ होता है। अतः तेरा स्वामी असमर्थ है।

दो०—जिन्ह के बल कर गर्ब तोहि अइसे मनुज अनेक।
खाहिं निसाचर दिवस निसि मूढ़ समुझु तजि टेक॥ *३०X॥

शब्दार्थ—**टेक**=हठ, अड़।—*'सो गोसाँइ बिधि गति जेहिं छेंकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी॥'* (अ० २५५)

अर्थ—जिनके बलका तुझे गर्व है ऐसे अनेकों मनुष्योंको रात-दिन राक्षस खाया करते हैं। अरे मूढ़! जिद छोड़कर समझ॥ ३०॥

वीरकवि—यहाँ रावणने पूज्य पुरुष श्रीरामचन्द्रजीकी अनुचित हँसी की है यह हास्यरसाभास है।

स्तुतिपक्षमें अर्थ—*'खाहिं निसाचर......'* अर्थात् दिन-रात निशिचरोंका नाश करते हैं, यथा—*'छीजहिं निसिचर दिन अरु राती।'* (पु० रा० कु०) *'मूढ़ समुझु तजि टेक'* अर्थात् मुझे मूढ़ समझकर संधिकी हठको छोड़। (पं०)

☞ प्राचीन प्रतिलिपियोंमें यहाँ (एकतीसवें) दोहेपर ३०का अंक वा शून्य मिलता है। और लंकाकाण्डमें १२१ दोहे होनेपर भी संख्या १२० ही दी हुई मिलती है। प्रायः किसी टीकाकारने इस भेदपर ध्यान नहीं दिया है, इसीसे टीकाओंमें इसको लेखककी भूल समझकर टीकाकारोंने उसका अपनी बुद्धिके अनुसार शोधन कर दोहा-संख्याके स्थानपर ३१ छपाया है। मेरी दृष्टि इस ओर श्रीराघोवल्लभाशरणजी (श्रीरामगंगाशरण, धोसलाघाट,

काशी) ने आकर्षित की। यहाँ अंक न देनेमें मानस कविका गूढ़ आशय विचार इसको उनकी परमभक्तिका प्रमाण समझ बड़ी प्रसन्नता हुई। अपने इष्टदेव श्रीरामचन्द्रजीकी निन्दा इस दोहेमें जान इसकी उन्होंने ग्रन्थमें संख्या नहीं की। चौपाइयोंकी संख्या करनेवाले यदि इस बातपर ध्यान न देंगे तो मानसकी चौपाइयोंकी संख्या ठीक-ठीक करनेकी सम्भावना है। श्रावणकुञ्जकी बालकाण्डकी पोथीमें धनुर्भंगवाले दोहेपर एक दोहाको दो दोहा मान लिया गया। २६० के बाद २६१ चाहिये सो न होकर २६२ है और फिर इसीके अनुसार ३६१ दोहेपर बालकाण्ड समाप्त हुआ। वह लेखप्रमाद भी कहा जा सकता है, अथवा हर्ष आनन्दोत्सवमें दोहेमें अङ्ककी वृद्धि।

वक्ताओंने जो आगे कहा है कि *'हरिहर निंदा सुनइ जो काना। होइ पाप गो घात समाना॥'* उसका उपाय उन्होंने यह बताया है कि *'काटिये तासु जीभ जो बसाई। श्रवन मूँदि नत चलिय पराई॥'* (१। ६४) उपदेश देनेवाला स्वयं उसपर न चले तो उपदेश ही व्यर्थ है; इसीसे वक्ताओंने उस प्रसंगको ग्रन्थसंख्यासे निकालकर मानो निन्दककी जिह्वा ही निकाल ली।

पु० रा० कु० जीका मत है कि ग्रन्थकारने इस दोहेको गिनतीमें नहीं लिया, क्योंकि आधे दोहेमें मृतकका वर्णन है और आधेमें रामनिन्दा है।

जब तेहिं कीन्हि राम कै निन्दा। क्रोधवंत अति भएउ कपिंदा॥ १॥
हरि हर निंदा सुनै जो काना। होइ पाप गो घात समाना॥ २॥

अर्थ—जब उसने श्रीरामजीकी निन्दा की तब कपिश्रेष्ठ अङ्गद अत्यन्त क्रोधित हुए॥ १॥ क्योंकि जो हरि वा हरकी निन्दा कानोंसे सुनता है उसे गोवधके समान पाप होता है॥ २॥

नोट—१ (क) *'जब तेहि कीन्हि राम कै निंदा'* इति। सुंदरकाण्ड १० (८-९) में बताया जा चुका है कि निन्दा और गालीमें क्या भेद है। किसीके परोक्षमें उसके ऊपर 'मिथ्यादोषारोपण' का नाम निन्दा है। रावणने श्रीरामजीके परोक्षमें उनपर मिथ्या दोषारोपण किया कि *'बल प्रताप बुधि तेज न ताकें।'* इत्यादि। अतः इसे 'निन्दा' कहा।

वाल्मीकीयमें श्रीदशरथजी महाराजने केकयीजीसे कहा है—**'बहूनां स्त्रीसहस्त्राणां बहूनां चोपजीविनाम्। परिवादोऽपवादो वा राघवे नोपपद्यते॥'** (२। १२। २७) अर्थात् हजारों स्त्रियाँ हैं और अनेक नौकर हैं, पर रामचन्द्रके सम्बन्धमें कोई भी परिवाद या अपवाद नहीं सुना गया है।—टीकाकारने 'परिवाद' का अर्थ 'सकारण निन्दा' और 'अपवाद' का 'निष्कारण निन्दा' किया है। मानसके 'निन्दा' शब्दमें 'अपवाद' निष्कारण अर्थात् झूठी निन्दाका भाव है। (ख) *'क्रोधवंत अति भयउ'* का भाव कि क्रोध तो पहले ही हुआ था, अब उसकी मात्रा अत्यन्त अधिक हो गयी। *'कपिंदा'* कपीन्द्रका अपभ्रंश है। 'कपीन्द्र' अर्थात् जो वानरोंमें इन्द्रके समान ऐश्वर्यवान् है—*इदि परमैश्वर्ये।* युवराज हो ही चुका है। यहाँ अपने बलका कुछ ऐश्वर्य दिखावेंगे अतएव 'इन्द्र' कहा। (बं० पा०)

नोट २—*'हरिहरनिंदा'* से दोनों दिशिकी निन्दा कही। (क) जब श्रीरामजीको नर कहा—*'नरकर करसि बखान॥'* (२५) तब क्रोध हुआ, यथा—*'सुनि अंगद सकोप कह बानी'* और जब नर कहा और निन्दा भी की तब 'अति' क्रोध हुआ। (ख) *'होइ पाप गो घात'*''''इति। यहाँ कहा कि सुननेसे गोहत्याका पाप होता है। इसका प्रायश्चित्त बालकाण्डमें कहा है, यथा—*'संत संभु श्रीपति अपबादा। सुनिय जहाँ तहँ असि मरजादा॥ काटिय तासु जीभ जो बसाई। श्रवन मूँदि न त चलिय पराई॥'* (बा० ६३) अर्थात् यदि सामर्थ्य न हो तो सुनते ही चल दे, सुननेको खड़ा न रहे और यदि सामर्थ्य हो तो जीभ निकाल ले या काट ले। दोनोंमेंसे कोई भी काम करनेसे पातक न लगेगा। यथा—**'कर्णौ पिधाय निरियाद्यदकल्प ईशे धर्मावितर्यसृणिभिर्नृभिरस्यमाने। छिन्द्यात् प्रसह्य रुशतीमसतीं प्रभुश्चेज्जिह्वामसूनपि ततो विसृजेत् स धर्मः॥'** (भा० ४। ४। १७) अर्थात् धर्मकी मर्यादाको न माननेवाले पुरुष धर्मरक्षक ईश्वरकी यदि निन्दा करते हों तो यदि सामर्थ्य हो तो उसकी अमङ्गलमयी जिह्वाको काट ले या अपने प्राणोंको त्याग दे, नहीं तो कान

मूँदकर वहाँसे चल दे। पुनश्च, यथा—'**निन्दाम्भगवतः शृण्वंस्तत्परस्य जनस्य वा। ततो नापैति यः सोऽपि यात्यधः सुकृताच्च्युतः॥**' (भा० १०। ७४। ४०) अर्थात् भगवान् या भगवद्भक्तकी निन्दा सुनकर जो पुरुष उस स्थानसे दूर नहीं होता वह पुण्यसे भ्रष्ट हो नरकको जाता है तथा '**निन्दां कुर्वन्ति ये विष्णोर्हरस्य तत्परस्य च। तेषां मुखं न द्रष्टव्यं संगतिस्तु कुतस्तराम्॥**' (सत्योपाख्यान) अर्थात् जो विष्णु या शिवजीकी या जिनका उनमें अनुराग है उनकी निन्दा करते हैं उनका मुख न देखना चाहिये, सङ्गति करनेकी बात ही कहाँ। (पु० रा० कु०) नोट—३ यहाँ दो असमवाक्योंकी समता 'प्रथम निदर्शना' है।

कटकटान कपि कुंजर भारी। दुहुँ भुज दंड तमकि महि मारी॥ ३॥
डोलत धरनि सभासद खसे। चले भाजि भय मारुत ग्रसे॥ ४॥

शब्दार्थ—**तमकि**=क्रोध वा तावमें आकर। खसना (खसकना)= अपने स्थानसे हटना, गिरना। यथा—*'खसी माल मूरति मुसुकानी'*। ग्रसना=बुरी तरह पकड़ना जिसमें छूट न जाय। कुंजर=श्रेष्ठ, यथा—*'सिंहर्षभगजव्याघ्राः पुंसि श्रेष्ठार्थगोचराः'* इति (अमरकोश)

अर्थ—कपिश्रेष्ठ बहुत जोरसे कटकटाये (दाँत पीसे जिससे कटकट शब्द हुआ) और क्रोधमें आकर अपने दोनों भुजदण्डोंको पृथ्वीपर दे मारे (पटके)॥ ३॥ धरणी डोलने लगी, पृथ्वीके हिलते ही सभासद् गिरे और भयरूपी पवनसे ग्रस्त हो भाग चले॥ ४॥

बं० पा०—कटकटाना वानरोंके क्रोधका स्वभाव है। ऊपर कह आये कि हरिहरनिन्दा सुने तो जिह्वा काट ले या कान बंद करके चल दे—यही उपाय है; पर अङ्गद दूत बनकर आये हैं, भाग तो सकते नहीं; इससे इन्होंने दण्ड देनेका निश्चय किया—(क्योंकि ये समर्थ हैं, कपीन्द्र हैं)। अङ्गद बड़े नीतिज्ञ हैं। उन्होंने विचारा कि यदि हम सिरसे मुकुट उतारें तो युद्ध अवश्य होगा, इसलिये कुछ कर्म ऐसा करना चाहिये जिससे हमारा मनोरथ (मुकुट-हरण) सिद्ध हो। संग्रामका सावकाश भी नहीं है। अतः हाथ पटककर पृथ्वीको हिला दिया जिससे मुकुट गिर पड़े और रावण बेइज्जत (प्रतिष्ठारहित) हो गया। यही दण्ड दिया। पुनः पृथ्वीका ताड़न इससे किया कि ऐसे निन्दकको अपने ऊपर क्यों रखे हैं, फट क्यों न गयी कि यह उसमें समा जाता। खलके सङ्गसे तू भी दण्डके योग्य है। समस्त उपद्रवका कारण तू ही है, न ब्रह्माके पास जाती न यह बखेड़ा उठता। मुकुट उतारना निन्दकका मानो सिर काटना है।

मा० म०—पृथ्वीपर हाथ यह सोचकर पटका कि रावणपर ही हाथ चलाऊँगा तो वही मेरा बल जानेगा, सब सभासद् न जान सकेंगे।

गौड़जी—सरकारकी निन्दा सुनकर अङ्गद क्रोधसे बे अख्तियार (आपेसे बाहर) हो गये और उनके हाथों रावण अवध्य था इस कारण कुछ कर न सकते थे। दाँत कटकटाकर हाथ दे मारना लाचारी प्रकट करना है। इसके आगे जो कुछ हुआ वह तात्कालिक परिणाम था, अङ्गदजीके सोच-विचारकर ऐसी क्रिया करनेका फल न था।

वि० त्रि०—श्रीरामजीपर आक्षेप करते हुए देखकर अङ्गदजीने रावणको यह कहकर सावधान किया कि *'अब जनि बतबढ़ाव खल करही।'''अब जनि रिसि उपजावसि मोही॥'* परंतु रावणने अङ्गदजीको और चिढ़ानेके लिये सीधे-सीधे प्रभुकी निन्दा आरम्भ कर दी। दूत होनेके कारण अङ्गदजी रावणपर आघात नहीं कर सकते थे, और वीर होनेके कारण कान बंद करके भाग भी नहीं सकते थे, अतः अत्यन्त क्रोध आनेपर जैसे लोग पृथ्वीपर हाथ पटकते हैं, उसी भाँति उन्होंने दोनों हाथ पृथ्वीपर पटके। एकदम स्वाभाविकी क्रिया है पर रामकृपासे अङ्गदजीमें बल इतना है कि उस आघातको पृथ्वी न सह सकी, डोल गयी और ऐसी डोली कि रावण भी लड़खड़ा गये। इस भाँति अङ्गदजीने दिखला दिया कि ***(महोर्दण्डकठोरताडनविधौ को वा त्रिकूटाचलः को मेरुः क्व च रावणस्य गणना कोटिस्तु कीटायते।)*** मेरे भुजदण्डके आघातको तू सह नहीं सकेगा, प्रभुके बलकी निन्दा क्या करता है?

नोट—हनुमन्नाटकमें भी भुजदण्डसे पृथ्वीका ताड़न कहा है, यथा—'**तत्क्षणाविष्कृतक्रोधः कम्पमानः**

पाणितलेन भूतलं ताडयित्वा दोःस्तम्भास्फालकेलिं नाटयति॥' (८। २०) [अर्थात् उस समय किये हुए क्रोधसे कम्पित होते हुए श्रीअङ्गदजी अपने करतलसे पृथ्वीका ताड़न करके भुजदण्डोंके ताड़नके खेलका नाट्य करते हैं।]

इसके आगेकी कथा उसमें नहीं है। वाल्मीकीयमें सुवेलपर्वतपरसे सुग्रीवका सहसा छलाँग मारकर रावण जहाँ खड़ा था, वहीं पहुँचना और उसके मुकुटोंको सिरसे उतारकर फेंकनेकी चर्चा है। यथा—**'लोकनाथस्य रामस्य सखा दासोऽस्मि राक्षस। न मया मोक्ष्यसेऽद्य त्वं पार्थिवेन्द्रस्य तेजसा॥ इत्युक्त्वा सहसोत्पत्य पुप्लुवे तस्य चोपरि। आकृष्य मुकुटं चित्रं पातयामास तद्भुवि॥'** (६। ४०। १०-११)

फिर दोनोंमें घोर युद्ध हुआ है। पर मुकुटोंका श्रीरामचन्द्रजीके समीप चलाना वहाँ भी नहीं है। मनुशतरूपावाले रामावतार और प्रतापीवाले रावणावतारकी कथा जहाँ होगी वहाँ यह कथा मिलेगी। कल्प-कल्पकी कथाओंमें कहीं-कहीं कुछ-कुछ भेद होता रहता है।

रा० चं० १६। ३५ में अङ्गदका चलते समय मुकुट उतारने और उड़कर रामजीके पास भाग आनेकी कथा है। यथा—***'अंगद रावणको मुकुट लै करि उड़ो सुजान। मनो चल्यो यमलोक को दससिर को प्रस्थान॥ अंगद लै वा मुकुट को परे राम के पाइ।'***

गिरत* सँभारि उठा दसकंधर। भूतल परे मुकुट अति सुन्दर॥५॥
कछु तेहिं लै† निज सिरन्हि सँवारे। कछु अंगद प्रभु पास पबारे॥६॥

शब्दार्थ—पबारना=फेंकना, चलाना।

अर्थ—दशकंधर रावण गिरते-गिरते सँभलकर उठा। उसके अत्यन्त सुन्दर मुकुट पृथ्वीपर गिर पड़े॥५॥ कुछ तो उसने उठाकर अपने सिरोंपर धारण कर लिये और कुछ अङ्गदने (उठाकर) प्रभुके पास फेंक दिये॥६॥

नोट—१ ***'कछु अंगद प्रभु पास पबारे।'*** कछु=चार, यथा—***'कुलिस चारि आवत अति धाए॥'*** रावणने २० हाथ होते हुए भी केवल छः ही उठा पाये और अङ्गदने दोही हाथोंसे ४ मुकुट उठा लिये। यह भी अङ्गदकी जीत हुई। पुनः, यहाँ 'कछु तेहि लै' लिखते हैं। लेनेसे यह अर्थ भी निकलता है कि सभासदों वा सेवकोंने उठाकर उसे दिये और उसने उन्हें लेकर सिरोंपर भूषित किया। इस तरह सभासदोंपर भी अङ्गदकी जीत हुई। इतनोंमें छः ही पाये और अकेले अङ्गदने चार उठा लिये। रावण और सभासदोंने तो पहले अपनेको सँभाला तब मुकुट उठाये, इसलिये छः ही हाथ लगे। इसके पूर्व ही अङ्गदने चार उठा लिये। सभासद् भगे थे, पर फिर रुक गये। अथवा, इससे रावण और सभासदोंकी घबड़ाहट दिखायी। मा० म० का मत है कि रावणने शीघ्रतासे मुकुट उठाये जिसमें इस भेदको कोई दूसरा न जाने, पर छः ही उठा पाया।

नोट—२ मुकुट उठाकर श्रीरामजीके पास इससे फेंके कि—(क) प्रभु मेरे इस कार्यपर प्रसन्न होंगे। हनुमान्जीने लङ्का जलायी और अङ्गदने रावणके मुकुट उतार लिये, यह समझकर सुग्रीवादि भी प्रसन्न होंगे। फेंकनेमें रावणका अपमान अधिक होगा और अपने पास रखनेमें अवश्य रार बढ़ेगा, युद्ध करना पड़ेगा (पं०)। समीप रहनेपर रावण इन्हें भी उठाकर सिरपर रख लेगा। अथवा, विभीषणके लिये इन्हें श्रीरामजीके पास भेज दिये। अथवा, वानर-भालुओंके विनोदार्थ और अपनी जय सूचित करनेके लिये भेजे। (म० म०)

बाबा हरिदासजी प्रश्न उठाकर कि 'विभीषणके एक सिर है तब चार मुकुट क्यों भेजे?' उसका स्वयं उत्तर देते हैं कि रावण जिन वस्तुओंसे हीन है, विभीषण उनके सहित है। रावण धर्महीन, प्रभुपद-विमुख और कालविवश है—(३७)। विभीषण धर्मात्मा, रामभक्त और काल जीतनेवाले योगियोंमें शिरोमणि हैं; क्योंकि इन्हें प्रभुने वर दिया कि *'करहु कल्प भर राज तुम्ह·····'* पुनः, रावण भूभार है और विभीषण उस भारके उतारनेमें सहायक हैं; यथा—*'राम विभीषण तन सब हेरा।'* ये चारों बातें मानो चार सिर हैं।

* गिरत दसानन उठेउ सँभारी। भूतल परे मुकुट षट चारी॥ कछु बहुकर निज कन्हि सँवारे—(का०)। † बहु कर (मा० म०)।

आवत मुकुट देखि कपि भागे। दिन ही लूक परन बिधि लागे॥ ७॥
की रावन करि कोप चलाए। कुलिस चारि आवत अति धाए॥ ८॥

शब्दार्थ—**लूक**=टूटा हुआ तारा, उल्का। यथा—*'सुमिरि राम तकि तरकि पयोनिधि लंक लूक सो आयो।* **कुलिस**=वज्र गाज, बिजली।—*'बिपुल बिहँग बन परयो निसि मानहु कुलिस कठोर'*—(अ०)।

अर्थ—मुकुटोंको आते देख बंदर भागे। (वे सोचते हैं कि) हा विधाता! क्या दिनमें ही तारे टूटकर गिरने (उल्कापात होने) लगे॥ ७॥ किंवा रावणने क्रोध करके चार वज्र चलाये हैं, जो बहुत वेगसे दौड़े हुए आ रहे हैं॥ ८॥

नोट—१ (क) लूक और कुलिश कहकर जनाया कि वे बहुत चमक रहे थे, जैसे तारा और वज्र चमकते हैं और यह भी कि वे बहुत वेगसे चले आ रहे थे, जैसे बिजलीका वेग है। तारा भी टूटनेपर बड़े वेगसे चलता देख पड़ता है। (ख) प्रथम सोचे कि उल्कापात होगा, फिर यह समझकर कि दिनमें 'उल्कापात कहाँ' यह अनुमान किया कि रावणने वज्र चलाया होगा। इसी प्रकार सोचते जाते थे कि प्रभुने भयभीत देख उन्हें शान्त किया।

वीर—मुकुटोंको लूक समझना 'भ्रान्ति' है और यह निश्चय नहीं कि लूक है या कुलिश; यह 'संदेहालंकार' है।

कह प्रभु हँसि जनि हृदय डेराहू। लूक न असनि केतु नहि राहू॥ ९॥
ए किरीट दसकंधर केरे। आवत बालि तनय के प्रेरे॥ १०॥

शब्दार्थ—**प्रेरे**=प्रचालित, चलाये वा फेंके हुए, प्रेरित, भेजे हुए। **असनि** (अशनि)=वज्र, कुलिश, यथा—*'कुलिस चारि आवत अति धाए।'*

अर्थ—प्रभु श्रीरामचन्द्रजी हँसकर बोले कि मनमें डरो मत। ये न लूक हैं न वज्र हैं, न केतु हैं, और न राहु ही हैं॥ ९॥ ये तो दशग्रीव रावणके मुकुट हैं जो बालिपुत्र अङ्गदके फेंके हुए आ रहे हैं॥ १०॥

नोट—१ *'कह प्रभु हँसि'* यहाँ हँसना वानरभालुओंके निर्भयार्थ, वानरोंके भागनेपर विनोदार्थ और अङ्गदकी वीरतापर प्रसन्नता-सूचनार्थ है। पंजाबीजीका मत है कि अङ्गदका प्रभाव और मुकुटोंकी सुन्दरता देखकर अथवा रावणकी हीनतापर हँसे।

नोट—२—वानरोंने तो *'लूक और कुलिश'* दो ही का नाम लिया, प्रभुने चार कैसे कहे? यह प्रश्न करके बं० पा० जी उत्तर देते हैं कि चार मुकुट हैं, इसीसे प्रभुने चार नाम कहे। बाबा हरिदासजी लिखते हैं कि प्रभुने कहा है कि *'हृदय'* में न डरो। हृदय मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार इन चारका नाम है। प्रत्येकमें दो-दोका वास है—मनमें उपकार और अपकार, बुद्धिमें विद्या और अविद्या, चित्तमें सुख और दुःख तथा अहंकारमें पुरुषत्व और अपुरुषत्वका। लूक मनका बाधक है, दाह उत्पन्न करनेवाला है, बुद्धिका बाधक वज्र, चित्तका केतु और अहंकारका राहु है। इनसे न डरो जिसमें सावधान रहकर हमारे उपकारमें लगो, भागकर पुरुषत्व न खोओ।'.....इत्यादि।

मेरी समझमें तो वानरोंके हृदयमें इन चारोंका भ्रम एक-एक करके होता गया। वे दो कह पाये थे कि प्रभुने उनको निर्भय करना चाहा। इतनी ही देरमें उनके हृदयमें केतु और राहुका अनुमान भी उठा था। प्रभुने उनके हृदयका वह भ्रम भी अपनी सर्वज्ञतासे दूर किया। यहाँ 'भ्रान्त्यापह्नुति' अलंकार है।

दो०—तरकि पवनसुत कर गहेउ* आनि धरे प्रभु पास।
कौतुक देखहिं भालु कपि दिनकर सरिस प्रकास॥ ३१॥

अर्थ—पवनपुत्र श्रीहनुमान्‌जीने उछलकर उन्हें हाथसे पकड़ लिये और प्रभुके पास लाकर रख दिये। उनकी चमक सूर्यके प्रकाशके समान थी। रीछ और वानर तमाशा देखने लगे॥ ३१॥

* 'कूदि गहे कर पवनसुत'—(का०)। कूदि पवनसुत कर गहे—(मा० म०)

मा० म०, पं०—श्रीहनुमान्‌जीने कूदकर पकड़ लिया कि—१ बलपूर्वक अङ्गदने फेंका है कहीं ये आगे (समुद्रपार) न चले जायँ। २—किसीको चोट न लग जाय। ३—भूमिमें गिरकर मुकुटोंका कोई अवयव टूट न जाय। ४—ये हमारे मित्रने प्रभुके पास भेंट भेजी है, मेरा कर्त्तव्य है कि मैं अपने हाथोंसे ले जाकर इस भेंटको प्रभुके समीप रख दूँ।

दो०—उहाँ सकोप दसानन सब सन कहत रिसाइ।
धरहु कपिहि धरि मारहु सुनि अंगद मुसुकाइ॥ ३१॥

अर्थ—वहाँ (रावणकी सभामें) क्रुद्ध रावण सबसे क्रोधित होकर कहने लगा कि वानरको पकड़ लो और पकड़कर मार डालो। यह सुनकर अङ्गद मुसुकुराने लगे॥ ३१॥

☞ रा० प० में इस दोहेके स्थानपर यह पाठ है—

उहाँ कहत दसकंध रिसाई। धरि मारहु कपि भजि जनि जाई॥ १॥

नोट—१ एक ही समयमें दोनों चरित्र हुए। अङ्गदके मुकुटोंके फेंकनेपर वे रामदलमें आये और पवनसुतने लेकर प्रभुके पास रख दिये, सब वानर देख रहे हैं—यह चरित इधर हुआ। ठीक उसी समय उधर लङ्कामें रावण सँभलकर उठ बैठा और वे वचन कहे। वक्ता एक हैं; इसलिये बीचमें सुवेलपर्वतका समाचार कहकर अब फिर पूर्वप्रसंग मिला रहे हैं। इस समय कविकी स्थिति सुवेलपर है जहाँकी कथा वे कह रहे थे; वहाँसे लङ्का दूर है, अतः *'उहाँ'* पद दिया। नोट—२ अङ्गदजी हँसे रावणकी निर्लज्जता और धृष्टतापर कि इतनेपर भी वह मुझे निर्बल ही समझता है; मेरे हाथके थपेड़ेको साधारण बात समझता है।

एहि* बिधि बेगि सुभट सब धावहु। खाहु भालु कपि जहँ† जहँ पावहु॥ १॥
मर्कट‡ हीन करहु महि धाई। जिअत धरहु तापस द्वौ भाई॥ २॥

अर्थ—इसी प्रकार सब योद्धाओ! शीघ्र धावा करो (दौड़कर जाओ) और जहाँ कहीं रीछ-बंदरोंको पाओ खा लो॥ १॥ जाकर पृथ्वीको वानर-रहित कर दो और तपस्वी दोनों भाइयोंको जीता ही पकड़ लो§ अर्थात् वे भागने न पावें, पकड़कर उनको मार न डालना वरन् लेकर कारागृहमें रखना॥ २॥

वि० त्रि०—**'एहि बिधि'**—रावण सँभालकर उठे, छः मुकुट सिरपर सँवारे और क्रोधसे भरे कह रहे हैं, 'पकड़ो बंदरको और मार डालो', पर देखते हैं कि सब-के-सब तो भागे जा रहे हैं। और उनकी आज्ञापर अङ्गदजी मुसकुरा रहे हैं कि ये किसको हुकुम देते हैं, जिन्हें हुकुम देना है, वे तो स्वयं भागे जा रहे हैं। रावण बैठकबाजीमें बड़े सिद्धहस्त हैं, तुरन्त बात सँभालते हुए कहते हैं कि 'हाँ हाँ, बस इसी तरहसे तुमलोग दौड़ते चले जाओ और जहाँ पाओ बंदरोंको खा जाओ और दोनों भाई तपस्वियोंको जीते ही पकड़ लाओ (मानो वे सब भाग नहीं रहे हैं, वानरी सेनापर धावा करने जा रहे हैं)।

नोट—१ वानरोंको मार डालनेको कहा, क्योंकि दो वानर आये, दोनोंने अपमान किया। दोनों तपस्वी भाइयोंको बाँध रखनेको कहा, क्योंकि ये दोनों अनुपम हैं, नरभूषण हैं, यथा—*'बध लायक नहिं पुरुष अनूपा'*—आ० १८ (३-५) देखिये। पुनः, भाव कि बाँधकर कष्ट देकर प्राण लेंगे, इसलिये मारना नहीं।

पुनि सकोप बोलेउ जुबराजा। गाल बजावत तोहिं न लाजा॥ ३॥
मरु गर काटि निलज कुलघाती। बल बिलोकि बिहरतिx नहिं छाती॥ ४॥

* एहि बिधि। † जहँ-तहँ। ‡ महि अकीस करि फेरि दोहाई। (का०)। 'बधि'—भा० दा०।

§ पु० रा० कु०—सरस्वतीकृत अर्थ—'एहि बिधि' अर्थात् अति शीघ्र दौड़ जाओ; क्योंकि देह नश्वर है, यथा—'यावत्स्वस्थमिदं देहं यावन्मृत्युश्च दूरतः। तावदात्महितं कुर्यात् प्राणान्ते किं करिष्यति॥' 'खाहु' अर्थात् नाना भोग करो। महि जाई (महिसे उत्पन्न धरणीसुता सीताजी) और तपस्वी दोनों भाइयोंको अपने जीते-जी पकड़ो' अर्थात् उनकी शरण जाओ। इन सबके स्मरणसे पातक नाश होते हैं, यथा—'श्रीरामं च हनूमन्तं सुग्रीवं च विभीषणम्। अङ्गदं जाम्बवन्तं च स्मृत्वा पापैः प्रमुच्यते॥' इति (रुद्रयामल) x बिहरी—(का०)=फटी।

शब्दार्थ—**गाल बजाना**=डींग मारना, अनर्गल बकना। गर=गला, गर्दन। **बिहरना**=फटना—*'तासु दूत होइ हम कुल बोरा। ऐसिहु मति उर बिहरु न तोरा॥'*

अर्थ—युवराज अङ्गद फिर कोप करके बोले—अरे! तुझे गाल बजाते लज्जा नहीं आती॥ ३॥ अरे निर्लज्ज! अरे कुलको नाश करनेवाले! (अपने हाथों अपना) गला काटकर मर जा। मेरा बल देखकर भी तेरी छाती नहीं फटती?॥ ४॥

नोट—१ *'बल बिचारि'* इति। भाव कि चार मुकुट तेरे हाथों छीन लिये, तेरी कुछ न चली, मेरे एक थपेड़ेसे पृथ्वी ऐसी कँप गयी कि सुभटोंसहित तू भी गिर पड़ा और तेरे मुकुट भी, इस बलको देखकर भी लज्जा न हुई कि हाय करके मर जाता कि एक वानरने यह दुर्गति कर डाली। *'कुलघाती'* सम्बोधनका भाव कि तेरे कारण तेरे कुलभरका नाश होनेको है। यथा—*'होहि कि रामसरानल खल कुल सहित पतंग।'*—(सुं० ५६), एवं *'बातन्ह मनहिं रिझाइ सठ जनि घालसि कुल खीस।'* अर्थात् निर्लज्जतासे मनको बातोंसे रिझा रहा है पर इन बातोंसे पूरा न पड़ेगा, यदि तू लज्जित होकर आत्मघात न कर लेगा तो सारे कुलसहित तेरा नाश होगा। पु० रा० कु०—'खरदूषणादिवध' से कुलघाती कहा।

रे त्रियचोर कुमारगगामी। खल मलरासि मंदमति कामी॥ ५॥
सन्यपात जल्पसि दुर्बादा। भयेसि कालबस खल* मनुजादा॥ ६॥

शब्दार्थ—'सन्निपात'—त्रिदोष—वात, पित्त, कफ तीनोंका एक साथ बिगड़ना। सरसाम।

अर्थ—अरे स्त्रीचोर! अरे कुमार्गपर चलनेवाले! अरे मूर्ख एवं दुष्ट, पापकी राशि, मन्दबुद्धि और कामी! तू सन्निपातमें दुर्वचन बक रहा है? अरे दुष्ट राक्षस! तू कालके वश हो गया है॥ ५-६॥

नोट—पर-स्त्रीको चुरा लाया इसीसे कुमारगगामी कहा, यथा—*'सो दससीस स्वानकी नाईं। इत उत चितइ चला भड़िहाईं॥ इमि कुपंथ पग देत खगेसा। रह न तेज तन बुधि बल लेसा॥'* (आ० २८=) *मलरासि,* यथा—*'पापौघ मय तव तनु अयं'* इति (मन्दोदरीवाक्य) *'मनुजाद'* कहा क्योंकि उसने पूर्व कहा है कि *'ऐसे मनुज अनेक खाहिं निसाचर दिवस निसि'* राक्षस मनुष्योंको खाते हैं, यथा—*'खल मनुजाद द्विजामिषभोगी। पावहिं गति जो जाचत जोगी॥'* (४४। ४) समझानेपर भी नहीं समझता, अपने हाथों अपना कुलनाशक होता है; अतः खल और मन्दमति कहा, यथा—*'सुनु खल मैं तोहि बहुत बुझायो। एतो मान तोहिं जो मोहबस जानतहू बिष खायो॥'* (गी० लं० ४) हरिनिन्दासे भी मन्दमति कहा, यथा—*'पिता मंदमति निंदत तेही।'* इत्यादि।

पं० बं० पा०—*'सन्निपात……।'* भाव कि जैसे सन्निपात होनेपर मनुष्यका मरणकाल निकट जान पड़ता है और वह मर जाता है वैसे ही तेरे मृत्यु आ गयी, अब तू न बचेगा। [मिलान कीजिये—*'बातुल भूत बिबस मतवारे। ते नहिं बोलहिं बचन सँभारे॥'* (१। ११५)]

पु० रा० कु०—*'सन्यपात जल्पसि……'* इससे दशवीं अर्थात् 'प्रलापक सन्निपात' दशा सूचित की, यथा—*'सन्निपातस्त्रयोदश'*। और *'भयेसि कालबस'* से असाध्य जनाया, यथा—**'रक्तष्ठीवी भुग्ननेत्रः शीतगात्रः प्रलापकः। अभिन्यासोऽन्तकश्चैव षडसाध्याः प्रकीर्तिताः'** इति (माधवनिदान)।

प० प० प्र०—कफ, वात और पित्त—इन तीनों दोषोंके कुपित होनेपर जो रोग होता है उसे सन्निपात या त्रिदोषजनित कहते हैं। पर यहाँ *'जल्पसि'* शब्दसे सन्निपात ज्वर ही विवक्षित है। रावणमें *'काम बात कफ लोभ अपारा'* और *'क्रोध पित्त नित छाती जारा'* हैं। और *'प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई॥'* अतः उसको सन्निपात होना कहा। *'चोर'* शब्दसे लोभी एवं लोभ, *'कामी'* से काम और *'सकोपा'* से क्रोध प्रतीत होता ही है। अतः अङ्गदजीका वचन यथार्थ ही है। सन्निपातज कोई भी रोग हो वह दुःसाध्य या असाध्य होता है और रोगी तथा उसके परिवारको भी बहुत दुःखदायक होता है। यथा—*'उपजै सन्निपात दुखदाई।'*

या को फल पावहिगो आगे। बानर भालु चपेटन्हि लागे॥ ७॥

* निसि—(का०) खल—(भा० दा०)।

राम मनुज बोलत असि बानी। गिरहिं न तव रसना अभिमानी॥८॥
गिरिहहिं रसना संसय नाहीं। सिरन्हि समेत समर महि माहीं॥९॥

अर्थ—इसका फल तो तुम आगे (भविष्यमें) पाओगे जब वानर-भालुओंके चपेटे (तमाचे; या पैरकी ठोकरें) लगेंगे॥७॥ राम मनुष्य हैं, ऐसे वचन बोलते ही, अरे अभिमानी! तेरी जिह्वाएँ गिर नहीं पड़तीं॥८॥ तेरी जिह्वाएँ सिरोंसमेत रणभूमिमें गिरेंगी इसमें संदेह नहीं है॥९॥

पं०—*'गिरहिं न तव रसना।'* यह सुनकर सम्भव है कि रावण कहे कि वे ईश्वर होते, मनुष्य न होते, तो गिर पड़तीं, न गिरीं अतः निश्चय ही हमारा सिद्धान्त सत्य निकला; इसीपर अङ्गद प्रथम ही कहते हैं कि वे अकेले न गिरेंगी, सिरोंसहित गिरेंगी, इसीसे विलम्ब हुआ। अभी गिरनेसे कम कष्ट होता, देरमें पापका फल मिले तो जानो कि अधिक कष्ट होनेको है।

मिलान कीजिये—'**नो चेद्वानरवाहिनीपतिमहाचञ्चच्चपेटोत्तरैस्तत्तन्मुष्टिभिरङ्गसंगरगतस्तत्तत्फलं लप्स्यसे॥**' (हनु० ८। ४९) अर्थात् नहीं तो वानरसेनापतियोंके महापुष्ट चपेटोंसे जो तुझपर संग्राममें पड़ेंगे तू इसका फल भोगेगा। पुनः, यथा—*'पावहुगे निज कर्म जनित फल भले ठौर हठि बैर बढ़ायो। बानर भालु चपेट लपेटनि मारत तब ह्वै है पछितायो॥'* (गी० ६। ४)

सो०—सो नर क्यों दसकंध बालि बध्यो जेहिं एक सर।
बीसहु लोचन अंध धिग तव जन्म कुजाति जड़॥३२॥

अर्थ—क्यों रे दशकंधर! वह मनुष्य कैसे हैं, जिन्होंने एक ही बाणसे बालीको मार डाला?* अरे कुजाति! अरे जड़! तू बीसों आँखोंका अंधा है, तेरे जन्मको धिक्कार है॥३२॥

नोट—१ *'बालि बध्यो जेहिं एक सर'* से जनाया कि किसी मनुष्यके एक ही बाणसे उसकी मृत्यु असम्भव थी, इसीसे सबने यही कहा है, यथा—*'जगत बिदित अति बीर बालि बल जानत हौ किधौं अब बिसरायो। बिनु प्रयास सोउ हत्यो एक सर सरनागत पर प्रेम दिखायो॥'* (गी० लं० ४), *'एकहि बान बालि मारेउ जेहि जो बल उदधि अगाध'* (मन्दोदरीवाक्य गी० लं० १), *'बालि एक सर मारयो तेहि जानहु दसकंध।'* (३५)

नोट—२ *'बीसहु लोचन अंध'* अर्थात् एक भी आँख जिसके होती वह समझ जाता कि बालीको एक बाणसे मारनेवाला मनुष्य नहीं हो सकता। तेरी सभी हियेकी आँखें फूटी हैं, इसीसे रामरूप नहीं देख पड़ता। यथा—*'अग्य अकोबिद अंध अभागी॥'''''मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना। रामरूप देखहिं किमि दीना॥'* (१। ११५) ऐसा ही समयादर्शरामायणमें मन्दोदरीने कहा है, यथा—'**सोऽयं सेतुविधिं विधाय जलधौ प्राप्तस्त्रिकूटाचलं पश्यन् विंशतिलोचनैरपि भवानन्धः कथं वल्लभ॥**' (६७)

नोट—३ '**कुजाति**'। यह पुलस्त्यका नाती है, उत्तमकुलका है, तब 'कुजाति' कैसे? कुजाती=जिसका बुरी तरहपर जन्म हुआ हो। रावणकी माता पुष्पोत्कटा संध्या-समय विश्रवा ऋषिके पास कामान्ध होकर गयी थी और उसी समय रतिके लिये उसने हठ किया। यद्यपि ऋषिने उसे बहुत समझाया कि यह प्रदोषकाल है, इसके लिये अत्यन्त अयोग्य समय है; पर उसने न माना। इसीसे राक्षस उत्पन्न हुआ। मातृपक्ष और निशिचरोंके आचरणके सम्बन्धमें *'कुजाति'* कहा।

सो०—तव सोनित की प्यास तृषित रामसायक निकर।
तजौं तोहि तेहि त्रास कटुजल्पक निसिचर अधम॥३२॥

शब्दार्थ—सोनित (शोणित)=रक्त, रुधिर, खून। तृषित=प्यासे।

अर्थ—रे कटुजल्पक! रे अधम निशिचर! तेरे खूनकी प्याससे श्रीरामचन्द्रजीके बाण-समूह प्यासे हैं,

* राम नर नहीं हैं इसका समर्थन इस तरह करना 'काव्यलिङ्ग अलंकार' है। आँखोंका धर्म देखना है, उसके रहते अंधापन होना अर्थात् कारणसे विपरीत कार्य होना 'चतुर्थ विभावना अलंकार' है।—(वीर)

इसी डरसे तुझ पापी और कड़वे वचन बकनेवाले निशिचरको मैं छोड़ देता हूँ, (कि उनकी प्यास न बुझेगी तो स्वामी अप्रसन्न होंगे)॥ ३२॥

बं० पा०, पं०—*'तजौं तोहि तेहि त्रास'।* भाव कि रामबाण तेरे रक्तके प्यासे हैं; तेरा रुधिर यदि मेरे अपराधसे उन्हें न मिला तो कहीं वे मेरा ही रुधिर न पी लें, यह डर है। यदि वह कहे कि तुझमें बल नहीं हैं, तू इस युक्तिसे बचना चाहता है तो उसपर आगे कहते है कि मैं *'तव दसन'''''।'*—(यहाँ भी काव्यलिंग अलंकार) है।

पु० रा० कु०—भाव कि बालिसे तो एक सुग्रीव ही पीड़ित थे और तुझसे तो त्रिलोकी पीड़ित है। अतः बालिके रक्तसे एक बाण तृप्त हुआ और तेरे रक्तके प्यासे बहुत-से बाण हैं।

☞ मिलान कीजिये—'**बाणोऽयं मम ताटकात्मशिरसि स्नातः स्वसुर्नासिकाप्राणायामपरः खरत्रिशिरसां हुत्वा दशास्याहुतिम्। मारीचं च बलिं विधाय तदनु त्वाचम्य वारान्निधिं भोक्तुं रावणमामिषं मृगयते भो दीयतां मैथिली**॥' (हनु० १४। २९।) (ये वचन रामरावणयुद्धके समय रामजीने रावणसे कहे हैं) अर्थात् यह मेरा बाण ताटकाके रुधिरमें स्नान करके तदनन्तर तेरी बहिनके नासिकाके प्राणायामको करके, खर-दूषण-त्रिशिराकी आहुति देकर मारीचको बलि बनाकर फिर समुद्रको आचमन करके तेरे आमिषको भक्षण करनेके लिये ढूँढ़ रहा है। इसलिये तू अब भी जानकी दे दे।

वि० त्रि०—तूने बहुत मनुष्योंका रक्तपान किया है, अब रामजीके बाण तेरे रक्तके प्यासे हो रहे हैं, अतः तू कालवश हो गया है, यथा—*'भयेसि कालबस खल मनुजादा'।* अब वे तेरा रक्त पिये बिना नहीं मानेंगे। इसी कारण तेरी बुद्धि ऐसी विकृत हो गयी है। मैं उन बाणोंसे डरता हूँ। तुझे मारकर मैं उनके कोपका भाजन नहीं होना चाहता। प्यासेकी प्यास बुझानेमें जो बाधक हो उसपर प्यासेका क्रुद्ध होना स्वभावसिद्ध है। नहीं तो मैं तुझे निश्चय मारता। श्रीगोस्वामीजी आगे चलकर रामजीके बाणोंका प्यासा होना स्पष्ट दिखलाते हैं, यथा—*'रावन सिर सरोज बन चारी। चलि रघुनाथ सिलीमुख धारी॥'* जिस भाँति मकरन्दके प्यासे भौंरे प्रातःकाल कमल खिलते ही रस-पानके लिये झुंड-के-झुंड चलते हैं, उसी भाँति रावणके शिररूपी कमलवनकी ओर रामचन्द्रके बाण अपनी रक्त-पिपासा शान्त करने चले। शिलीमुख शब्दका अर्थ बाण भी है और भौंरा भी।

गौड़जी—यहाँ पुनरुक्ति—दूषण नहीं है। अन्वय होगा 'तव सोनितकी प्यास (त) ते रामसायक निकर तृषित हैं।' हाँ, यदि प्यास शब्दपर जोर न देना होता तो केवल इतनेसे ही काम चल जाता कि 'राम-सायक तव सोनित (के) तृषित हैं। 'निकर' और 'प्यास' दोनों ही व्यर्थ ठहरते। परन्तु यहाँ 'प्यास' त्रैलोक्यके सभी सताये हुओंको है और एक-एकको तृप्तिके लिये श्रीरामजीके अनेक सायक ही समर्थ हैं। नहीं तो तेरे विजेता बालिके लिये एक शर काफी था तब तेरे लिये दूसरेकी क्या आवश्यकता पड़ती। 'प्यास' पर जोर न होता तो 'आस'-से काम चल जाता। 'निकर' की जगह 'निसित' (तेज) विशेषण हो जाता। कविको शब्दोंका दारिद्र्य न था। 'निसित' से 'तृषित' का अनुप्रास भी बहुत सुन्दर होता। परंतु भाव-गाम्भीर्य कहाँसे आता? आगे चलकर 'त्रास' अत्यन्त प्रयोजनीय है। 'तेहि त्रास' से तात्पर्य यह है कि मैं अगर तुझे मार डालूँ तो अकेले मेरी प्यास बुझेगी, परन्तु सुरासुरकी प्यास बुझानेकी उद्देश्यपूर्त्ति जो रघुनाथजीके शरोंमें है न हो सकेगी तो स्वामीका 'काज' न होगा और *'तासु हित'*,—रावणकी सद्गति—न होगी तो सरकार नाराज होंगे, आज्ञाका उल्लङ्घन होगा, सेवा बिगड़ जायगी (*आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा*), यह बड़ा 'त्रास' है। नहीं तो तुझ-से कटुवादी अधम निशाचरका वध किये बिना न रहता। [यहाँ एक भी शब्द निष्प्रयोजन नहीं है।]

मैं तव दसन तोरिबे लायक। आयसु मोहि न दीन्ह रघुनायक॥ १॥
असि रिस होति दसौ मुख तोरौं। लंका गहि समुद्र महँ बोरौं॥ २॥
गूलरि फल समान तव* लंका। बसहु मध्य तुम्ह जंतु असंका॥ ३॥
मैं बानर फल खात न बारा। आयसु दीन्ह न राम उदारा॥ ४॥

* यह लंका—(का०)।

अर्थ—मैं तेरे दाँत तोड़नेमें सक्षम हूँ पर श्रीरघुनाथजीने मुझे आज्ञा नहीं दी॥ १॥ ऐसा क्रोध आता है कि तेरे दशों मुखोंको तोड़ डालूँ और लंका (नगरी) को पकड़कर समुद्रमें डुबा दूँ॥ २॥ तेरी लंका गूलरके फलके समान है। तुम सब जन्तु (छोटे-छोटे भुनगे कीड़े) हो जो उसके भीतर निर्भय बस रहे हो॥ ३॥ मैं बंदर हूँ, फल खाते देर नहीं (लगनेकी), पर उदार रामचन्द्रजीने आज्ञा नहीं दी है॥ ४॥

नोट—१ (क) '*मैं तव दसन तोरिबे लायक*............' इति। आज्ञा नहीं है, यथा—'*हौं ही दसन तोरिबे लायक काह कहौं जौ न आयसु पायो।*' (गी० लं० ४) आज्ञापर न चलना सेवक-स्वामी-भावके प्रतिकूल है। सेवकका आज्ञापालन ही कर्तव्य है, यथा—'*अग्या सम न सुसाहिब सेवा।*' (२। ३०१), '*आएहु तात बचन मम पेली।*' (३। ३०) (ख) '*अस रिस होति*.....' अर्थात् क्रोध तो ऐसा ही है कि दसों मुख तोड़ दूँ......इत्यादि। इसी बातका समर्थन आगे युक्तिसे करते हैं कि '*गूलरि* ......' (ग) '*गूलरि फल समान*........' अर्थात् बंदर फलभक्षी होते ही हैं, वे स्वाभाविक ही फल खाते हैं, वैसे ही निशिचरोंका मारना हमारा सहज स्वभाव है। '**न बारा**' का भाव कि जैसे गूलरके जीव अपने बचानेको असमर्थ हैं वैसे ही तुम असमर्थ हो। इतनी शीघ्र लंकाभरका नाश करूँ कि तुम कुछ कर ही न सको, तुम समझ भी न सको कि कोई मारने आया था।

पु० रा० कु०—१ प्रभुकी आज्ञा है कि '*काज हमार तासु हित होई। रिपु सन करेहु बतकही सोई॥*' तुझे मारनेकी आज्ञा नहीं है, दूसरे, रामबाणका भय है कि मेरा ही न वध कर डालें; नहीं तो '*असि रिस होति*...........'।

पु० रा० कु०२—समुद्रमें डुबाना कहकर फिर युक्तिसे लंकाको गूलर-फल कहा। भाव कि चाहूँ तो समुद्रमें डुबा दूँ। नहीं तो खा ही लूँ।

बं० पा०—१ '*असंका*' अर्थात् तुम यह समझते रहे कि यहाँ कोई पहुँचेगा ही नहीं तब मारेगा कौन?— [यथा—'*जिन्ह के जीवन कर रखवारा। भयउ मृदुल चित सिंधु बिचारा॥*' (५। ५२। ७) दोहा ५ (१०) देखिये।] '*मैं बानर*'—भाव कि गूलर-फल उत्तम मनुष्योंके लिये अग्राह्य है पर मैं तो वानर पशु हूँ, मुझे तो निषेध नहीं, मेरा तो भक्ष्य ही है, फल खाते देर नहीं लगती। बं० पा० २—'**उदार**'। उदारता यह है कि स्वयं वध करनेसे उनका यश विस्तृत होगा, जिससे जगत्का उपकार होगा।—'*जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु॥*' (बा० १२१), '*सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं। कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं॥*', '*चरित करत नर अनुहरत संसृत सागर सेतु।*' (अ० ८७)—दोहा ३८ देखिये।

प० प० प्र०—१ '*असि रिस*.........' इति। श्रीहनुमान्‌जीके '*सहित सहाय रावनहि मारी। आनौं इहाँ त्रिकूट उपारी॥*' (४। ३०। ९) इन वचनोंसे मिलान करनेसे सिद्ध होता है कि दोनों ही समान बल-बुद्धिनिधान हैं। दोनों रामाज्ञा भंग करनेमें डरते हैं, अन्य किसीका डर उनको नहीं है।

प० प० प्र० २—'*गूलरि फल समान*..........' इन वचनोंको अगस्त्यजीके '*ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया॥ जीव चराचर जंतु समाना। भीतर बसहिं न जानहिं आना॥ ते फल भच्छक कठिन कराला। तव भय डरत सदा सोउ काला॥*' इन वचनोंसे मिलान करनेसे स्पष्ट हो जायगा कि अङ्गद मिथ्यावादी नहीं है। फिर शिवजीके '*उमा न कछु कपि कै अधिकाई। प्रभु प्रताप जो कालहि खाई॥*' इन वचनोंको ध्यानमें रखनेसे स्पष्ट देख पड़ेगा कि '*मैं बानर फल खात न बारा*' यह अङ्गदवाक्य केवल व्यर्थकी गर्वोक्ति नहीं है।

☞ श्रीरघुनाथजीके नाम, रूप, लीला और धाम सभीको कविने उदार विशेषण देकर जनाया है कि सब एक-से फलप्रद हैं—

नाम—'*एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा॥*' (१। १०। १)

रूप—'*सुनहु उदार सहज रघुनायक।*' (३। ४२। १), '*अस बिचारि भजु राम उदारा।*' (२७। ७) '*तुम्ह उदार उर अंतरजामी।*' (उ० ८४), '*बिहँसे राम उदार।*' (३७)

चरित—*'कृपासिंधु मैं आउब देखन चरित उदार।'* (११४), *'सोइ सच्चिदानंदघन कर नर चरित उदार।'* (उ० २५)

धाम—*'मम धामदा पुरी सुखरासी।'* (७। ४। ७), *'सकल सिद्धिप्रद मंगलखानी।'* (१। ३५), *'नृप गृह कलस सो इंदु उदारा।'* (१। १९५)

जुगुति सुनत रावन मुसुकाई। मूढ़ सिखिहि कहँ बहुत झुठाई॥ ५॥
बालि न कबहुँ गाल अस मारा। मिलि तपसिन्ह तैं भएसि लबारा॥ ६॥

शब्दार्थ—**लबार** (सं० लपन=बकना)=गप्पी, झूठ बकनेवाला।

अर्थ—अङ्गदकी युक्ति सुनकर रावण मुसुकराया। (और बोला) अरे मूर्ख! बहुत झूठ कहाँ सीखा॥ ५॥ बालीने तो कभी ऐसा गाल नहीं मारा। (पर) तू तपस्वियोंसे मिलकर गप्पी हो गया॥ ६॥

नोट—१ (क) **'मुसुकाई'।** 'युक्ति' सुनकर हँसा। अथवा विचार किया कि इससे बातोंसे जीतना कठिन है अतएव हँसकर उससे स्नेह जताता है और अपनी ओर मिलाना चाहता है। (पं०) (ख) **'मूढ़ सिखिहि कहँ'** इति। भाव कि झूठ कवितामें होती है और बाली कवि न था। *'गूलर फल............'* से *'खात न बारा'* तक यह कविताई है। २— *'बालि न कबहुँ गाल अस मारा'* यह अङ्गदके पिताकी प्रशंसा की, कि वह गम्भीर था; तू उसका पुत्र है तू भी वैसा ही था पर तू इन झूठे दम्भी तपस्वियोंके सङ्गमें पड़ गया। इससे सङ्गतिका प्रभाव तुझपर भी पड़ा ही चाहे। तत्त्व यह कि उनका सङ्ग छोड़ दे और पिताकी प्रकृति धारण कर। (पं०) (भाव कि वह मेरा मित्र था, तू भी मेरा मित्र बन)। यहाँ लक्षणामूलक गुणीभूत व्यङ्ग है।

प० प० प्र०—*'मिलि तपसिन्ह तैं भएसि लबारा'* मानसके इस वचनसे ऐसा अनुमान होता है कि कविके समयमें तपस्वियोंके विषयमें पण्डितों, सत्ताधीशों, धनी और बलवान् लोगोंकी क्या भावना थी, यह दरसाया गया है।

साँचेहु मैं लबार भुजबीहा। जौं न उपारिउँ तव दस जीहा॥ ७॥
समुझि* रामप्रताप कपि कोपा। सभा माँझ पन करि पद रोपा॥ ८॥

शब्दार्थ—**लबार**=झूठा (**जीह**=जीभ। 'रोपना'=जमाना, अड़ाना, दृढ़ताके साथ रखना। **'बीहा'**=बीस। यह मारवाड़ी बोली है। (रा० प्र०)

अर्थ—अरे बीस भुजावाले! मैं सत्य ही 'लबार' हूँ, यदि तेरी दसों जीभें न उखाड़ डालूँ॥ ७॥ श्रीरामचन्द्रजीका प्रताप समझकर अङ्गदने कोप करके सभाके बीचमें प्रतिज्ञापूर्वक पैर जमा दिया॥ ८॥

बं० पा०—१ 'बीहा', 'जीहा'—प्राकृत भाषा है। *'जौं न उपारिउँ.......'* इति। कवितावलीमें भी कुछ ऐसा ही कहा है। यथा—*'बालि को बालक जौ तुलसी दसहू मुख के रन में रद तोरौं।'* (६। १४)

बं० पा० २—*'समुझि रामप्रताप'* इति। पूर्व निःशङ्क होनेके तीन हेतु कहे थे—पिता सम्बन्ध, अपना बल और रामप्रताप।—यथा—*'प्रभु प्रताप उर सहज असंका। रनबाँकुरा बालिसुत बंका॥'* (१८। १) इनमेंसे दो, पिता-सम्बन्ध और अपना बल तो हो ही चुके। रहा रामप्रताप, सो अब उसका समय जानकर उसका स्मरण किया और उसका बल दिखाते हैं। यथा—'**प्रतापाद्रामचन्द्रस्य पदं चालयितुं क्षमाः। न मे राक्षससंघाश्च रावणाद्या मनागपि॥**'

वै०—रामभक्तोंकी यह रीति है कि अपने कर्तव्यका भरोसा नहीं रखते; क्योंकि जीव अल्पज्ञ है, उसमें इतनी शक्ति कहाँ कि वह सर्वोपरि हो जाय। हरिकृपासे अनेकों सर्वोपरि हो गये। देखिये, श्रीशबरीजीके पदस्पर्शसे गौतमी पावन हुई, वाल्मीकि श्वपचके भोजनसे युधिष्ठिरजीका यज्ञ पूर्ण हुआ और अम्बरीषकी प्रार्थनासे दुर्वासाजीकी रक्षा हुई। इत्यादि प्रताप विचारकर अङ्गदने कोप करके पद आरोपण किया। [अङ्गद प्रभुका प्रताप स्वयं देख

* राम प्रताप समुझि—(का०); राम प्रताप सुमिरि=वै०।

चुके हैं कि दुन्दुभि-अस्थिको अँगूठेसे कितने योजनपर फेंक दिया, सप्तताल एक बाणसे उखाड़ डाले, बालिको एक बाणसे मार डाला, हनुमान्‌जीको मुद्रिका देकर सब विघ्नोंसे उनकी रक्षा की इत्यादि। *'तव प्रताप बड़वानलहि जारि सकै खलु तूल'* यह सुन चुके हैं। यही प्रताप समझकर कोप किया।]

रा० प०—*'समुझि रामप्रताप'।* रघुवीरका बल विचारकर पद रोपा। पदके देवता विष्णु हैं, अंगुष्ठ शेषनाग, चारों अँगुलियाँ दिग्गज, पदपृष्ठ कूर्म्म, एँड़ी वराह—जहाँ इतने देवता हैं उस पदको कौन टाल सकता है? ऐसा विचारकर पाँव रोपा। कवितावलीमें इसका विस्तृत वर्णन है।

पं०—रावणने तो प्रिय वचन कहे, पर अङ्गदने कठोर कहे, यह क्यों? उत्तर यह है कि उसने इन वचनोंमें भी श्रीरघुनाथजीकी निन्दा की है। *'बालि न कबहुँ गाल अस मारा'* कहकर अङ्गदकी निन्दा की कि तू अपने बापको नहीं पड़ा है। बालिका स्वभाव तुझमें नहीं तो किसी दूसरेका होगा। दूसरा और कोई है ही नहीं जिसका सङ्ग तुझे हुआ हो सिवाय तपस्वियोंके। तपस्वी लबार हैं। तू भी लबार हो गया। यह रामजीकी निन्दा है। पुनः अङ्गदने जाना कि अब यह शिथिल हो गया है अतएव भागेको और भगाना चाहिये।

नोट—हाथ और पैर ये दोनों इनके विशेष आयुध हैं, यथा—*'लागे मर्दइ भुज बल भारी। काहुहि लात चपेटन्हि केहू। भजहु न रामहिं सो फल लेहू॥'* (४३। ८) भुजबल दिखा चुके, यथा—*'दुहु भुजदंड तमकि महि मारी। डोलत धरनि सभासद खसे। चले भाजि भय मारुत ग्रसे॥ गिरत सँभारि उठा दसकंधर।'* अब चरणका बल दिखाते हैं। इससे शरीरबलका अपार होना निश्चित होगा।

पं०—दाँव लगानेमें लेना या देना दो बातें होती हैं। यहाँ पदारोपण कर अङ्गदने जनाया कि—(१) यदि तू हमारा चरण न हटा सका तो हमारे चरण लङ्कामें गड़ गये अर्थात् लङ्का हमारी हुई। वा (२) योद्धाओंका बड़ा बल भुजाओंमें होता है और पद कनिष्ठ अङ्ग है। यदि हमारा चरण ही न उठा सका तो और बलकी समता (बराबरी, मुकाबला) क्या करेगा? वा, (३) अङ्गदने सोचा कि भुजा पकड़ने लगेगा तब इसको नीचा (अपमानित) करनेका कोई मिष न बन पड़ेगा और पद छूने लगेगा तो अपमानित कर सकूँगा। अतः पदारोपण किया।

शीला—पदारोपणमें भाव यह है कि मनुष्य हो तो बातोंसे माने। लातोंका मनुष्य बातसे नहीं मानता—('लातोंके देवता बातोंसे नहीं मानते' यह लोकोक्ति है। अर्थात् लात खाकर नम्र होनेवाला लात खानेपर ही मानता है)—यही तेरा हाल है, मैं अनेक प्रकार, लोक और वेदमतसे समझाकर हार गया पर तू नहीं समझता। अतएव तुझे लातहीसे उपदेश देना उचित है। इसीसे *'पद रोपा'*।

जौं मम चरन सकसि सठ टारी। फिरहिं* रामु सीता मैं हारी॥ ९॥

अर्थ—अरे शठ! जो तू मेरा चरण हटा सके तो रामचन्द्रजी लौट जायँगे, मैं सीताजीको हारता हूँ।

फिरहिं रामु सीता मैं हारी

श्रीरामचन्द्रजीने अङ्गदको अपना प्रतिनिधि दूत बनाकर भेजा है और दूतपर उनका पूर्ण विश्वास है, यथा—*'बहुत बुझाइ तुम्हहि का कहऊँ। परम चतुर मैं जानत अहऊँ'* वे जानते हैं कि यह जो कुछ कहेगा वह यथार्थ ही होगा। उसको पूर्ण अधिकार दे दिया है, यथा—*'काज हमार तासु हित होई। रिपु सन करेहु बतकही सोई॥'*

वक्ता इस प्रतिज्ञाके पूर्व ही बता देते हैं कि *'रामप्रताप समुझि कपि कोपा'।* अङ्गद अभी-अभी प्रताप आँखों देख चुके हैं कि *'श्रीरघुबीर प्रताप ते सिंधु तरे पाषान'* और कवितावली छन्द १६ में भी यही कहा कि *'रोप्यो पाउँ पैजकै बिचारि रघुबीर बल लागे भट.........।'* अतएव उनको पूर्ण विश्वास है कि रावण भी चरण हटा नहीं सकता। इसकी पुष्टता शिवजी उपसंहारमें स्वयं कर रहे हैं कि जिस प्रभुका

* फिरहि—(का०, मा० म०)। फिरहि—(भा० दा०)।

यह प्रताप है कि वज्रको तृण और तृणको वज्र बना देता है उसके दूतकी प्रतिज्ञा क्योंकर टल सकती है? इसी भावकी पुष्टता दोहावलीसे होती है, यथा—'*तेहि समाज कियो कठिन पन जेहि तौलेउ कैलास। तुलसी प्रभु महिमा कहउँ की सेवक बिस्वास॥*' (१६७) अर्थात् यह बड़ी कठिन प्रतिज्ञा थी। इस प्रतिज्ञाका कारण प्रभुका प्रताप एवं अङ्गदका प्रभुप्रतापमें दृढ़ विश्वास ही है, अन्य कुछ नहीं।

श्रीकरुणासिन्धुजी, पंजाबीजी, पाँड़ेजी, बंदन पाठकजी इत्यादि प्राचीन तिलककारोंने भी यही अर्थ प्रधान माना है। फिर भी दूसरा अर्थ यह कर दिया है कि 'रामचन्द्र और सीता' दोनों फिर जायँगे (अर्थात् तुझे मारकर लौट जायँगे) पर मैं तुझसे अपनेको हार जाऊँगा (अर्थात् मैं तेरे सम्मुख संग्राममें न आऊँगा)। अर्थ तो अवश्य बन जाता है पर यह तो सोचिये कि इसमें 'रामप्रताप' की क्या बात है जिसे सोचकर वे अपनेको हारते हैं। और इसके (एक अङ्गदके) मिल जानेसे रावणको क्या विशेष लाभ होगा जब कि हनुमान्, सुग्रीवादि अगणित बलशील वानर वहाँ मौजूद (उपस्थित) हैं? तथा जो रामचन्द्रजी बालीको एक बाणसे मार सके उनके लिये अङ्गदका सेनासे निकल जाना क्या विशेष हानिकारक होगा?—लक्ष्मणजी ही समस्त निशाचरोंके लिये बहुत हैं, यथा—'*जग महँ सखा निसाचर जेते। लछिमन हनहिं निमिष महँ तेते।*', रामचन्द्रजीकी तो बात ही क्या?—इतनेहीपर रावण क्यों पैर हटाने उठेगा! सीताजीके हारने और रामजीके कोरे लौटनेमें ही रावणका लाभ होगा। सीताजीकी, बिना युद्ध किये, प्राप्ति इतनेमें ही हुई जाती है। दूसरे, राज्य भी बना रहेगा क्योंकि रामजी सूखे ही लौट जायँगे। विभीषणके लिये युद्ध न करेंगे। अतएव रावण अवश्य चरण उठानेको आवेगा, तब उसे लज्जित करनेका अच्छा मौका मिलेगा! 'पैर न हटे' इसीमें तो रामप्रताप और इनका विश्वास देख पड़ेगा कि कैसी कठिन प्रतिज्ञा दूतने प्रभुके बलपर कर डाली और प्रभुने उसकी प्रतिज्ञा रख ली। जितनी ही कठिन प्रतिज्ञा और विश्वास होगा वैसा ही अधिक प्रचण्ड प्रताप देख पड़ेगा, उसकी परीक्षा होगी।

जो लोग यह शंकाएँ करते हैं कि—अङ्गदको ऐसा अधिकार कैसे सम्भव है? पैर हट जाता तो क्या होता? इत्यादि। उनके विषयमें यही कहना होगा कि वे दौत्यकर्म और दूतके अधिकारको नहीं जानते। दूतको पूर्ण अधिकार अपने स्वामीकी ओरसे रहता है। वह जो कुछ कहे उसका स्वामी उसका पाबंद होगा। यदि ऐसा न हो तो दौत्यकर्म ही उठ जाय और उसकी किसी भी बातका विश्वास न रह जाय।

अब व्याकरणकी रीतिसे भी विचार करें तो भी यह अर्थ कसौटीपर नहीं उतरता और अन्य भी अर्थ जो खींच-खाँचकर लोग करते हैं वे भी इस कसौटीपर कसे जानेपर खरे नहीं उतरते।

यदि यह अर्थ ठीक समझा जाय तो हारना क्रियाके लिये न कोई कर्म रह जायगा और न कोई कर्मकी आवश्यकता ही रह जायगी। ऐसी दशामें अङ्गदके मुखसे अकर्मक क्रिया 'हारना' का भूतकालिकरूप 'हारा' निकलेगा, 'हारी' नहीं और यदि मानसकारका इष्टार्थ यही होता तो चौपाई यों होती—'*फिरहिं रामसीता, मैं हारा*'। परंतु ऐसा पाठ कहीं नहीं है और रामसीताके लौट जानेवाला अर्थ जो खींचातानी करके लगाते हैं उनकी 'असमर्थ' जबरदस्ती स्पष्ट हो जाती है।

श्रीपाँड़ेजी और बंदन पाठकजीके विचार इस विषयमें यथार्थ हैं। पाँड़ेजी कहते हैं कि यह चरण पाँसा है। इसमें रावणका सर्वस्व लगा और रघुनाथजीकी ओरसे श्रीजानकीजीकी बाजी लगायी गयी। इस समय अङ्गद श्रीरघुनाथजीके स्थानमें अर्थात् उनके प्रतिनिधि हैं। पाठकजी भी लिखते हैं कि 'जिसके निमित्त सारा कजिया (झगड़ा) है उसीको बाजीमें लगाया; इसी लाभार्थ रावण-सभाके सभी वीर उठे। नहीं तो अङ्गदके पास कोई वस्तु ऐसी नहीं है जिसके लिये रावण और उसके सभासद उठें। यही कारण है कि जानकीजीका दाँव लगाया गया। अङ्गदका दृढ़ विश्वास रामप्रतापमें है। श्रीरामजी सब अधिकार दे चुके हैं—'*बालि-तनय बुधि*………' से '*रिपुसन करेहु*……' तक अधिकारहीका वर्णन है। उसपर भी बाली इसे रघुनाथजीकी गोदमें दे चुके, उनका पुत्र बना चुके, यथा—'*गयउ तुम्हारेहिं कोछे घाली*'—(उ०), दूसरे यह मित्रका पुत्र भी है (क्योंकि तारा अब सुग्रीवकी पत्नी है)—तब इसके अधिकारमें संदेह कैसा?

पंजाबीजी लिखते हैं कि जो यह शङ्का करते हैं कि 'अच्छा उसे अधिकार सही और उसका रामप्रतापमें दृढ़ विश्वास भी ठीक तथा पद नहीं भी टलेगा यह भी माना, तो भी माताका, स्वामीकी पत्नीका, दाँव लगाना तो अत्यन्त अयोग्य ही तो है?' तो इस प्रकार समाधान उनका हो सकता है कि इस अयोग्यताका अङ्गदके अक्षरोंमें निर्वाह भी हो रहा है। उनके शब्द विचारपूर्ण हैं। वे दूसरा अर्थ ले सकते हैं।

इसके विषयमें पाठकजी कहते हैं कि 'बाजी भी लगी है सो माया सीताकी, सीताके प्रतिबिम्बकी। प्रतिबिम्बको कौन और कैसे ले सकता है?' पर यह सब वाग्विलास है और ऐसी व्याख्या करनेसे एक तो रामप्रताप और अङ्गदके दृढ़ विश्वासको बहुत बड़ा धक्का पहुँचता है। दूसरे, अङ्गदादि समस्त वानर भालू तथा लक्ष्मणजी भी यह नहीं जानते कि ये असली सीता नहीं हैं, प्रतिबिम्ब मात्र हैं तब यह भाव कैसे निकल सकता है? इस भावका मूलोच्छेद *'लछिमनहू यह मरम न जाना'* से हो जाता है।*

नं०।प०—रावण चरण हटा देता तो फिर क्या होता? इस शङ्काका समाधान यह है कि—अङ्गदजीने निश्चयमें पद रोपा था न कि संदेहमें। अर्थात् यह निश्चय करके पद रोपा था कि रावण हमारा पैर नहीं हटा सकता। क्यों नहीं हटा सकता? श्रीरामप्रतापसे। वह रामप्रताप कैसा है? ***'तृन ते कुलिस कुलिस तृन करई। तासु दूत पन कहु किमि टरई॥'*** और सीताजीका हार जाना तो पदके टलनेपर है, जब पैर टसकेगा ही नहीं तब हारना कैसे होगा। अतः हारना केवल वचनमात्र है।

अङ्गदको अपने पदके न टलनेमें निश्चय किस भाँति है? जैसे कोई भी मनुष्य निश्चय जानता है कि दो वर्षका बालक मेरा पैर नहीं हटा सकता। अतः वह जैसे उससे कहे कि यदि मेरा पैर हटा दो तो मैं तुम्हें चन्द्रमा ला दूँगा तो न तो उस बालकसे पैर हटेगा और न उस मनुष्यको चन्द्रमा लाना पड़ेगा। ठीक उसी प्रकार अङ्गदका निश्चय था कि रावण मेरा पैर नहीं हटा सकता। न पैर हटेगा न सीताजी हारीमें आयेंगी।

गौड़जी—अङ्गदजीने रावणके वचनोंके एवं सभी आत्मप्रशंसाओंके उत्तर दिये। बलिसे हारा था, परंतु बलि वामनसे हारे थे। सहस्रबाहुसे हारा था, सो उसके मारनेवाले परशुरामजी भगवान्‌से हारे थे। बालिसे हारा था, सो बालि एक बाणसे स्वर्ग सिधारा था। उसने अपनी तारीफ की कि मैंने कैलासको उखाड़कर अपने हाथोंपर ले लिया था। पिनाकको छुआ भी नहीं, नहीं तो वहीं आटे-दालका भाव मालूम हो जाता। यह अभिमान उसे बना हुआ था। अङ्गदने सब बातोंके उत्तर दिये। यही बाकी था। अङ्गदको यह व्यवहारतः दिखाना था कि त्रैलोक्यमें कोई विभूति बिना भगवान्‌के तेजस् वा अंशके नहीं होती, तेरा बल भी उन्हींका है। उनके बलसे तू कैलास उठा सका। उनके विमुख तू मेरे पाँव भी हिला नहीं सकता। यहाँ ***'रामप्रताप सुमिरि'*** कपि कोपा। उसीका प्रताप स्मरण किया जिसने सुग्रीवको बालिसे भिड़नेको ***'पुनि पठवा बल देइ बिसाला'।*** स्मरण करनेका अर्थ है बलके उसी असीम और

---

* शीला—सीताजी और रामजी तेरे मृत्यु वा काल हैं, यथा—'कालराति निसिचर कुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी॥' इनका लंकामें आना मानो तेरा काल आ गया। अर्थात् तेरी मृत्यु टल नहीं सकती। हाँ! यदि तू मेरा चरण टसका दे तो मैं तुझसे यह बात हारता हूँ, मैं तेरी मृत्युरूपी सीताजी और कालरूप रामजीको यहाँसे लौटा दूँगा; क्योंकि तू मेरे पिताका मित्र है इससे तेरे हितकी कहता हूँ कि सीताजी तेरे यहाँ बँधुवा नहीं हैं, वे आदिशक्ति हैं, जब चाहेंगी क्षणभरमें अन्तर्द्धान हो गुप्त हो जायँगी। तू यह न समझ कि तूने उन्हें हरण कर रखा है।

मा० म० कार मयूखमें कहते हैं कि 'ऐसी शठ हठ बस कवन प्रभु यह कही न रंच। सो कपि को फोरे चहै कपि यह मिस खल बंच॥' (१५७) अर्थात् वह शठ है जो ऐसा कहता है कि अङ्गदने जानकीके हार जानेका प्रण किया, श्रीरामचन्द्रने ऐसा किञ्चित् भी नहीं कहा था। रावणने अङ्गदको फोड़फाड़ अपनी ओर करना चाहा। तब अङ्गदने इस बहाने उसको वंचित किया।' [उनके किसीको 'शठ' कह देनेसे, उनका कहा हुआ अर्थ ही प्रमाण है, ऐसा कौन मान लेगा! पाठक स्वयं विचार लेंगे।]

अनन्त खजानेसे रावणसे कोटिगुणा बल मँगवा लेना। जब रावण उसके जमे हुए कदमको हटा न सका तो उसकी डींगका जवाब मिल गया। आगे वह जैसा श्रीहत हुआ मानसकारने वर्णन किया ही है। अङ्गदको सर्वाधिकार प्राप्त था। वह सीताके हरनेकी बात कह सकते थे। वस्तुत: मायाकी सीताके हरणमें या हारे जानेमें कोई हानिकी बात न थी, बड़ी हानि तो यह थी कि इस प्रतिज्ञासे प्रभुका वचन जो विभीषणको दिया गया था कट जाता। श्रीरघुनाथजी इस हानिको कभी भूल नहीं सकते थे। लक्ष्मणजीके मरने, सीताके हरे जानेका उतना दु:ख न होता जितना विभीषणके लंकेश न होनेसे। अङ्गदजीने सरकारकी उस बड़ी प्रतिज्ञाकी बाजी लगायी थी यद्यपि वह उसकी गम्भीरताको न जानते थे। वह तो मायाकी सीतासे बेखबर थे। वह तो उसीकी महत्ता समझते थे। और वास्तविक बात तो यह थी कि अङ्गदके वाग्यन्त्रसे भगवान्‌की बलीयसी माया बोल रही थी। वही सब कुछ करा रही थी। अङ्गद तो निमित्तमात्र था।

☞ सर्ग ४१ में वाल्मीकिजी लिखते हैं कि भगवान्‌ने अङ्गदद्वारा संदेश भेजा था कि '**भ्रष्टश्रीकं गतैश्वर्यं मुमूर्षानष्टचेतनम्**' अर्थात् अब तुम्हारी श्री नष्ट हो गयी, तुम्हारा प्रताप घट गया और तुम्हारा वैभव जाता रहा, अब तुम मरनेवाले हो इससे तुम्हारा ज्ञान भी जाता रहा। वही बात यहाँ मानसकार अङ्गदकी इस प्रतिज्ञासे प्रत्यक्ष दिखला रहे हैं।

प० प० प्र०—*'रोप्यो पाउ पैंज कै बिचारि रघुबीर बलु'* (क०) से मिलान कीजिये। युधिष्ठिरजीने अपनी भार्या द्रौपदीका दाँव लगाया, इसमें तो कुछ आश्चर्य नहीं पर अङ्गदके समान एक रामसेवक, रामदूतने जगदम्बा सीताजीका दाँव लगाया, यह एक बड़ा आश्चर्य है। इससे यह बताया है कि रामदासोंके हृदयमें श्रीरामकृपाप्रतापबलपर कितनी अचल श्रद्धा और निष्ठा रहती है

सुनहु सुभट सब कह दससीसा। पद गहि धरनि पछारहु कीसा॥ १०॥
इंद्रजीत आदिक बलवाना। हरषि उठे जहँ तहँ भट नाना॥ ११॥
झपटहिं करि बल बिपुल उपाई। पद न टरै बैठहिं सिरु नाई॥ १२॥

शब्दार्थ—पछारना (पछाड़ना)। पटक देना, गिरा देना। झपटना=जोरसे किसीपर लपकना, आक्रमण करना।

अर्थ—रावण (अपने योद्धाओंसे) बोला—'सब सुभटो! सुनो, पैर पकड़कर इस वानरको पृथ्वीपर पछाड़ दो'॥ १०॥ इन्द्रजीत आदि अनेक बली योद्धा जहाँ-तहाँ-(जो जहाँ बैठे हैं वहीं-) से प्रसन्न होकर उठे॥ ११॥ बहुत बल और अनेक उपाय करके झपटते हैं पर पैर नहीं टलता तब सिर नीचा करके बैठ जाते हैं॥ १२॥

पं०—*'हरषि उठे'*। हर्षका कारण यह कि अङ्गदके बलको तुच्छ समझा एवं यह कि जिन सीताके निमित्त इतना झगड़ा-टंटा हुआ, नगर जला, निशिचर मारे गये, सेना युद्ध करने आयी, वे अब सहज ही प्राप्त हुई जाती हैं। तीसरे यह कि बातोंमें तो यह हारता न था अब इस प्रणसे बातसे भी हारेगा, बल इसका कितना है। चौथे यह कि अबतक वह स्वामीको बुरा-भरा कहता रहा पर बिना आज्ञा हम कुछ न कर सकते थे, अब आज्ञा हो गयी है। अत: हम अब इसको भूमिपर धर पछाड़ते हैं, सब बदला चुकाये लेते हैं।

नोट—१ *'इन्द्रजीत आदिक'* से जनाया कि कोई बड़ा-से-बड़ा योद्धा न बचा। जिस इन्द्रजित्‌ने इन्द्रको बाँधा एवं हनुमान्‌जीको भी बाँध लाया था, वह भी अङ्गदके सामने यहाँ हार गया तब औरकी क्या कही जाय?—इस तरह लंका भरके सुभटोंकी परीक्षा अङ्गदको सहज ही हो गयी।

नोट—२ *'झपटहिं करि बल बिपुल उपाई..........'*। बल लगाते हैं, बलसे काम नहीं चलता तब अनेक तरहके मल्लयुद्धके दाँव-पेंचोंसे काम लेते हैं, जब कोई उपाय काम नहीं देता तब लज्जित होकर बैठ

जाते हैं। सिर नीचा करके बैठना यह लज्जाकी भी एक मुद्रा है। न अङ्गदकी ओर देखते हैं न रावणकी ओर, कि वे कहीं धिक्कारें न। मुँह दिखाने योग्य अपनेको नहीं समझते। यथा *'नमित सीस सोचहिं सलज सब श्रीहत भए सरीर।'* (बी० १। ८७) (धनुषयज्ञमें राजाओंकी जो दशा हुई थी)।

पुनि उठि झपटहिं सुर आराती। टरै न कीस चरन एहि भाँती॥ १३॥
पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी। मोह बिटप नहि सकहि उपारी॥ १४॥

शब्दार्थ—आराती=शत्रु, यथा—*'सावधान होइ धाए जानि सबल आराति। लागे बरषन राम पर अस्त्र सस्त्र बहु भाँति'॥* कुजोगी=अष्टाङ्गयोगके विरुद्ध साधन करनेवाला, अर्थात् असंयमी वा विषयी। उपारना (सं० उत्पाटन=उखाड़ना।

अर्थ—वे देव-शत्रु (राक्षस) फिर उठकर झपटते हैं। (परंतु) हे सर्पोंके शत्रु गरुड़जी! वानरका चरण उनसे उसी प्रकार नहीं टलता जैसे कुयोगी पुरुष मोहरूपी वृक्षको नहीं उखाड़ सकता॥ १३-१४॥

नोट—१ **'सुर आराती'** का भाव कि जिन्होंने देवताओंको भी जीत लिया था और जो सदा उनको दुःख देनेमें ही तत्पर रहते हैं वे आज बारंबार चरण हटानेका यत्न करते हैं पर एक नहीं चलती। 'पुनि उठि' क्योंकि प्रथम बार उठे थे और हारकर बैठ गये थे, यथा—*'हरषि उठे·········' 'बैठहिं सिर नाई'।*

नोट—२ *'पुरुष कुजोगी·········'* यहाँ कुयोगी पुरुष निशिचर हैं, मोह-विटप अङ्गदका चरण है, मोहविटपका उखाड़ना चरणका टसकाना है। यहाँ उदाहरण अलंकार है।

नोट—३ मिलान कीजिये—*'तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप उठइ न चलहिं लजाइ। मनहुँ पाइ भट बाहुबलु अधिक अधिक गरुआइ॥'* (१। २५०), *'डगै न संभु सरासन कैसें। कामी बचन सती मन जैसें॥ सब नृप भए जोग उपहासी। जैसे बिनु बिराग संन्यासी॥'* (१। २५१। २-३), *'कबिहि अगम जिमि ब्रह्म सुख अह मम मलिन जनेषु।'* (२। २२५)

खर्रा—जो कुयोगी है, योगमें निपुण नहीं है, वह मोहको नहीं हटा सकता। देहमें अहंबुद्धि होना मोहकी बड़ी जड़ है। वे उसको पकड़े हैं। इसीसे नहीं उखाड़ सकते।

प० प० प्र०—*'पुरुष कुजोगी'* इति। योगसे ज्ञान होता है। अतः जिस साधनसे जीव शिवैक्य ज्ञानकी प्राप्ति होती है वह मुख्य योग है। इसका साधन करनेवाला योगी कहलाता है। 'कुयोगी' शब्दकी चर्चा वेदस्तुतिके इस श्लोकमें सुचारुरूपसे की गयी है—**'यदि न समुद्धरन्ति यतयो हृदि कामजटा (वासना) दुरधिगमोऽसतां हृदि गतोऽस्मृतकण्ठमणिः। असुतृपयोगिनामुभयतोऽप्यसुखं भगवन्ननपगतान्तकादनधिरूढपदाद्भवतः॥'** (१०। ८७। ३९) भाव कि जो अन्तरङ्गमें विषयलोलुप हैं पर बाह्यतः राजयोगी वा ज्ञानयोगी बने हुए हैं, उनको न तो आत्मस्वरूपकी उपलब्धि होती है और न मृत्युभयसे छुटकारा मिलता है। दम्भसे स्वधर्म कर्मपथका त्याग करनेसे वे नरकगामी ही होते हैं। सारांश यह कि जो वैराग्यहीन, दम्भी, कर्मपथत्यागी हैं उनको ज्ञानकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

पूर्व संदर्भसे भाव यह है कि जो सुर-आराती है वह योगी हो नहीं सकता। मोहका नाश होनेपर ही ज्ञान होता है और ज्ञानसे मोक्ष। **'परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।'** (गीता) देवताओंका पूजन करनेवालोंके ज्ञानमार्गमें भी सुर विघ्न डालते हैं, तब भला अपने शत्रुओंके ज्ञानमार्गमें वे विघ्न क्यों न उपस्थित करेंगे। इसमें आश्चर्य ही क्या?।—*'इंद्रिन्ह सुरन्ह न ग्यान सोहाई। बिषय भोग पर प्रीति सदाई॥'* (७। ११८)

दो०—कोटिन्ह मेघनाद सम सुभट उठे हरषाइ।
झपटहिं टरै न कपि चरन पुनि बैठहिं सिरु नाइ॥

भूमि न छाँड़त कपि चरन देखत रिपु मद भाग।
कोटि बिघ्न ते संत कर मन जिमि नीति न त्याग॥ ३३॥

अर्थ—मेघनादके समान करोड़ों उत्तम योद्धा प्रसन्न होकर उठे और झपट रहे हैं पर कपिका पैर टलता नहीं, तब फिर सिर नीचा करके बैठ जाते हैं। वानरका चरण पृथ्वीको नहीं छोड़ता। यह देख शत्रुका गर्व दूर हो गया। जैसे करोड़ों विघ्न होनेपर भी संतका मन नीतिको नहीं छोड़ता॥ ३३॥*

☞ *'कोटिन्ह मेघनाद………'*, यह दोहा काशीराजकी प्रतिमें नहीं है। इस दोहेका भाव प्राय: ऊपर चौपाईमें आ गया है। भेद यह है कि वहाँ *'मेघनाद आदिक'* कहा था और यहाँ *'कोटिन्ह मेघनाद सम'*। इससे यह भाव भी निकलता है कि अब बहुत-से मिलकर उठाते हैं तो भी पद टस-से-मस नहीं होता। इसी प्रकार धनुष उठानेमें पहले राजा एक-एक करके लगे थे। जब उनसे न उठ सका, तब दस हजार (बहुत-से) या अपने-अपने सदस्योंसहित सब राजा एक साथ लगे। यह प्रसंग धनुषयज्ञ-प्रसंगसे मिलता है। दोनों जगह दो-दो दृष्टान्त दिये गये हैं—एक निवृत्तिमार्गका, दूसरा प्रवृत्तिका। क्योंकि यहाँ भी सीताजी बाजीमें हैं और वहाँ भी।

नोट—*'भूमि न छाँड़त………'* इसके दो प्रकार अर्थ किये गये हैं। दूसरा अर्थ यह है कि 'पृथ्वी पैरको नहीं छोड़ती', यह समझकर कि कहीं मेरी सुता भूमिजा श्रीसीताजी हर न जायँ (पु० रा० कु०)। पर यहाँ **'छाँड़त'** पुँल्लिंग है, 'छाँड़ति' नहीं है। अत: मानसकारका निश्चित अर्थ कपिचरणको ही 'छाँड़त' का कर्ता बनाता है। परंतु आधुनिक कवि छाँड़तको उभयलिंगोंमें प्रयोग करनेमें नहीं हिचकते। इस दृष्टिसे *'भूमि'* शब्द भी कर्ता माना जा सकता है।

ऊपर दिये हुए अर्थके अनुसार अङ्गद, संत, चरण, मन, भूमि, नीति और निशिचर विघ्न हुए। विघ्न, संत और मन पुँल्लिंग हैं, नीति स्त्रीलिंग है। वैसे ही दार्ष्टान्तमें सुभट, अङ्गद और चरण पुँल्लिंग तथा भूमि स्त्रीलिंग है *'भूमि न छाँड़त ……'* पर (क० लं० १५, १६) देखने योग्य है। वहाँ कवि लिखते हैं कि ऐसा जान पड़ता है मानो ब्रह्माने पृथ्वीके साथ ही पैरको रचा है। यथा—*'अति कोप सों रोप्यो है पाँव सभा, सब लंक ससंकित सोर मचा। तमके घननाद से बीर प्रचारि कै, हारि निसाचर सैन पचा॥ न टरै पग मेरुहु ते गरु भो सो मनो महि संग बिरंचि रचा। तुलसी सब सूर सराहत हैं, जगमें बलसालि है बालि बचा॥'* (क० १५), *'रोप्यो पाँउ पैज कै बिचारि रघुबीर बल, लागे भट सिमिटि न नेकु टसकतु है। तज्यो धीर धरनी धरनीधर धसकत, धराधर धीर भार सहि न सकतु है॥ महाबली बालि को दबत दलकति भूमि तुलसी उछरि सिंधु मेरु मसकतु है। कमठ कठिन पीठि घट्ठा पर्यो मंदरको आयो सोइ काम पै करेजो कसकतु है॥'* (१६)

पु० रा० कु०—यहाँ कविने दो दृष्टान्त दिये हैं। एक तो कुयोगी पुरुषके मोहको न हटा सकनेका और दूसरा संतमनका विघ्नोंके उपस्थित होनेपर भी नीति न त्याग करनेका। दो दृष्टान्त देकर ग्रन्थकारने दोनों ओरका बल कथन किया है।

रा० प्र०—माया-मोहादि ही अनन्त विघ्न हैं। नीति अर्थात् जिस धर्मपर वे आरूढ़ हैं।

गौड़जी—यहाँ *'कोटिन्ह'* शब्द निश्चित संख्यावाची नहीं है। इससे तात्पर्य है केवल 'बहुत बड़ी संख्या' वा 'गणनातीत'।

कपि बल देखि सकल हिय हारे। उठा आपु कपि के† परचारे॥ १॥
गहत चरन कह बालिकुमारा। मम पद गहे न तोर उबारा॥ २॥
गहसि न रामचरन सठ जाई। सुनत फिरा मन अति सकुचाई॥ ३॥

---

* 'निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु लक्ष्मी: समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्। अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा न्यायात्पथ: प्रविचलन्ति पदं न धीरा:॥' (भर्तृहरिशतके) अर्थात् नीति-निपुण लोग चाहे निन्दा करें चाहें प्रशंसा, लक्ष्मी रहें या जावें, मरण आज हो या युगान्तमें, पर धीर पुरुषोंका पैर न्यायपथसे कभी नहीं डिगता।

† जुवराज प्रचारे—(का०, पं०)। अर्थ—'युवराजको ललकारकर'।

शब्दार्थ—उबारा=बचाव, छुटकारा, यथा—'*तुम हटकहु जौं चहहु उबारा।*' (१। २७४) परचारा (सं० प्रचारण)=ललकारना

अर्थ—कपिका बल देखकर सब हृदयसे हार गये तब श्रीअंगदजीके ललकारनेपर वह स्वयं उठा॥ १॥ चरण पकड़ते समय बालिपुत्र अङ्गद बोले—'मेरा चरण पकड़नेसे तेरा बचाव न होगा॥ २॥ अरे शठ! तू श्रीरामजीके चरण जाकर क्यों नहीं पकड़ता?' यह सुनकर वह अत्यन्त सकुचाकर लौट पड़ा॥ ३॥

नोट—१ अङ्गदने प्रथम इसीको ललकारा था, यथा—'*जौं मम चरन सकसि सठ टारी।*' पर उसने अङ्गदके बलका निरादर करनेके लिये सुभटोंको आज्ञा दी थी। जब उसके सब विख्यात योद्धा हार गये तब फिर अङ्गदने उसको ललकारा कि अब जाता हूँ; तुझमें कुछ साहस और बल हो तो उठ, यह ललकार वह न सह सका और पैर उठानेके लिये पास आया। क्योंकि उनका आशय तो यही रहा है कि इस प्रकार बल और प्रताप सबको विदित हो जायगा और उसके उठनेपर उसको युक्तिसे लज्जित कर चुप करूँगा * तब फिर हितोपदेश करनेसे चाहे मान जाय। वा, इसने मेरा अपमान किया, मैं इसका अपमान इस प्रकार करूँगा। (खर्रा)

नोट—२ '*गहत चरन*' से जनाया कि पकड़ने लगा वैसे ही अङ्गदने ये वचन कहे पर पैर हटाया नहीं।

नोट—३ यहाँ लोगोंने शंका की है कि 'स्वयं रावणको ललकारा फिर पैर क्यों न उठाने दिया? अङ्गदके इस कर्त्तव्यसे उनकी निर्बलता सिद्ध होती है और रामप्रतापमें हीनता आती है?'—(पं०)। और इसका समाधान यों किया है कि—

पु० रा० कु०, रा० प०, बं० पा०—अङ्गदको पूर्ण विश्वास है कि चरण उससे न उठेगा; क्योंकि उठ जानेसे सीताजीकी बाजी वह जीत लेगा। दूसरे, मेरी हीनता होगी जो कदापि प्रभु न होने देंगे। और, उसके न उठा सकनेपर आगे राम-रावण-युद्धकी शोभा जाती रहेगी और रघुनाथजीकी कीर्ति यथार्थ न विस्तृत होगी, वरन् उनका अपकर्ष प्रकट होगा, सब यही कहेंगे कि रावणमें बल ही क्या था? वह तो एक वानरसे ही हार गया था। श्रीरामचन्द्रजीने उसे मारा तो क्या बड़ी बहादुरी की? इससे रामयशमें बट्टा लगेगा, उनकी लघुता होती है। अतएव युक्तिसे लज्जित किया जिसमें वह स्वयं ही लौट जाय, पैर न छुए और ऐसा हुआ भी।

पं०, मा० म०—(क) अङ्गदने उसे बालीका मित्र समझ पिताके समान जाना एवं यह विचार किया कि वह उच्च कुलका ब्राह्मण है तथा रघुनाथजीका साकेतका 'प्रतापी' सखा है, इसे चरण छुलाना उचित नहीं। (ख) 'सज्जन हठ-अहङ्कारसे रहित होते हैं। अङ्गदने सोचा कि सेनाका बल तो देख ही लिया अब अकेला यह रह गया। मुझे भी अब अहङ्कार करना योग्य नहीं। अब हठ करनेसे मेरा अहङ्कार सूचित होगा।' (मा० म०) पुनः (ग)—अङ्गदने सोचा कि मेरा चरण न उठा सकनेपर कदाचित् इसने कहा कि मैंने हार मान ली, अब सीता लो और मेरा अपराध क्षमा कराओ, अभयदान दिलाओ। तब यदि मैंने इसका कहा न माना तो मिथ्यावादी कहलाऊँगा और यदि इसको श्रीरामजीकी शरणमें ले जाऊँगा तो श्रीरामजी तो इसके वधकी प्रतिज्ञा कर चुके हैं और विभीषणको लंकेश बना चुके; उनकी प्रतिज्ञा भङ्ग होती है। अतएव युक्तिसे उसको निवारण किया।

पं०—'*मम पद गहे न तोर उबारा।*' यह युक्ति है। भाव यह कि सेना सब मेरे मुकाबिलेमें निर्बल सिद्ध हुई, यह जानकर तू मेरे चरणोंपर पड़ने आया है, मेरे चरणको छूकर चाहता है कि मैं श्रीरामजीके कोपसे तेरी रक्षा करूँ, सो यह तेरी भूल है। मैं तेरी रक्षा कब कर सकता हूँ?

शीला—'*गहसि न राम चरन सठ जाई।*' भाव यह कि तेरे बचनेका एकमात्र उपाय यही है कि दीनतापूर्वक प्रभुकी शरण होकर कह कि मैं हार गया, शरण हूँ, तब मैं तेरी सिफारिश कर सकूँगा और

* व्याजोक्ति अलंकार है।

तुझ हारे हुए को छुड़ा दूँगा यह कहकर कि इसने हमारा पैर नहीं छुआ पर यदि तू हमारा पैर छूता है और उसे उठा न सकेगा तब हमें कोई अधिकार तुझे छोड़ देनेका न रहेगा; क्योंकि तेरे हारनेपर तुझसहित लङ्का मेरे स्वामीकी हो जायगी। यदि तेरा पक्ष मैं लूँगा तो सब कहेंगे कि अङ्गद श्रीरामजीसे वैरभाव रखता है और तब मेरे ही प्राण न बच सकेंगे।

नं० प०—अङ्गदजीने न तो पैर हटाया और न रावणको चरण उठानेसे रोका ही। वे पैर रोपे ही रहे और रावणको केवल बातसे लज्जित कर दिया—*'मम पद गहे न तोर उबारा',* श्रीरामजीका चरण पकड़नेसे ही तेरा उबार होगा। अङ्गदके इतने ही वाक्यसे रावण लज्जित होकर लौट गया। यदि रावण लज्जा छोड़कर चरण उठाता तो उससे चरण न उठता; कारण कि अङ्गदजीके हृदयमें श्रीरामजीका प्रताप है कि श्रीरामजी तृणको कुलिश और कुलिशको तृण कर सकते हैं।

वि० त्रि०—*'गहत चरन.........उबारा'* इति। रावणने अङ्गदजीका चरण स्पर्शमात्र कर पाया, पकड़ नहीं पाया था, तबतक अङ्गदजी बोल उठे कि मेरे चरण पकड़नेपर भी तेरा उबार नहीं होगा। जो तू समझता है कि अङ्गदका चरण मैं हटा दूँगा और रामजी फिर जायँगे, सो होना नहीं है। तू सबको यह दिखाना चाहता है कि मुझे रामका डर नहीं है, सो तेरा दम्भ है। रामजीसे भीतर-ही-भीतर इतना डरता है कि मुझ दूतके इस कहनेपर कि *'फिरैं राम सीता मैं हारी'* इतना बड़ा सम्राट् होकर राजसिंहासन छोड़कर मेरा चरण पकड़ने आया है। यदि तुझे प्रभुका डर न होता तो तू कहता कि 'राम फिरें चाहे न फिरें, मैं सीता नहीं देता। तुझ दूतका मैं पैर पकड़ने जाऊँगा?' यह हो नहीं सकता। अपना प्राण बचानेके लिये तू मेरा पैर पकड़ने आया। मुझे इतना ही सबको दिखलाना था। जब तुझे रामजीसे इतना भय है तो तू उनका चरण जाकर क्यों नहीं पकड़ता।

यहाँ अङ्गदजीको रत्तीभर भय नहीं है, क्योंकि उन्होंने अपना पैर खींचा नहीं, पाँव रोपे हुए ही बात करते थे। रावणको पूरा अवसर था कि अङ्गदकी बात न सुनकर उनका पैर उठा लेता पर उसका साहस टूटा हुआ था, उसने देख लिया था कि मेघनादके ऐसे अनेक योद्धा हार गये हैं, पैर हिलता तक नहीं, वह तो अङ्गदजीके ललकारनेपर उठा था। अङ्गदजीकी बात सुनकर उसे अपनी चूकपर बड़ी लज्जा हुई कि वह क्यों पैर हटानेके लिये उठा। वह लौटकर सिंहासनपर सर झुकाकर बैठा, फिर उसके पश्चात् उसके मुखसे एक शब्द न निकला, अङ्गदने रावणका मुख बंद कर दिया। इस बतकहीमें उनकी पूरी विजय हुई।

अङ्गदजी तो सिरेके वीर थे। केनोपनिषद्में कथा आयी है कि यक्षरूप ब्रह्मने एक तृण रख दिया; उसे न अग्नि जला सके, न वायु हिला सके। **'तस्मै तृणं निदधावेतदादत्स्वेति तदुप प्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाकादातुं स ततः**.........॥' (३। २३। १०) सर्वत्र ब्रह्मका विजय है। उनके दूतका पैर कैसे हिल सकता है। अङ्गदको भय होनेका कोई कारण नहीं है। यदि उन्हें कुछ भी भय होता तो क्या वे इतना बड़ा प्रण करते, यथा—*'तेहि समाज कियो कठिन पन जिन तौल्यो कैलास। कै साहिब महिमा कहौं कै सेवक बिस्वास॥'*

भएउ तेज हत श्री सब गई। मध्य दिवस जिमि ससि सोहई॥ ४॥
सिंहासन बैठेउ सिर नाई। मानहु संपति सकल गँवाई॥ ५॥

शब्दार्थ—**श्री**=प्रभा, कान्ति, शोभा।

अर्थ—उसका तेज नष्ट हो गया, उसकी सब शोभा जाती रही, जैसे मध्याह्नके समय (दोपहरमें) वा दिनमें चन्द्रमाकी शोभा होती है॥ ४॥ सिर नीचा करके सिंहासनपर जाकर बैठ गया। ऐसा देख पड़ता है मानो सारी सम्पत्ति खो बैठा है।

नोट—१ *'भएउ तेजहत श्री सब गई।'* इति। (क) कार्य सिद्ध न होनेसे लौटना पड़ा, इससे सब राज्यश्री नष्ट हो गयी, तेज न रहा अर्थात् मुख-श्री नष्ट हो गयी। *'सोहई'* विपर्यय अर्थमें है, यथा—*'उदय केतु सम हित सब ही के'* (बं० पा०)। (ख) यहाँ रावणको शोभा-तेजहीन कहकर, इसकी विशेष बातसे समता दिखाना कि जैसे दिनमें तेजरहित चन्द्र अशोभित होता है, उदाहरण अलंकार है। *'सोहई'* शब्द

अपने वाच्यार्थको छोड़कर 'अशोभन' व्यंजित करता है, यह '**अर्थान्तरसंक्रमितवाच्यध्वनि**' है। (वीर) ☞ मिलान कीजिये—'*श्री हत भए हारि हिय राजा। बैठे निज निज जाइ समाजा॥*' (१। २५१। ५), '*श्री हत भए भूप धनु टूटे। जैसे दिवस दीप छबि छूटे॥*' (१। २६२। ५)

धनुषयज्ञमें राजाओंको दीपक कहा और यहाँ रावणको चन्द्रमा। कारण कि मनुष्य राजा थे और रावण दिग्विजयी राजा महान् प्रतापी है। श्रीरामजीके सम्बन्धसे इसको 'ससि' अन्यत्र भी कहा है, यथा—'*चले जहाँ रावन ससि राहू।*'

नोट—२ '*सिंहासन बैठेउ सिर नाई।* ....' इति। (क) जैसे सब सभासद हारकर लज्जित हो सिर नीचा करके अपने-अपने आसनपर जा बैठे थे वैसा ही हाल इसका हुआ। (ख) '*मानहु संपति सकल गँवाई*'। '*गँवाई*' का भाव कि अपनी बेवकूफीसे खो बैठा है। '*सकल संपत्ति*' अर्थात् दिग्विजयकी कीर्ति, वीरता, बल, प्रताप, तेज, श्री इत्यादि जो जन्मभरमें तपस्या और वरद्वारा प्राप्त की थी। भाव यह कि वह बहुत चिन्ताग्रस्त है, पछता रहा है कि मैंने बड़ी मूर्खता की, न उठकर जाता तो अच्छा था। मिलान कीजिये—'*फिरेउ बनिक जिमि मूर गँवाई।*' (२। ९९। ८), '*मींजि हाथ सिर धुनि पछिताई। मनहुँ कृपिन धनरासि गँवाई॥ बिरद बाँधि बरबीरु कहाई। चलेउ समर जनु सुभट पराई॥*' (अं० १४४। ७-८)

पु० रा० कु०—यहाँ अङ्गद दोपहरके सूर्य हैं और रावण चन्द्रमा है।

धनुषयज्ञ और अङ्गदपदरोपण-प्रसङ्गोंका मिलान—

धनुषयज्ञ	अङ्गदचरण
१- *पन बिदेह कर कहहिं हम भुजा उठाइ बिसाल*	*समुझि रामप्रताप कपि कोपा। सभा माँझ पन करि पद रोपा॥*
२- *राज समाज आज जोड़ तोरा*	*जौं मम चरन सकसि सठ टारी*
३- *त्रिभुवन जय समेत बैदेही। बिनहिं बिचार बरै हठि तेही॥*	*फिरहिं राम सीता मैं हारी*
४- *सुनि पन सकल भूप अभिलाषे*	*सुनहु सुभट सब कह दससीसा। पद गहि धरनि पछारहु कीसा॥*
५- *परिकर बाँधि उठे अकुलाई। चले इष्ट देवन्ह सिरु नाई॥*	*इंद्रजीत आदिक बलवाना। हरषि उठे जहँ तहँ भट नाना॥*

☞ यहाँ अकुलाना आदि है और वहाँ हर्ष; क्योंकि राजा सुन चुके हैं कि रावणादि भी नहीं उठा सके और वे तब वानरकी प्रतिज्ञाको तुच्छ समझते हैं।

६- *तमकि ताकि तकि सिवधनु धरहीं*	*झपटहिं करि बल बिपुल उपाई*
७- *उठइ न कोटि भाँति बल करहीं*	*पद न टरइ बैठहिं सिरु नाई*
८- *तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप*	*पुनि उठि झपटहिं सुर आराती*
९- *उठइ न चलहिं लजाइ*	*पुनि बैठहिं सिर नाइ*
१०-*भूप सहसदस एकहि बारा*	*कोटिन्ह मेघनाद सम सुभट उठे हरषाइ*
११-*लगे उठावन टरइ न टारा*	*झपटहिं टरइ न कपि चरन*
१२-*हारे सकल भूप करि दापा*	*रिपु बल देखि सकल हिय हारे*
१३-*मनहुँ पाइ भट बाहुबल* ....*गरुआइ*	*भूमि न छाँड़त कपि चरन*
१४-*डगइ न संभु सरासन कैसे*	*टरइ न कीस चरन एहि भाँती*
१५-*कामी बचन सती मन जैसे*	*पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी।*
(दोनों जगह प्रवृत्तिमार्गका दृष्टान्त)	*मोह बिटप नहिं सकहिं उपारी*
१६-*सब नृप भए जोग उपहासी*	*देखत रिपुमद भाग*
१७-*जैसे बिनु बिराग संन्यासी* (दोनों निवृत्तिमार्गके दृष्टान्त)	*कोटि बिघ्न ते संत कर मन जिमि नीति न त्याग*
१८-*भट मानी अतिसय मन माषे*	*उठा आपु कपि के परचारे*
१९-*कीरति बिजय बीरता भारी। चले चाप कर सरबस हारी॥*	*मानहु संपति सकल गँवाई*

धनुषयज्ञ	अङ्गदचरण
२०-*श्रीहत भए हारि हिय राजा*	*भयउ तेजहत श्री सब गई*
२१-*बैठे निज निज जाइ समाजा*	*सिंहासन बैठेउ सिरु नाई*
रावणकी दोनों जगह हार हुई,	यहाँ *'सुनत फिरा मन अति सकुचाई।'*

और धनुषयज्ञमें *'रावन बान छुआ नहिं चापा'*

जगदातमा प्रानपति रामा। तासु बिमुख किमि लह बिश्रामा॥ ६॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी जगन्मात्रकी आत्मा हैं और प्राणोंके स्वामी हैं। उनसे विमुख (प्रतिकूल) होनेवाला कैसे विश्राम (सुख, शान्ति, चैन) पा सकता है?॥ ६॥

नोट-१ **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** प्रभु जगदात्मा हैं, इनसे द्रोह करना जीवमात्रसे द्रोह करना है। ऐसेकी सम्पत्ति, श्री आदि कैसे रह सकती है? यथा—*'ताहि कि संपति सगुन सुभ सपनेहु मन विश्राम। भूतद्रोहरत मोहबस राम बिमुख रतकाम॥'* (७) उसकी दुर्दशा उचित ही है।

पं०—ज्ञानदृष्टिसे सर्व जगत् प्रभुका ही आत्मा है, यह सब वे आप ही हैं। भक्तदृष्टिसे वे सबके प्राणनाथ हैं। अङ्गदका पैर ऐसे प्रतापी विख्यात वीरसे क्यों न उठा? इस शङ्काके उत्पन्न होनेके पूर्व ही शंकरजी उसका निवारण स्वयं ही किये देते हैं।

पु० रा० कु०—सारी सम्पत्ति मानो गँवा बैठा है। उसका तेज गया, श्री-शोभा गयी और सम्पत्ति गयी, यह कहकर अब इसीको और पुष्ट करते हैं कि इनको तो जाना ही चाहिये था, इनसे रहित होनेमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि यह तो उनका द्रोही है जो जगदात्मा हैं। अर्थात् सर्वत्र सबमें व्यापक हैं, संसारके सभी भोग-पदार्थोंमें प्राप्त हैं, सबके प्राणोंके स्वामी हैं, यथा—*'प्रान प्रानके जीवके जिव सुखके सुख राम',* और राम हैं अर्थात् सब जगत्में रमण कर रहे हैं।

नोट—२ यहाँ विमुखकी गति और विमुखताका फल दिखाया और आगे सन्मुखताका फल कहते हैं। विमुखको विश्राम नहीं मिलता—

कैकेयी १ *राम बिमुख थल नरक न लहहीं। अवनि जमहि जाचति कैकेई।*
बिधि न मीच महि बीचु न देई। ....कुटिल रानि पछतानि अघाई।
जयंत २ *धरि निज रूप गएउ पितु पाहीं। राम बिमुख राखा तेहि नाहीं॥*
सब जग ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता॥ (अ० २। ८)
भुशुण्डि ३ *प्रथम मोह मोहि बहुत बिगोवा। राम बिमुख सुख कबहुँ न सोवा॥*
रावण ४ *'करत बिचार भएउ भिनुसारा॥'* (४८), *'सभा गएउ उठि होत बिहाना॥'* (३७। १)
'एहि बिधि जलपत भयेउ बिहाना।' (७०), 'सेतुबंध समयसे विश्राम न मिला।'

मा० म०—शिवजी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी जगत्के आत्मा हैं और मेरे प्राणपति हैं तथा मेरे मन-मानसके हंस हैं। अत: उनसे विमुख होनेसे मेरी भी यही इच्छा थी कि खल रावणका अभिमान नष्ट हो।

उमा राम की भृकुटि बिलासा। होइ बिस्व पुनि पावइ नासा॥ ७॥
तृन ते कुलिस कुलिस तृन करई। तासु दूतपन कहु किमि टरई॥ ८॥

अर्थ—हे उमा! श्रीरामचन्द्रजीके भ्रूविलास (भौंके फिरने वा इशारे मात्र) से संसार उत्पन्न होता है और फिर नाशको (भी) प्राप्त होता है॥ ७॥ जो तिनकेको वज्र और वज्रको तिनका कर देते हैं, कहो तो (भला) उनके दूतका प्रण कैसे टल सकता है?

नोट—१ *'उमा'* सम्बोधन देकर ये वाक्य शिवजीके जनाये। *'होइ बिस्व'* से उत्पत्ति और *'पावइ नासा'* से संहार वा लय। दोनों भ्रू-विलाससे होते हैं, यथा—*'भृकुटि-बिलास सृष्टि लय होई'।*

नोट—२ *'तृन ते कुलिस.........'।* वानरोंको रावण निसिचरोंका आहार कहता है। अतएव अङ्गद जो तृणवत् थे वे वज्रवत् हो गये। वज्रपात होनेसे पर्वत टूट जाते हैं, यहाँ रावण सिंहासनसे गिरते बचा, सभासद सब गिर

पड़े और सब निशिचर हार गये। किसीसे पैर न टसका। रावण और राक्षस वज्रवत् थे, सो तृणवत् हो गये कि वानरके हाथके थपेड़ेसे सब ऐसे गिर पड़े जैसे वायुके झोंकेसे तिनका। यथा—*'चले भागि भय मारुत ग्रसे'*। देखिये, सुग्रीव जो बालीके कारण चिन्तातुर रहता था, उसका घूँसा न सह सकता था उसका शरीर वज्रवत् कर दिया, यथा—*'तन भा कुलिस गई सब पीरा'*— (कि०)। इसी प्रकार विभीषण रावणसे सम्मुख लड़ा जो कभी सिर भी न उठाता था, यथा—*'सो अब भिरत काल ज्यों श्रीरघुबीर प्रभाउ॥'* (९३) *'रघुबीर बल दर्पित बिभीषन घालि नहिं ताकहँ गनै'*। वैसे ही यहाँ अङ्गद रामबलके भरोसे हैं। ऐसा ही राम-रावण-युद्धके समय वानरोंने कहा है—*'जय राम जो तृन ते कुलिस कर कुलिस ते कर तृन सही॥'* (छं० ८०)

नोट—३ दूतका प्रण नहीं टल सकता, इसका समर्थन इस युक्तिसे करना कि यह उनका दूत है जिनका सामर्थ्य यह है कि भ्रू-विलाससे ही उद्भव और संहार कर सकते हैं और तृणको वज्र और वज्रको तृण करते हैं तब आश्चर्य क्या—यह काव्यलिंग अलंकार है। ऐसे ही सुं० २६ (७) में कहा है, यथा—*'ताकर दूत अनल जेहि सिरिजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा॥'*

पु० रा० कु०—श्रीरामजीकी भृकुटिके चलनेसे माया उत्पन्न होती है और उत्पत्ति, पालन एवं संहार करती है। भाव यह कि पैर न उठनेमें कपिका कुछ बल न समझो, इसमें अङ्गदका कुछ पुरुषार्थ नहीं है, यह एकमात्र रामकी महिमा है; क्योंकि वे तृणसे कुलिश और कुलिशसे तृण बना देनेवाले हैं, ये दोनों सत्त्व श्रीरामजीके ही हैं।—(रा० प्र०—*'भृकुटि विलास'*। भाव कि जो माया अनेक ब्रह्माण्डोंको रचती है वह भी प्रभुकी भौंह तकती रहती है, जैसा रुख देखती है वैसा ही करती है।)

पुनि कपि कही नीति बिधि नाना। मान न ताहि कालु निअराना॥ ९ ॥
रिपु मद मथि प्रभु सुजस सुनायो। यह कहि चल्यो बालि नृप जायो॥ १०॥

शब्दार्थ—जायो=उत्पन्न वा पैदा हुआ।=पुत्र।

अर्थ—फिर कपि-(अङ्गद-) ने अनेकों प्रकारकी नीति कही; पर उसका काल निकट आ गया, इससे उसने उसे न माना॥ ९॥ शत्रुके गर्वको मथकर (चूरकर, नष्टकर) प्रभुका सुयश सुनाया और राजा बालीका पुत्र यह कहकर चल दिया॥ १०॥

नोट—१ *'पुनि कपि कही.........'* इति। (क) *'पुनि'* अर्थात् रावणका मान मथनेके पश्चात्। अथवा, पूर्व भी श्रीरामजीको परमात्मा बताते हुए तथा उसके वाक्योंका प्रत्युत्तर देते हुए कुछ-कुछ नीति भी कही थी। यथा—*'प्रीति बिरोध समान सन करिअ नीति असि आहि॥.........॥'* (२३)। इत्यादि। अब फिर कही यह समझकर कि इसका मान मर्दित हो गया है, हनुमान्‌जीका पुरुषार्थ पूर्व देख ही चुका है, अब दूसरे दूतका बल भी देख लिया और लज्जित है, सम्भव है कि अब समझानेसे मान जाय। (ख) *'नीति बिधि नाना'* पदसे जो नीति हनुमान्‌जी, मन्दोदरी और विभीषणादिने कही थी उन सबको यहाँ सूचित किया, यथा—*'जदपि कही कपि अति हित बानी। भगति बिबेक बिरति नय सानी॥'* (सुं० २४। १), *'रहसि जोरि कर पतिपद लागी। बोली बचन नीतिरस पागी॥'* (सुं० ३६। ५), *'बुध पुरान श्रुति संमत बानी। कही बिभीषन नीति बखानी॥'* (सुं० ४१। १), *'बिधि नाना'* से जनाया कि पूर्व कुछ ही कही थी, अबकी बहुत कही।

नोट—२ *'मान न ताहि कालु निअराना'* इति। श्रीरामजी रावणके कालरूप हैं, सो वे कालरूप राम अयोध्याजीसे चलकर रावणको मारनेके लिये लङ्कामें आ गये, सुबेल पर्वतपर बैठे हैं। [मिलान कीजिये *'सीता देइ मिलहु न त आवा काल तुम्हार।'* (सुं० ५२), *'कालरूप खल बन दहन गुनागार घनबोध॥'* (४७), *'कालरूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता॥'* (७। ४१)] *'मान न'* अर्थात् इसीसे वह नहीं मानता, यथा—*'सुनु सुत भयउ काल बस रावन। सो कि मान अब परम सिखावन॥'* (६३। ७) क्योंकि बुद्धिके प्रेरक श्रीरामजी ही हैं। (बं० पा०) पुनः 'काल निकट आ गया' का भाव कि अब इसका मरणकाल आ गया, शीघ्र ही इसे रामचन्द्रजी मारेंगे यथा—*'तेहि अपने मन अस अनुमाना। बध्यो चहत एहि कृपानिधाना॥'* (४८। ४)

२—'*बालि नृप जायो*'।—दोहा १७ तथा १८ में इसके भाव देखिये। पुनः भाव कि वह राजकुमार है, इससे जो कुछ वह कह रहा है उसके करनेके लिये वह स्वाभाविक ही निपुण है।

नोट—३ '*रिपु मद मथि*' यह मथना वैसा ही है जैसे गजगणके बीचमें सिंह पहुँचकर उनका मद-मन्थन करे। इस प्रकरणके प्रारम्भमें अङ्गदको सभामें पहुँचते समय पञ्चानन कहा है यथा—'***जथा मत्तगज जूथ महँ पंचानन चलि जाइ॥***' (१९) ये शब्द सभामें पहुँचते समय कविके हैं और '*रिपु मद मथि*.........' ये अन्तिम शब्द हैं। यह सभाका उपक्रम और उपसंहार है। अतएव यहाँ गजगणका मद मन्थन हुआ। यही बात मंदोदरी कहेगी—'***सभा माँझ जेहि तव बल मथा। करि बरूथ महुँ मृगपति जथा॥***' (३६। ३) श्रीरघुनाथजीने जब बालिपुत्रको बुलाकर दूत बनकर जानेको कहा और वह यह कहकर हर्षित हुए कि आपने मुझे आदर दिया। उस समय 'युवराज' पदका प्रयोग कविने किया था, यथा—'***अस बिचारि जुवराज तनु पुलकित हरषित हियउ॥***' (१७) यह कहकर तब अङ्गद चले। वैसे ही यहाँ उपसंहारमें वचन कहकर चलते समय 'बालि नृप जायो' पदका प्रयोग किया गया।

'*रिपु मद मथि*' के भाव और लोगोंने ये कहे हैं—(क) जैसे मथानीसे दही मथकर मक्खन निकाला जाता है, वैसे ही इसका मद निकाल दिया। (खर्रा) (ख) रावण समुद्र है, उसे अङ्गदने अपने बलरूपी मन्दराचलसे मथा। (मा० म०, रा० प्र०)

नोट—४ '*प्रभु सुजस सुनायो*'। हनुमान्‌जीने विभीषणजीसे श्रीरामसुयश कहा था, जिसका परिचय विभीषणजीके इन शब्दोंमें है—'***श्रवन सुजस सुनि आयउँ प्रभु भंजन भवभीर।***' (सुं० ४५) प्रभुकी सेवकपर अत्यन्त प्रीति और कृपा रहती है, चाहे सेवक कितना ही नीच और अधम क्यों न हो। यह सुयश हनुमान्‌जीने कहा था और भी प्रभुके शरणपालकता आदि गुण कहे थे। वैसे ही यहाँ अङ्गदने रावणसे कहा। पुनः श्रीरामजीका पराक्रम कि उनके बाणसे त्रिदेव भी रक्षा नहीं कर सकते। यथा—'***सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी। बिमुख राम त्राता नहिं कोपी॥ संकर सहस बिष्नु अज तोही। सकहिं न राखि राम कर द्रोही॥***' (५। २३। ७-८) तथा उनके अद्‌भुत कार्य (जैसे कि शिव-धनुषका तोड़ना, विराध, कबन्ध, खर-दूषण-त्रिशिरा और बालिका बध, समुद्रबन्धन आदि) भी 'सुयश' हैं। देखिये, अङ्गदके '***सहसबाहुभुज गहन अपारा। दहन अनल सम जासु कुठारा॥.........तासु गर्ब जेहि देखत भागा।***' (२६। २—४) तथा '***जौं खल भएसि राम कर द्रोही। ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही***' से लेकर '*तब कि चलिहि अस गाल तुम्हारा।*' (२४। २—७) तक जो अङ्गदने कहा है उसे सुनकर रावणने कहा है कि '*भूप सुजस खल मोहि सुनावा*'। अतः इस तरहके वचन '**सुयश**' हैं।

हनु० ना० अङ्क ८ में के अङ्गदके अन्तिम वचनका भाव भी इस पदमें आ गया।

'रे रे राक्षसराजमुञ्च सहसा देवीमिमां मैथिलीं मिथ्यां किं निजपौरुषस्य घटनाप्रागल्भ्यमारभ्यते।
एनां पश्यसि किं न किन्नरगणैरुद्गीतदोर्विक्रमां सेनां वानरभर्तुरुद्भटभुजस्तम्भाग्र्यभीमां पुरः।' (५८)

अर्थात् अरे राक्षसराज! इन मैथिली देवीको तू शीघ्र छोड़ दे और क्या वृथा तू अपने पुरुषार्थकी महिमाको प्रारम्भ करता है, किन्नरगणोंसे गाये हुए भुजाओंके पराक्रमवाली, वानरराज सुग्रीवके योधाओंकी भुजाओंके ताड़नसे भयानक इस वानरी सेनाको क्या तू अपने आगे नहीं देखता है? '**इति लंकाभटमुत्कटवाक्यैरधिक्षिप्य लंकामातङ्कयन्नङ्गदो निष्क्रान्तः।**' अर्थात् इस प्रकार लङ्काके भटोंको भयानक वाक्योंसे ललकारकर, लङ्कापुरीको भय देते हुए अङ्गदजी निकल गये।

नोट—५ '*बालि नृप जायो*' इति। इसके भाव पूर्व '***दूत पठाइय बालिकुमारा।***' (१७। ४), '***बालि तनय बुधि बल गुन धामा।***' (१७। ६) और '***अस बिचारि जुबराज तन***.........।' (१७) में आ चुके हैं। मयङ्ककारका मत है कि '***बालि नृप जायो।***' से जनाया कि अङ्गद दूतत्वसे रहित हैं।

हतौं न खेत खेलाइ खेलाई। तोहि अबहिं का करौं बड़ाई॥ ११॥

शब्दार्थ—खेत=रणभूमि, यथा—'***हतिहौं खेत खेलाइ खेलाई। तोहि अबहिं का करौ बड़ाई॥***' (जायसी), '***कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाए।***' (अ० १९२) '*खेलाइ खेलाई*' मुहावरा है=दौड़ा-दौड़ाकर, धीरे-धीरे, साँसतिसे।

अर्थ—खेल खिला-खिलाकर संग्रामभूमिमें जबतक तुझे मैं न मारूँ तबतक अभी क्या बड़ाई करूँ॥ ११॥

नोट—१ वीर करनी करके दिखाते हैं, बिना कर्म किये अपनी बड़ाई करना अनुचित है, यथा—*'सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु।'* (१। २७४) करनी न करके प्रशंसा ही करना नीच पुरुषोंका काम है यथा—*'देवि! बिनु करतूति कहिबो जानिहैं लघु लोइ।'* (गी० ५। ५, हनुमद्वाक्य श्रीजानकी प्रति) और, करनी करना मुँहसे कुछ न कहना उत्तम पुरुषोंका काम है, यथा—*'एक कहहिं, कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न बागहीं।'* (७। ८९) इस प्रकार रावणको नीच और अपनेको उत्तम जनाया। पुनः भाव कि तू नीतिपर नहीं चलता इसीसे अपना प्रताप कथन करता है। तेरी कुछ बहादुरी देखनेमें नहीं आयी और मैं नीतिका पालन करता हूँ। करनी करना पर मुँहसे न कहना यह नीति है, यथा—*'जलपसि जनि देखाउ मनुसाई। जनि जल्पना करि सुजस नासहि नीति सुनहि करहि छमा............।'* (छन्द ८९)

पं०—भाव कि मैं तुझे अभी नहीं मारता क्योंकि रघुनाथजी तुझे रणमें वानरोंके साथ खेला-खेलाकर मारेंगे; तुझे दिखलायँगे कि वानर-भालु कैसा खेल खेलते हैं।

नोट—२ रावणने जो कहा था कि *'मूढ़ सिखिहि कहँ बहुत झुठाई। बालि न कबहुँ गाल अस मारा। मिलि तपसिन्ह तैं भएसि लबारा॥'* (३३। ५-६) इसके उत्तरमें यह कहते हुए कि *'साँचेहुँ मैं लबार भुजबीहा। जौं न उपारिउँ तव दस जीहा॥'* श्रीअङ्गदजीने अपने कथनको यहाँतक चरितार्थ किया। *'समुझि राम प्रताप कपि कोपा॥'* (३३। ८) से यहाँतक उनके वचनोंका चरितार्थ है। इस तरह कर्त्तव्य करके उन्होंने रावणको दिखाया कि जैसे बालि 'लबार' न था, वैसे ही मैं भी 'लबार' नहीं हूँ। लबार तू है कि इतना बड़बड़ाया और कर्त्तव्य कुछ न बन पड़ा। मेरा पैर भी न हटा सका।

प्रथमहि तासु तनय कपि मारा। सो सुनि रावन भएउ दुखारा॥ १२॥
जातुधान अंगद पन देखी। भय ब्याकुल सब भए बिसेषी॥ १३॥

अर्थ—कपिने प्रथम ही (सभामें आनेके पूर्व ही) उसके पुत्रको मार डाला था, वह समाचार सुनकर रावण दुःखी हुआ॥ १२॥ अङ्गदकी प्रतिज्ञा देखकर सब निशिचर डरके मारे बहुत ही व्याकुल हो गये॥ १३॥

नोट—१ *'सो सुनि'* .... से जनाया कि अबतक किसीने पुत्रवधकी उसको खबर न दी थी। किसीने न कहा था। यथा—*'एक एक सन मरमु न कहहीं। समुझि तासु बध चुप करि रहहीं॥..........अति सभीत सब करहिं बिचारा।'* (१८। ७। ९) जब अङ्गद चले गये तब कहा, क्योंकि रावण यदि कहे भी कि तुमने रक्षा न की तो कह सकेंगे कि जिससे आपका बल न चला उससे भला हम क्या कर सकते थे? 'रावण' अर्थात् जगत्को रुलानेवाला है, उसको ही स्वयं दुःख हुआ, वह रो दिया।

नोट—२ ☞ अक्षवधपर क्रोध हुआ था और यहाँ दुःखी होना कहा। इससे जनाया कि यह पुत्र अधिक बली और प्रिय था। पुनः प्रथम बार युद्ध हो रहा था इसलिये दुःख करनेका अवसर न था और यहाँ वह बात नहीं है। पुनः उस समय अपनेको वानरसे बदला लेनेको समर्थ समझता था, इससे उसको बाँध लानेको कहा था पर अङ्गदसे तो कुछ बस न चला।

नोट—३ (क) *'अंगद पन देखी'* इति। *'जौं मम चरन सकसि सठ टारी। फिरहिं राम सीता मैं हारी॥'* (३३। ९) कहकर पदको रोपना *'पन'* है, यथा—*'तासु दूत पन कहु किमि टरई।'* (३४। ८) (ख) *'भय ब्याकुल सब भए बिसेषी।'* भाव कि अङ्गदने जब प्रहस्तको मारा तभी अत्यन्त भयभीत हो गये थे, यथा—*'अब धौं काह करिहि करतारा। अति सभीत सब करहिं बिचारा॥'* (१८। ९) अब चरणका रोपना एवं चलते समय यह कहकर जाना कि *'हतौं न खेत खेलाइ खेलाई।............'* यह प्रतिज्ञा सुनकर डर और भी बढ़ गया। अतएव वे व्याकुल हो गये। पुनः विशेष व्याकुल हुए यह समझकर कि जिसके दूतोंका यह हाल है, यह बल है, स्वयं उनके बलका क्या ठिकाना, उनके आनेपर निशिचरकुलका भला नहीं। यथा—*'जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आए पुर कवन भलाई॥'*

पं०—'विशेष व्याकुल' का भाव कि प्रथम हनुमान्‌जीका पराक्रम देख उसे आजतक भूले न थे, अब इसका बल देख व्याकुलता बढ़ गयी। अथवा, यह जानकर कि वानरोंके हाथसे जीवित बचना दुर्लभ है वे व्याकुल हुए और रावणके भयसे शत्रुकी शरणमें जा नहीं सकते यह सोचकर विशेष व्याकुल हुए। दोनों तरहसे मरण निश्चय जाना।

दो०—रिपु बल धरषि हरषि कपि बालितनय बलपुंज।
पुलक सरीर नयन जल* गहे रामपद कंज॥ ३४॥

शब्दार्थ—धरषि (सं० धर्षण)—दबाना, मर्दन करना। यथा—*'डगे दिसिकुंजर कमठ कोल कलमले डोले धराधर धारि धराधर धरषा'।*

अर्थ—बलराशि बालिपुत्र कपि श्रीअङ्गदजीने शत्रुके बलको धर्षितकर हर्षित हो श्रीरामचन्द्रजीके (पास आकर उनके) चरण-कमल पकड़ लिये। उनका शरीर पुलकित है और नेत्रोंमें जल भरा हैं।

नोट—१ (क) *'रिपु बल धरषि'* इति। *'रिपु मद मथि'* जो ऊपर कहा था, उसीको यहाँ दोहराया है। वही भाव यहाँ है। (ख) *'हरषि'* से जनाया कि रिपुमद मथन करनेमें उनको किंचित् भी श्रम न हुआ, वे दौत्यकार्यको सफल करके लौटे और कृतकृत्य हैं कि **'नाथ मोहि आदर दियो'**। रिपुबलघर्षणके सम्बन्धसे *'बालितनय'* पितासम्बन्धी नाम दिया। उपक्रममें भी यही नाम दिया था। यथा—*'रन बाँकुरा बालि सुत बंका।'* (१८। २) सभामें पहुँचनेपर भी यही नाम दिया है, यथा—*'बालितनय अति बल बाँकुरा।'* (१९। ७) अत: उपसंहार भी इसी नामसे किया। (ग) *'पुलक सरीर नयन जल'* से प्रेमकी अधिकता दिखायी। यथा—*'अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा.........जुग नयनन्हि जलधार बही।'* (१। २११) यह उपसंहार है। (घ) *'गहे रामपदकंज'* से प्रकरणका उपसंहार जनाया। *'प्रभु अग्या धरि सीस चरन बंदि अंगद उठेउ॥..........अस बिचारि जुबराज तनु पुलकित हरषित हियेउ।'* (१७) उपक्रम है। रामपदारविन्दकी वन्दना करके चले थे और अब लौटकर चरणोंपर सिर रखकर हाथसे उन्हें पकड़ लिया। पुनः, भक्तजन प्राय: जब किसी कार्यको चलते हैं तब चरणोंमें प्रणाम करते हैं और कार्य करके लौटनेपर भी प्राय: ऐसा ही करते हैं, यथा—*'आयसु माँगि चरन सिरु नाई। चले हरषि सुमिरत रघुराई॥'* (कि० २३। ८) और लौटनेपर *'परे सकल कपि चरनन्हि जाई।'* (सुं० २९। ८) इत्यादि।

पं०—रामपदकमल पकड़नेका भाव कि मैंने चरण रोपा था, मेरा चरण कोई न हटा सका, यह सब इन चरणोंकी कृपासे हुआ; इन्होंने हमारी लज्जा रखी, आपने ही रक्षा की। पुन: भाव कि अब इन चरणोंको कभी न छोड़ूँगा।

☞ मिलान कीजिये **'व्यथयनराक्षसान् सर्वान्हर्षयंश्चापि वानरान्। स वानराणां मध्ये तु रामपार्श्वमुपागतः॥'** (६। ४१। ९१) अर्थात् समस्त राक्षसोंको व्यथित और सब वानरोंको हर्षित करते हुए वह (अङ्गद) वानरोंके मध्यमें श्रीरामजीके पास आ गये।

श्रीहनुमान्‌जी और अङ्गदजीके दौत्य-प्रसंगोंका मिलान—

श्रीहनुमान्‌जी	श्रीअङ्गदजी
१ दोनों बड़भागी हैं—*'बड़भागी अंगद हनुमाना'।*	
२ *जानि काज प्रभु निकट बुलावा*	*अंगद सन कह कृपानिधाना*
३ *पवनतनय बल पवन समाना।*	*बालितनय बुधि बल गुन धामा*
४ *बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु।*	*लंका जाहु तात मम कामा। काज हमार तासु हित होई।*
कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु॥	*रिपु सन करेहु बतकही सोई॥*
५ *पाछे पवनतनय सिर नावा*	*चरन बंदि अंगद उठेउ*
६ *हनुमत जनम सफल करि माना*	*स्वयंसिद्ध सब काम नाथ मोहि आदर दियेउ*

* सजल सुलोचन पुलकतन—(का०)

☞ हनुमान्जी परमभक्त हैं; छोटे-से-छोटे प्रभुके काममें अपना जन्म सफल, अपनेको कृतार्थ मानते हैं और अङ्गदजीमें युवराजत्वकी भी गन्ध है अतः वे 'आदर दियेउ' ही मानते हैं।

७ *चलेउ हृदय धरि कृपानिधाना* — *बंदि चरन उर धरि प्रभुताई*
८ *अस कहि नाइ सबन्ह कहुँ माथा* — *अंगद चले सबहि सिरु नाई*
९ *पुनि पठयेउ तेहि अच्छ कुमार* — *पुर पैठत रावन कर बेटा*
१० *आवत देखि बिटप गहि तर्जा* — *खेलत रहा सो होइ गई भेंटा*
११ *ताहि निपाति महाधुनि गरजा* — *गहि पद पटकेउ भूमि भँवाई*
१२ *चला संग लै सुभट अपारा* — *निसिचर निकर देखि भट भारी*

☞ दोनोंके साथ निशिचर भट थे पर हनुमान्जीसे उन्होंने युद्ध किया इससे वे मारे गये और यहाँ उस बारके डरे हैं इससे ये लड़े नहीं—'*जहँ तहँ चले न सके पुकारी*'।

१३ *आएउ कपि केहरी असंका* — *जथा मत्त गजजूथ महँ पञ्चानन चलि जाइ*
१४ *देखि प्रताप न कपि मन संका* — *गएउ सभा मन नेकु न मुरा*
१५ *कह लंकेस कवन तैं कीसा* — *कह दसकंठ कवन तैं बंदर*
१६ '*तुम्हसे सठन सिखावनदाता*।.........'
तासु दूत मैं — *मैं रघुबीर दूत दसकंधर*
१७ *जाके बल लवलेस ते जितेउ चराचर झारि* — *नृप अभिमान मोहबस किंबा*
१८ *हरि आनेहु प्रिय नारि* — *हरि आनेहु सीता जगदंबा*

☞ 'जगदम्बा' में '*सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया*' से '*धरे जो बिबिध देह सुर त्राता*' तकका भाव सन्निविष्ट है।

१९ *जानउ मैं तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहु सन परी लराई॥* — *एक बहोरि सहसभुज देखा*
२० *समर बालि सन करि जसु पावा* — *एक कहत मोहि सकुच अति रहा बालि की काँख*
२१ *सुनि कपि बचन बिहँसि बहरावा* — *अंगद बचन सुनत सकुचाना*

☞ अङ्गदके '*तासों कबहुँ भई ही भेंटा*' सुनकर सकुचा क्योंकि यह उसके घरकी बात थी।

२२ *सुनहु मान तजि मोर सिखावन* — *सुनु रावन परिहरि चतुराई*
(मान इसलिये कि हनुमान्जी अपराधीकी हैसियतसे गये थे। चतुराई इसलिये कि बसीठीकी बातचीत है)।
२३ *भ्रम तजि भजहु भगत भयहारी* — *भजसि न कृपासिंधु रघुराई*
२४ *प्रनतपाल रघुनायक*............ — *प्रनतपाल रघुबंसमनि*
२५ *गये सरन प्रभु राखिहहिं*........ — *आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करहिंगे*........
२६ *संकर सहस बिष्नु अज तोही। सकहिं न राखि राम कर द्रोही॥* — *जौं खल भयेसि राम कर द्रोही। ब्रह्म रुद्रसक राख न तोही॥*
२७ *बिनती करउँ जोरि कर रावन* — *अब सुभ कहा सुनहु तुम्ह मोरा*
२८ *मोरे कहे जानकी दीजै* — *सब अपराध छमिहि प्रभु तोरा*

☞ अङ्गद उसीके पास भेजे हुए दूत हैं, हनुमान्जीने अपनेको बरबस अपने मनसे उसके पास पहुँचाया, स्वामीके आदेशसे नहीं। शिवजी (रुद्रावतार) स्वयं भक्तका उपकार करना चाहते हैं अङ्गदजी जानते हैं कि हम अधिकारी हैं अतः वे विनती नहीं करते।

२९ *सहित सहाय रावनहि मारी* — *तोहि पटकि महि सेन हति चौपट करि*......
३० *आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी* — *तव जुबतिन्ह समेत सठ जनकसुतहि लै जाउँ॥*
३१ *बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना* — *धरहु कपिहि धरि मारहु सुनि अंगद मुसुकाइ*

☞ हनुमान्जी कुछ न बोले क्योंकि ये तो आगे उपद्रवका बहाना वा अवसर ही खोज रहे थे। अङ्गदने हँसकर मुँहतोड़ जवाब दिया कि '*गाल बजावत तोहि न लाजा*'।

श्रीहनुमान्‌जी	श्रीअङ्गदजी
३२ *उलटि पलटि लंका सब जारी*	*रिपुबल धरषि हरषि कपि*
३३ *तात मात हा करिय पुकारा*	रावण ही रो दिया—'*भवन गएउ बिलखाइ*'
३४ *निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं*	*समाचार पुनि सब कहे*

कल्पसम बीति।.........*कितिक बात प्रभु जातुधान की।*..............*गढ़ के बालि कुमार*

☞ श्रीहनुमान्‌जी सीताजीका समाचार लेने भेजे गये थे अतः उन्होंने उन्हें '*मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा।*.........' क्योंकि वे जासूस थे। और, अङ्गद रावणके पास भेजे गये थे, एलची थे, इसके आगे युद्ध होना है अतः इन्होंने गढ़का समाचार लिया। शत्रुके बलकी परीक्षा दोनोंने ली। एकने भूखके बहाने और दूसरेने पद रोपकर।

३५ *कहु कपि रावन पालित लंका*	*रावन जातुधान कुल टीका।*.....*तासु मुकुट तुम्ह चारि चलाए।*
केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका	*कहहु तात कवनी बिधि पाए॥*
३६ *बोला बचन बिगत अभिमाना*	*सुनु सर्बग्य प्रनत सुखकारी*
३७ *सो सब तव प्रताप रघुराई*	*सोइ गुन सागर ईस राम कृपा जापर करहु*
३८ *नाथ न कछू मोरि प्रभुताई*	*स्वयं सिद्ध सब काज नाथ मोहि आदर दियेउ*
३९ *कर गहि परम निकट बैठावा*	*अति आदर समीप बैठारी*

४० *सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत* *अस बिचारि जुवराज तन पुलकित हरषित हियेउ*

४१ *कह मारुतसुत सुनहु प्रभु*..........।	*पवन-तनयके बचन धर्महीन प्रभुपद बिमुख काल बिबस*.........
सुनि बिहँसे राम सुजान	*परम चतुरता श्रवन सुनि बिहँसे राम उदार*
४२ सीताजीके सम्मुख होनेके समयसे अन्ततक १७ दोहोंमें कथा १२ से २९ तक	रावण सम्मुख होनेसे अन्ततक १७ दोहों में कथा १८ से ३४ तक

४३ प्रभुके पाससे चलते समयसे अन्ततक ५-५ बार प्रभुका स्मरण दोनोंने किया है।

चलेउ हरषि हिय धरि रघुनाथा.........	१ *बंदि चरन उर धरि प्रभुताई*
चलेउ हृदय धरि कृपानिधाना	२ *प्रभु प्रताप उर सहज असंका*
बार बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवन तनय०	३ *गएउ सभा दरबार तब सुमिरि रामपदकंज*
लंका चलेउ सुमिरि नरहरी	४ *रामप्रताप सुमिरि मन बैठ सभा*.............
पैठा नगर सुमिरि भगवाना	५ *समुझि रामप्रताप कपि कोपा*

४४ *उहाँ निसाचर रहहिं ससंका। जब ते जारि गएउ कपि लंका॥ जातुधान अंगद पन देखी। भय ब्याकुल सब भये बिसेषी॥*

४५ कार्य करके लौटनेपर दोनोंको दो-दो बार तात वा सुत सम्बोधन किया है—

कहहु तात केहि भाँति जानकी	१ *तात सत्य कहु पूछउँ तोही*
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं	२ *कहहु तात कवनी बिधि पाए*

अङ्गद-दौत्य-प्रसङ्ग समाप्त हुआ

मन्दोदरीका चतुर्थ उपदेश

दो०—साँझ जानि दसकंधर* भवन गएउ बिलखाइ।
मंदोदरी निसाचरहि† बहुरि कहा समुझाइ॥ ३४॥

* साँ जानि दसमौलि तब—(मा० म०, का०)।

† रावनहि (भा० दा०, रा० गु० द्वि, छ०) पर इसमें एक मात्रा कम है 'निसाचरहि' (पं०, ना० प्र०, मा० म०, का०)।

अर्थ—संध्या समय जानकर दशकंधर रावण बिलखकर महलमें गया। मन्दोदरीने फिर निशाचर रावणको समझाकर कहा॥ ३४॥

नोट—१ *'साँझ समय'*। इसी समय दरबार सदा बरखास्त (विसर्जन) होता है। प्रायः इसी समय दरबारसे उठकर वह जाया करता है। *'संध्या समय जानि दससीसा। भवन चलेउ………।'* (१०। ६) देखिये।

प० प० प्र०—*'संध्या समय'* का अर्थ संध्या करनेका समय भी हो सकता है अतः *'संध्या जानि'* नहीं कहा। *'साँझ जानि'* में भाव यह है कि रावणने अबतकके विविध अनुभवोंसे निश्चित जान लिया कि अब मेरे आयुष्यके अस्तका समय आ गया।

नोट—२ *'भवन गएउ बिलखाइ'* । संध्या समय घर जानेपर आज नाच-रंगका देखना नहीं कहा गया। इससे जनाया कि नाचरंग-तमाशा उस दिनसे बंद हो गया जिस दिन कि अदृश्य श्रीरामबाणने उसके किरीट, कुण्डल और मन्दोदरीके कर्णफूल काट गिराये थे। सब सभा डरी हुई है—*'रावन सभा ससंक सब देखि महारस भंग।'* (१३) पुनः, आज उसका मानमर्दन बीच सभामें हुआ है, इससे वह बहुत उदास है, नाच-रंग भी नहीं भावेगा। पुनः] *'बिलखाइ'* से जनाया कि सभामें मानमर्दन होनेसे रावण रो दिया, उसे बड़ा ही दुःख हुआ है।

मा० म०—बिलखना इससे भी कि घरमें भी सुख न मिलेगा, वहाँ स्त्री पीछे पड़ेगी। वह अपने वचन-विशिखसे हृदय विदीर्ण करेगी, अङ्गदसे भी अधिक लज्जित करेगी। (पं०) वा, प्रहस्त-वधसे एवं अपनी सारी सभाको निर्बल जानकर बिलख गया। अथवा, इससे बिलखा कि वानरका बालक हम सबका बल लखकर और अपना बल-पौरुष सबको जनाकर चला गया, अब उससे कौन युद्ध कर सकेगा? *'निसाचरहि'* पद देकर कविने प्रथम ही जना दिया कि वह शिक्षा न मानेगा। दूसरे यह भी जनाया कि अब उसके सिखावनमें बड़े कठोर शब्दोंका वह प्रयोग करेगी जो पतिव्रताके लिये अयोग्य है। *'बहुरि'* अर्थात् पूर्व समझा चुकी है अब फिर भी समझाती है। *'समुझाइ'* से जनाया कि विस्तृत उपदेश दिया है।

प० प० प्र०—मन्दोदरीका यह अन्तिम उपदेश यद्यपि *'कंत'* शब्दसे प्रारम्भ होता है तथापि आगे इसमें शृङ्गाररसका नाम-निशान भी नहीं मिलता। प्रथमोपदेशके टिप्पण देखिये। इसमें *'तोहि , तव'* आदि एकवचनका उपयोग भी हुआ है। इस उपदेशमें मन्दोदरी **'कार्येषु मन्त्री'** की भूमिकापर आरूढ़ होकर अन्तिम उपाय समझकर *'भय , आशा'* छोड़कर निस्पृह कर्त्तव्यनिष्ठ मन्त्रीके समान फटकारती है। षड्गुणयुक्त पतिव्रता स्त्रीका यह कर्तव्य ही है। '**कार्येषु मन्त्री करणेषु दासी भोज्येषु माता शयनेषु रम्भा। धर्मानुकूला क्षमया धरित्री भार्या तु षाड्गुण्यवती सु दुर्लभा॥**' (सुभाषित)

कंत समुझि मन तजहु कुमतिही। सोह न समर तुम्हहि रघुपतिही॥ १॥
रामानुज लघु रेख खचाई। सोउ नहि नाँघेहु असि मनुसाई॥ २॥

अर्थ—हे कान्त! मनमें समझकर कुमतिको छोड़ दो। तुम्हारा श्रीरामजीसे युद्ध नहीं शोभा देता अर्थात् तुम उनका सामना करनेमें समर्थ वा योग्य नहीं हो, यह युद्ध सर्वथा अयोग्य है॥ १॥ श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई लक्ष्मणजीने एक छोटी-सी लकीर खींची थी, उसे भी तुम न लाँघ सके। यही तो तुम्हारी बहादुरी (पुरुषत्व) है (न)?॥ २॥

नोट—१ *'कंत'*—१४ (८) देखिये। *'तजहु कुमतिही'* के भाव कि तुम्हारे हृदयमें दुर्बुद्धिने वास किया है, यथा—*'तव उर कुमति बसी बिपरीता'।* तुम हितको अहित समझते हो और अनहितको हित, यथा *'हित अनहित मानहु रिपु प्रीता'।* कुमति न छोड़नेसे विपत्ति आयेगी,—यथा—*'जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना।'* क्या कुमति है सो आगे कहती है—*'सोह न समर तुम्हहि रघुपतिही'।* श्रीरघुपतिसे समर करनेकी इच्छा ही *'कुमति'* है। पुनः; कुमति यह कि *'काल राति निसिचर कुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी॥'* तुम सीताको लौटाना नहीं चाहते यह तुम्हारी दुर्बुद्धि है।

प० प० प्र०—*'सोह न समर………'*।—इसका कारण मन्दोदरीने ही अपने द्वितीय उपदेशमें इस प्रकार कहा है—*'तुम्हहि रघुपतिहि अन्तर कैसा। खलु खद्योत दिनकरहि जैसा॥'* इस वचनकी पुष्टिके लिये ही आगे

'रामानुज लघु रेख खचाई' से *'मुधा मान ममता मद बहहू'* तक विविध उदाहरण देकर समझाती है।

नोट—२ *'रामानुज लघु रेख खचाई।.........'* इति। (क) प्रथम कहा कि रघुपतिसे समर करनेमें तुम्हारी शोभा नहीं है। अब इस बातको प्रमाणोंसे पुष्ट करती है। (ख) यहाँ लक्ष्मणजीका पञ्चवटीमें रेखा खींचना वर्णन करके यह बात अरण्यकाण्डमें होना जना दी है। कविकी शैली है कि वे जो बात आगे भी कहीं कहनी है उसे दोनों जगह नहीं लिखते। एक ही स्थानपर लिखकर दूसरे स्थलपर भी उसका होना जना देते हैं। जैसे सुबेल पर्वतपर *'रुचिर मृगछाला'* का उल्लेखकर अरण्यमें कनकमृगका चर्म लाना जना दिया। अरण्यकाण्डमें *'सून बीच दसकंधर देखा'* के 'सून' शब्दमें कविने रेखाका लक्ष्यमात्र दिया था और यहाँ स्पष्ट लिखा है।

☞कथा इस प्रकार है कि *'मरम बचन जब सीता बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला',* तब लक्ष्मणजीने अपने धनुषसे पर्णशालाके चारों ओर एक लकीर खींच दी कि यदि इसके भीतर कोई निशिचर आवेगा तो भस्म हो जायगा। रावण यदि उसके भीतर जाता तो भस्म हो जाता। यती रावणने रेखा बँधी भिक्षा लेना स्वीकार न किया, तब श्रीसीताजी भिक्षा देनेको बाहर निकलीं, रेखासे बाहर चरण रखते ही रावणने उनका हरण किया। रेखाके भीतर जानेका साहस रावण न कर सका था, इसी बातको लेकर मन्दोदरी रावणके बल-गर्वको चूर्ण कर रही है।

'रामानुज' पद प्रायः लक्ष्मणजीके लिये रूढ़ है। पर यहाँ **'रामानुज'** में यह भी भाव है कि 'रामके छोटे भाई' की खींची हुई रेखा तुमसे लाँघी न गयी जब कि वे सम्मुख भी न थे, तब भला उनके बड़े भाईसे तुम किस बलसे लड़नेका साहस कर रहे हो? उनसे जीतना असम्भव है। यथा—*'क्यों रण जीतहुगे उनसे जिनकी लघु रेख न नाँघी गई'* (रामचन्द्रिका) और भी देखिये—

'रे रे रावण शम्भुशैलमथनप्रख्यातवीर्यः कथं रामं योद्धुमिहेच्छसीदमखिलं चेत्तन्न युक्तं तथा। रामस्तिष्ठतु लक्ष्मणेन धनुषा रेखा कृतालङ्घिता तच्चारेण न लङ्घितो जलनिधिर्दग्धा हतोऽक्षः पुरी॥' (हनु० ८। ३६) अर्थात् अरे रे रावण! जो कैलाशमन्थनसे प्रसिद्ध कीर्तिवाला हो रहा है! तू रामचन्द्रजीसे युद्ध करनेकी इच्छा करता है सो यह सर्वथा अयोग्य है। राम तो अलग रहे, तू तो लक्ष्मणजीके धनुषकी रेखाको भी न लाँघ सका; और रामदूतने तो समुद्र लाँघकर अक्षकुमारको मारा और लङ्काको भस्म कर दिया। (विरूपाक्षने भी ऐसा ही कहा है—)**'सीतारक्षणदक्षलक्ष्मणधनुर्लेखापि नोल्लङ्घिता हेलोल्लङ्घितवारिधिः कपिकुलैः सार्धं स रामो महान्॥'** (हनु० ९। ९) अर्थात् तुमसे सीतारक्षणमें चतुर लक्ष्मणकी धनुष-रेखा न लाँघी गयी तब क्रीड़ासे वानरयूथोंके साथ सहज ही समुद्र उल्लङ्घन करनेवाले राम तो बड़े ही हैं।

'असि मनुसाई'। अर्थात् बस यही तुम्हारा पुरुषत्व है न? तुम्हारी वीरताकी परीक्षा हो चुकी।—यहाँ 'अर्थान्तरन्यास अलङ्कार' है। क्योंकि वह यहाँ पूर्वकथित वाक्यका समर्थन विशेष सिद्धान्तसे कर रही है।

☞मन्दोदरीको यह बात कैसे मालूम हुई? यह बात उसके मुँहसे कहलाकर कवि बताते हैं कि रावणका उसपर इतना अधिक प्रेम था कि वह उससे सब कह देता था। यतिवेष धारण करना, लक्ष्मणका रेखा खींचना इत्यादि सभी कह दिया था।

प्र० स्वामीजीका मत है कि यह घटना अरण्यकाण्डमें *'मरम बचन तब सीता बोला।'* के अनन्तर ग्रहण करनेकी आवश्यकता नहीं है। कारण कि कल्पभेदसे लीलाचरितमें कुछ-कुछ भेद होते ही हैं। मन्दोदरीके द्वितीय उपदेशसे स्पष्ट हो जाता है कि मन्दोदरी 'विष्णुभगवान् अवतारीके अवतार संदर्भ दे रही है, न कि परब्रह्म अवतारीके रामावतारके।' *'अतिबल मधु कैटभ जेहि मारे।.........।'* (६। ६। ७) देखिये।

पिय तुम्ह ताहि जितब संग्रामा। जाके दूत केर यह* कामा॥ ३॥
कौतुक सिंधु नाघि तब लंका। आएउ कपि केहरी† असंका॥ ४॥
रखवारे हति बिपिन उजारा। देखत तोहि अक्ष तेहि मारा॥ ५॥
जारि सकल‡ पुर कीन्हेसि छारा। कहाँ रहा बल गर्ब तुम्हारा॥ ६॥

* अस—(का०)। यह—(भा० दा०) † केसरी (का०)। ‡ नगरु सब (का०)

अर्थ—हे प्राणपति! तुम उनको संग्राममें जीत सकोगे? जिनके दूतके ये काम हैं?॥ ३॥ खेलसे ही समुद्र लाँघकर तुम्हारी लङ्कामें एक कपिसिंह निर्भय आया॥ ४॥ रखवालोंको मारकर उसने अशोकवन उजाड़ डाला और तुम्हारे देखते-देखते उसने अक्षयकुमारको मार डाला॥ ५॥ तथा सम्पूर्ण नगर जलाकर राख कर दिया तब तुम्हारा बलका घमंड कहाँ था? अर्थात् तब उसे पकड़कर क्यों न मार डाला?॥ ६॥

नोट—१ *'ताहि जितब संग्रामा। जाके दूत.........'* इति। श्रीलक्ष्मणजीकी रेखाका प्रमाण देकर दूसरा प्रमाण श्रीहनुमान्‌जीका देती है कारण कि सीताहरणके बाद दूसरा अवसर रावणको अपना पुरुषार्थ श्रीरामजीके मुकाबिलेमें दिखानेका यह आया था; अतः उसी क्रमसे कहा। दूसरे, ये दो प्रमाण साथ-साथ देकर जनाया कि तुम उनके सूनेमें भी एक लघु रेखातक न लाँघ सके और उनका एक दूत लंकिनी, सिंहिका और कालके रहते भी समुद्र लाँघ आया। एकसे रावणको अबल और दूसरेसे श्रीरामजीको सबल दिखाया। [बं० पा०—*'लघु रेख.......'* यह तो उनके भाईका कार्य और प्रताप सुनाया, अब उनके दूतका कार्य सुनो। (ख) *'जितब संग्रामा'* का भाव कि तब तो संग्रामकी बात ही न थी, दूत अकेला था, बलवान् होते तो उसे मारकर नगर बचा न लेते? तब तो घरकी बात थी और अब सम्मुख सेनाभरसे समर होगा तब जय कैसे सम्भव है? *'नाथ न पूर आव एहि भाँती॥ बारिधि नाघि एक कपि आवा। तासु चरित मन महुँ सब गावा॥..........जारत नगर कस न धरि खाहू॥'* का भाव इसमें है। ९ (१-२) देखिये। (ग) *'यह कामा'*। आगे क्रमसे दूतके चरित कहती है। भाव कि समुद्रलंघनादि सभी उसके कर्म अद्‌भुत और अघटित घटनाएँ हैं, सब कर्म उसके उत्तरोत्तर बढ़े-चढ़े हुए हैं। इसके कर्मोंसे उसके स्वामीके बलका अन्दाजा कर लो। दूतमें यह सामर्थ्य है तब उनका सामर्थ्य न जाने क्या होगा?

नोट—२ (क) *'कौतुक सिंधु नाँघि'*। भाव कि एक तो सौ योजन पाटका समुद्र लाँघना ही असम्भव था, दूसरे उसमें तुम्हारी ओरसे सिंहिकाका पहरा था जिससे पक्षीतक इस पार न आ सकता था। पर उसके लिये सिंहिकावध और सिंधुलङ्घन दोनों खेलसे ही जान पड़े। (ख) *'तव लङ्का'* का भाव कि तुम्हें बड़ा गर्व था कि यह देवताओंके लिये भी दुर्धर्ष है, इत्यादि। यथा—*सुंदर सहज अगम अनुमानी। कीन्हि तहाँ रावन रजधानी॥'* (१। १७९) यहाँ काल और लङ्किनीका पहरा है। यदि कोई आ भी जाय तो ये प्रथम ही उसका प्राण हर लेंगे। पर वे भी उसका कुछ न कर सके। (ग) *'आएउ'*। भाव कि तुम्हारी जिस पुरीमें इन्द्रका भी गमगुजर न था उसीमें वह ऐसा चला आया जैसे कोई अपने घरमें आवे-जावे, बातचीत करे। इसी भाँति वह श्रीसीताजीसे जाकर मिला, बातचीत की, फल खाये, इत्यादि। यथा—

'यत्संदेशहरेण मारुतसुतेनातारि वारान्निधिः क्षिप्रं गोष्पदवन्निजालयमिव प्रावेशि लंकापुरी।
सीताऽदर्शि समभ्यभाषि च वनं चाभञ्जि रक्षःपतेः सैन्यं भूर्यवधि व्यदाहि च पुरी रामः कथं वक्ष्यते॥'
(हनु० ८। १५)

(अङ्गदजीने रावणसे कहा है कि जिनके दूत गौके खुरकी तरह शीघ्रतासे समुद्रको तर गये, अपने घरकी तरह लंकामें प्रवेश कर गये, सीताजीके दर्शनकर उनसे बातचीत कर तुम्हारी सेनाको मार, लङ्काको जलाया तब उन श्रीरामजीका तो कहना ही क्या?)

ये सब कार्य पुरुषार्थ और निःशङ्कता सूचित करते हैं; अतः कपिको *'केहरी असंका'* विशेषण दिया। पुनः, 'अशङ्का' इससे भी कहा कि दरबारमें आकर तुम्हारा प्रताप देखकर भी वह न डरा, यथा—*'देखि प्रताप न कपि मन संका।'* केहरी और अशंकके भाव *'सिंह ठवनि।'* (१८) और दोहा १९ *'जथा मत्त गज जूथ महुँ पंचानन.........'* देखिये।

नोट—३ (क) *'रखवारे हति बिपिन उजारा'* का भाव कि यह वन तुमको प्राणप्रिय था। इसकी रक्षाके लिये एक-दो नहीं वरन् बहुत भट वहाँ रखे थे और उन्होंने रक्षा की, अतः *'रखवारे'* पद दिया। पर सब मारे गये। पुनः, *'रखवारे'* का भाव कि इतने रक्षकोंके रहते वह जानकीजीके पास कैसे गया, यह तो समझो। (ख) *'देखत तोहि'* दीपदेहरी है। भाव कि वनविध्वंस, अक्षवधादि सब उसने तुमको

ललकारकर किये, मर्द होते तो सबको बचा न लेते? यथा—*'उतरि सिंधु जारो प्रचारि पुर जाको दूत बिसेष'*—(गी० लं० १) *'रहे तहाँ बहु भट रखवारे। कछु मारे कछु जाइ पुकारे॥'* (५। १८। २), *'नाथ एक आवा कपि भारी।'*.........*'कछु पुनि जाइ पुकारे प्रभु मर्कट बल भूरि॥'* (५। १८) तक, इत्यादि ललकार है। पुनः भाव कि उसने सब तुम्हारे सामने किया और तुमने सीताहरण उनका एक अनिष्ट किया सो भी चोरीसे। (ग) *'अक्ष जेहि मारा'* का भाव कि पुत्र अपनी आत्मा है, यदि तुममें बल था तो उसको मारे जाते तुम कैसे देख सके?

नोट—४ (क) *'जारि सकल पुर कीन्हेसि छारा'।* यह काम सबसे बड़ा और अद्भुत किया—सुं० ३३ (५-६) देखिये। *'देखत तोहि'* इसके साथ भी है। भाव कि तुमने तो उसकी पूँछ जलानी चाही सो तेल, घी, कपड़े लगानेपर भी न जला सके और उसने उसी अग्निसे सोनेकी लंका जला दी। (ख) *'कहाँ रहा बल गर्ब तुम्हारा'।* यही आशय अङ्गदजीके *'सो भुजबल राखेहु उर घाली।'* (२९। ८) का है। अर्थात् उस समय किसी कारणसे वह बल तुमने छिपा रखा था कि कहीं इसे मालूम न हो जाय? पुनः भाव कि नगर जलनेके साथ तुम्हारा गर्व भी जल गया।

☞मन्दोदरीके इन वचनोंमें भाव यह है कि दूतके इन कामोंसे उसके स्वामीका प्रताप और अजित होना स्थापित होता है। अब भी तुम्हें लज्जा नहीं आती? मिलान कीजिये—

'उदधि अपार उतरत नहिं लागी बार केसरी कुमार सो अदंड कैसो डाँड़िगो। बाटिका उजारि अच्छ रच्छकनि मारि भट भारी भारी रावरे के चाउर से काँड़िगो॥'.........*'कहे की न लाज अजहूँ न आए बाज सहित समाज गढ़ राँड़ कैसो भाँड़िगो।'* (क० ६। २४), *'सिंधु तर्‌यो उनको बनरा तुम पै धनुरेख गई न तरी। बानर बाँधत सो न बँध्यो उन बारिधि बाँधि कै बाट करी॥ श्रीरघुनाथप्रताप की बात तुम्हैं दसकंठ न जान परी। तेलहु तूलहु पूँछि जरी न जरी जरी लंक जराय जरी॥'* (रा० चं० १६। १२)

इन उद्धरणोंके सब भाव इन वचनोंमें आ गये।

वीरकवि—*'पिय तुम्ह'*.........*'कामा'* में अर्थापत्ति प्रमाण अलङ्कार है। *'रखवारे'*.........*'गर्ब तुम्हारा'* दूतकी बड़ाईसे स्वामीकी बड़ाई प्रकट होना 'व्याजस्तुति अलङ्कार' है। राक्षसोंके रहते वाटिका उजाड़ना, रावणके निरीक्षणमें पुत्रका मारा जाना, लंकानगर भस्मीभूत होना 'तृतीयविभावना अलङ्कार' है।

अब पति मृषा गाल जनि मारहु। मोर कहा कछु हृदय बिचारहु॥७॥

पति रघुपतिहि नृपति जनि* मानहु। अगजगनाथ अतुल बल जानहु॥८॥

अर्थ—हे स्वामिन्! अब व्यर्थमें ही गाल मत मारो (डींग मत हाँको), कुछ मेरा कहना हृदयमें विचार करो॥ ७॥ हे पति! रघुपतिको नर-राज मत मानो किन्तु उनको चराचरका स्वामी और असीम बलशाली जानो† ॥ ८॥

नोट—१ (क) *'मृषा गाल जनि मारहु'।* भाव कि बल दिखानेका अवसर मिला तब कुछ कर ही न सके, इसीसे डींग मारना व्यर्थ है। बलगर्व रह नहीं गया। अतः *'मृषा'* पद दिया। (ख) *'कछु हृदय बिचारहु'।* भाव कि थोड़ा-सा भी विचार करोगे तो मेरे वचनको ठीक समझकर मान लोगे कि श्रीरामचन्द्रजी मनुष्य नहीं हैं, इसीसे वानरों और स्वयं उनके द्वारा अद्भुत कार्य हो रहे हैं। शिवजीके उपदेशसे मिलान कीजिये जो उन्होंने देवताओंके मिषसे ब्रह्माजीको श्रीसियरघुवीरविवाहके समय दिया है—*'सिव समुझाए देव सब जनि आचरज भुलाहु। हृदय बिचारहु धीर धरि सिय रघुबीर बिआहु॥'* (बा० ३१४) यही भाव कवितावलीके *'कानन उजारि अच्छ मारि धारि भूरि कीन्ही, नगर प्रजाय्यो सो बिलोक्यो बल कीस को। तुम्हें बिद्यमान जातुधान मंडली*

---

* मति (का०)।

†वीरकवि—रामचंद्रका सत्य राजत्वगुण निषेध करके उसका धर्म अगजगनाथमें स्थापन करना 'पर्यस्तापह्नुति अलङ्कार' है।

में कपि कोपि रोप्यो पाउँ सो प्रभाउ तुलसीसको॥ कंत सुनु मंतु कुल अंतु किएँ अंत हानि, हातो कीजै हीयते भरोसो भुज बीस को॥'..........(क० लं० २२) इस पदमें है।

नोट २ (क) *'नृपति जनि मानहु।'* वह नृपति मानता है, यथा—*'भूप सुजस खल मोहि सुनावा।, 'नर कर करसि बखान।'* (२५), *'जिन्ह के बल कर गर्ब तोहि अइसे मनुज अनेक।'* (३०) अतः कहा कि नृपति न समझो। *'मानहु'* का भाव कि तुम मानते हो पर ऐसा है नहीं। १४ (८), *'सो भनु मनुज खाब हम भाई।'* (९। ६) देखो। *'अगजगनाथ अतुल बल जानहु'।* अर्थात् वे मनुष्योंके ही राजा नहीं हैं वरन् चराचरमात्रके स्वामी हैं। चराचरनाथ हैं अतः उनका बल चर-अचर सबसे अधिक हुआ। इसीसे 'अतुल बल' कहा। 'अतुल बल' कैसे जाना? इसका प्रमाण आगे देती है।

बान प्रताप जान मारीचा। तासु कहा नहिं मानेहि नीचा॥ ९ ॥
जनकसभा अगनित भूपाला*। रहे तुम्हौ बल अतुल† बिसाला॥ १० ॥
भंजि धनुष जानकी बिआही। तब संग्राम जितेहु किन ताही॥ ११ ॥

अर्थ—मारीच उनके बाणके प्रतापको जानता था। अरे नीच! तुमने उसे अपनेसे नीच मानकर उसका कहा न माना॥ ९॥ श्रीजनकजीकी सभामें असंख्यों राजा थे, अतुलित बलवाले तुम भी (तो) वहाँ थे॥ १०॥ धनुष तोड़कर उन्होंने श्रीजानकीजीको ब्याहा, तब तुमने उन्हें संग्राममें क्यों न जीत लिया॥ ११॥

नोट—१ *'बान प्रताप जान मारीचा'।* अतुलित बलमें उनके बाणका प्रताप प्रथम कहा, क्योंकि संग्राममें बाणसे युद्ध होगा यह निश्चय जानती है। खर-दूषणादिका वध, बालीका वध, विराधवध एवं मारीचवध बाणद्वारा हुआ यह सुन ही चुकी है और अङ्गदसे भी सुना है कि रामबाण तेरे (रावणके) लहूके प्यासे हैं, यथा—*'तव सोनित की प्यास तृषित रामसायक निकर।'* (३२), *'जबहि समर कोपिहिं रघुनायक। छुटिहहिं अति कराल बहु सायक॥ तब कि चलिहि अस गाल तुम्हारा।'* (२७। ६-७) इत्यादि। मंदोदरीके हृदयमें बाणका प्रताप ऐसा डट गया है कि प्रथम ही उपदेशसे उसने बाणका प्रताप कहना प्रारम्भ कर दिया, यथा—*'रामबान अहिगन सरिस निकर निसाचर भेक। जब लगि ग्रसत न तबहि लगि जतन करहु तजि टेक॥'* (सुं० ३६) और यहाँ अन्तिम उपदेशमें फिर बाणप्रताप दिखाती है। यहाँ चरितक्रम भंग हुआ है। पुनः, क्रमभंग इस विचारसे नहीं भी है कि यह कथा विश्वामित्र-यज्ञरक्षाके समयकी है और धनुष-भंग उसके पीछे हुआ। अतः वही क्रम यहाँ भी रखा। मारीचने क्या बाणका प्रताप जाना था? यह उसने स्वयं कहा है। यथा—*'मुनि मख राखन गयउ कुमारा। बिनु फर सर रघुपति मोहि मारा॥ सत जोजन आयेउँ छन माहीं। तिन्ह सन बयरु किये भल नाहीं॥ भइ मम कीट भृङ्ग की नाईं। जहँ तहँ मैं देखौं दोउ भाई॥'* (आ० २५)

नोट—२ *'तासु कहा नहिं मानेहि नीचा'* इति। (क) कहा=बचन, उपदेश। उसने भी कहा था कि ये चराचरपति हैं और अति शूरवीर हैं, इनसे वैर न कीजिये। यथा—*'तै नररूप चराचर ईसा॥'*.......*तासों तात बयरु नहिं कीजे। मारे मरिय जियाए जीजे॥', 'जौं नर तात तदपि अति सूरा। तिन्हहिं बिरोधि न आइहि पूरा॥'* इत्यादि। (ख) 'नीच' रावणका विशेषण है। क० लं० १८ में भी उसे मन्दोदरीने नीच कहा है, यथा—*'रे नीच! मारीच बिचलाइ हति ताड़का, भंजि सिवचाप सुख सबहिं दीन्ह्यो'।* दोहावली और गी० लं० १ में मारीचके लिये नीच विशेषण आया है। यथा—*'सुकृत न सुकृती परिहरै कपट न कपटी नीच। भरत सिखावन सो दियो गीधराज मारीच॥'* (दो० ३४१), *'कौतुकही मारीच नीच मिस प्रकट्यो बिसिष प्रताप'* (गी०)। अरण्यकाण्ड मानसमें भी *'लीन्ह नीच मारीचहि संगा'* है पर इसमें 'नीच' दोनों पक्षका अर्थ दे सकता है। इस प्रकार शंका करनेवाले नीचको मारीचका विशेषण समझ ले सकते हैं। (ग) *'नहिं मानेहि नीचा'* इसका अर्थ लोगोंने भिन्न-भिन्न प्रकारसे किया है। यथा—

* महिपाला। † विपुल (गौड़जी, का०)।

(१) बं० पा०—उसके कहनेपर भी आपने (इसमें) छोटाई (नीचता) न मानी, अभिमानपर स्थिर रहे। (२) वीरकवि—पर उसका कहना आपने नीचतासे नहीं माना। (३) पु० रा० कु० और पं० ने 'हे नीच' भी अर्थ दिया है। (४) ऐसी नीच बुद्धि है। (५) और किसीने यह अर्थ किया है कि 'उसका कहा नीच अर्थात् तुच्छ न मानों किंतु उत्तमोत्तम समझो'। (६) रा० प्र०—*'उसका हित बचन नीच करि न माना।'* (७) दीपदेहरीन्यायसे अन्वय इस प्रकार होगा *'तासु कहा नहिं मानेहि, मानेहि नीचा'* अर्थात् *'नीचा मानेहि, तासु कहा नहिं मानेहि,'* उसे नीच मानकर तुमने उसका कहा नहीं ही माना। शंकानिवारणार्थ ऐसा अर्थ किया जा सकता है। श्री नं० पं० जीने इस अर्थको ग्रहण किया है।

☞मैं अपने मतके समर्थनमें प्र० स्वामीजी तथा श्रीत्रिपाठीजीका मत यहाँ देता हूँ।

वि० त्रि०—*'बान प्रताप''''''''नीचा'* इति। स्त्रीका मान-मर्याद, लोक-परलोक सब पतिपर अवलम्बित है। सभाके बीचमें अङ्गदद्वारा रावणकी इतनी दुर्दशा मन्दोदरीको किसी भाँति सह्य नहीं है। अङ्गदके लौटनेका अर्थ यही है कि लङ्कापर धावा होनेमें अब विलम्ब नहीं है। मन्दोदरी देखती है कि सब भाँतिसे मेरा सर्वनाश उपस्थित है। स्त्रीको पति-पुत्रसे प्यारा संसारमें कोई नहीं है। सो यह लोक भी गया और रामविमुख होनेसे परलोक भी गया। यह सब घटना रावणकी नीचतासे हो रही है। स्वार्थ-साधनके लिये प्रणाम करना (यथा—*'नाइ माथ स्वारथरत नीचा।'*) और हितोपदेश देनेपर उसीको गाली देना, और जो अनुचित वह नहीं करना चाहता, वही उससे बलपूर्वक करवाना, वीर कहलाकर परायी स्त्रीको चुराकर लाना नीचताकी पराकाष्ठा है। नीच भी नीचता कुछ स्वार्थ पुरःसर ही करता है। यहाँ तो वंशोच्छेद और अपनी मौत छोड़कर कोई लाभ दिखायी नहीं पड़ता, अतः इस अन्तिम समझानेमें वह कुछ उठा रखना नहीं चाहती। स्पष्ट कहती है कि तुम नीच हो, मारीचके साथ तुमने अत्यन्त नीचता की जो कार्य एक महाकायर भी न करता सो तुमने किया, अब तुम्हें स्वात्माभिमानके लिये स्थान कहाँ है?

प० प० प्र०—'पतिव्रता होकर पतिको 'नीच' कैसे कहेगी?' इस शंकासे कुछ लोग 'नीच' को 'मारीच' का विशेषण मानते हैं। पर *'पुरुषार्थहीन, निर्लज्ज, दसकंध, तोहि, 'मृषा गाल जनि मारहु, खद्योत,'* इत्यादि कहनेसे जिसका पातिव्रत्य भंग नहीं हुआ, उसके लिये *'नीच'* कहनेमें क्या दोष है? पुरुषार्थहीनता और मृषा गाल मारना, निर्लज्जता आदि 'नीच' के ही लक्षण हैं। अरण्यकाण्डमें उसे नीच कहा ही है—*'स्वारथरतनीचा' 'नवनि नीच कै अति दुखदाई'।* कवितावलीमें मंदोदरीने *'रे नीच'* (१८), *'मंदमति कंत'* (२१), *'भागेते खिरिरि खेह खाहिगो'* (२३), *'कहे की न लाज'* इत्यादि कहा ही है।

(घ) इस प्रमाणसे अगजगनाथ और अतुल बलका समर्थन हुआ।

नोट—३ (क) *'जनक सभा'* अर्थात् सीयस्वयंवर या धनुषयज्ञमें जो राजा जनकके यहाँ हुआ जिसमें द्वीप-द्वीपके अनेक राजा एकत्रित हुए थे। (ख) *'अगनित भूपाला'* यथा—*'दीप दीप के भूपति नाना। आए सुनि हम जो पनु ठाना॥'* (१। २५१), *'सीय स्वयंबर भूप अनेका। समिटे सुभट एक ते एका॥'* (१। २९२) (ग) *'रहे तुम्हौ''''''''',* यथा—*'रावन बान छुआ नहिं चापा।'* (१। २५६), *'रावनु बानु महाभट भारे। देखि सरासन गवहिं सिधारे॥'* (१। २५०), *'जेहि कौतुक सिवसैलु उठावा। सोउ तेहि सभा पराभव पावा॥'* (१। २९२) (घ) *'बल अतुल बिसाला'* ये व्यंगके वचन हैं। क्योंकि रावणने इन्द्रादिको *'बिपुल बल'* कहा है, यथा—*'लोकपाल बल बिपुल ससि ग्रसन हेतु सब राहु॥'* (२२), जिससे अपना बल उनसे भी अधिक हुआ ही। भाव कि ऐसा भारी बल था तो वहाँ धनुष क्यों नहीं उठा सके, धनुष तोड़कर जानकीको वहीं ब्याह लेते, चोरी क्यों करते? वा, वहीं संग्राम करके उन्हें हराकर जानकीको छीन लेते। आशय यह है कि तब तो वे कुमार थे। उस समय जब न जीत सके तब अब प्रौढ़ होनेपर क्या जीतोगे?

☞इस उदाहरणमें श्रीरामजीका भुजबल रावणसे अधिक दिखाया। यह *'अतुल बल'* का प्रमाण है। इससे यह भी जनाया कि *'बल प्रताप बीरता बड़ाई। नाक पिनाकहि संग सिधाई॥ सोइ सूरता कि अब*

कहुँ पाई। अस बुधि तौ बिधि मुँह मसि लाई॥' (बा० २६५) पुनः, भाव कि जिसने शंकरका धनुष तोड़ा वह तुम्हारा लङ्का राज्य तोड़नेको भी समर्थ है, यथा—*'तोर्‌यो सरासन संकरको जेहि सोऽब कहा तव लङ्का न तोरिहि'*—(रा० चं० प्र० १६। ७)—यहाँ 'प्रत्यक्षप्रमाण अलङ्कार' है।—रा० चं० प्र० १५। ६ से मिलान कीजिये—*'रामकी बाम जो आनी चोराय सो लङ्कमें मीचुकी बेलि बई जू। क्यों रन जीतहुगे तिन्हसों जिनकी धनुरेख न लाँघी गई जू। बीस बिसे बलवंत हुते जु हुती दृग केशव रूप रई जू। तोरि सरासन संकर को पिय सीय स्वयंबर क्यों न लई जू॥'*

सुरपति-सुत जानै बल थोरा। राखा जियत आँखि गहि फोरा॥ १२॥
सूपनखा कै गति तुम्ह देखी। तदपि हृदय नहिं लाज बिसेषी॥ १३॥

अर्थ—इन्द्रपुत्र जयन्तने उनका कुछ बल जाना है (वा उनको थोड़े बलवाला समझा)। उन्होंने उसे पकड़कर एक आँख फोड़कर जीवित रखा॥ १२॥ शूर्पणखाकी दशा भी तुमने देखी तब भी तुम्हारे हृदयमें अधिक लज्जा न आयी॥ १३॥

नोट—१ (क) मारीचको बाण मारा था यद्यपि उसमें फल नहीं लगाया था। अब कुशास्त्रका प्रताप दिखाती है, इसमें न तो बाण ही है न गाँसी, केवल अभिमन्त्रित सींक ही है। वह बलकी परीक्षा लेने आया था, यथा—*'सठ चाहत रघुपति बल देखा।'* इसीसे किंचित् बल दिखा दिया कि एक सींक-बाणसे त्रैलोक्यमें कोई रक्षा न कर सका, तब बाणका बल तो न जाने क्या होगा? *'सुरपति सुत'*—आ० १ (५) देखिये। (ख) *'राखा जिअत आँखि गहि फोरा',* यथा—*'कीन्ह मोहबस द्रोह जद्यपि तेहि कर बध उचित। प्रभु छाँड़ेउ कर छोह·······', 'एक नयन करि तजा भवानी।'* (आ० दोहा २) भाव कि इन्द्रका पुत्र था जो कि श्रीरामजीके पिता दशरथजीके मित्र हैं—*'ससुर सुरेस सखा रघुराऊ', 'आगे होइ जेहि सुरपति लेई। अर्धसिंहासन आसन देई॥'* ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध होनेपर भी उनके पुत्रको शरण होनेपर भी भक्तापराध करनेके कारण इतना दण्ड दिया ही; तब द्रोह करनेवालेके प्राण कब रखेंगे? पद्मपुराण उत्तरखण्ड अध्याय ४२ श्लोक २०२—२११ में लिखा है कि, उस कौएको प्राणसंशयमें प्राप्त और शरणमें आया देख श्रीजानकीजीको दया लगी और उन्होंने श्रीरामजीसे प्रार्थना की कि इसकी रक्षा कीजिये तब रामजीने उसे छोड़ा। पुनः, भाव यह कि सीताजीके किंचित् अपराधपर यह फल मिला तब सीताहरण करनेवाला बिना वधके कब बच सकता है? जयन्तकी कथा तो कोई न जानता था, इसीसे सीताजीने हनुमान्‌जीको यह कथा विश्वास दिलानेके लिये बतायी थी। तब मन्दोदरीने कैसे जाना? क्या अपराध किया था, यह कोई न जानता था पर उसपर सींकका बाण प्रभुने चलाया और उससे सुर-असुर कोई रक्षा न कर सके यह सबको मालूम है। ☞जयन्तकी कथासे बाण-प्रताप दिखाया, यथा—*'तात सक्रसुत कथा सुनायेहु। बान प्रताप प्रभुहिं समुझायेहु॥'* (सुं० २७) जयन्तके बाद शूर्पणखाको कहा, इसको भी मारा नहीं, नाक-कान काटकर छोड़ दिया था।

नोट—२ (क) *'सूपनखा कै गति तुम्ह देखी'* इति। भाव कि-(क) यह तो तुमने अपनी आँखों देखा है, यथा—*'तोहि जिअत दसकंधर मोरि कि असि गति होइ।'* (पु० रा० कु०)। (ख) वह स्त्री थी तो भी अपराधिनी जान उसको भी दण्ड दिया, वध न किया—(पं०)। (ग) उसकी कैसी दीन दशा हो गयी यह देख तुम्हें ज्ञान न उत्पन्न हुआ। यथा—**'दृष्ट्वा दैन्यं भगिन्याः श्रुतखरनिधनं मातुलस्यापि नाशं तालानां भेदनं यत्कपिवरदहनं बद्धसुग्रीवसख्यम्। कर्माण्युद्यानभङ्गे जलनिधितरणं यो न जातस्तदानीं सोऽयं नष्टे कुलेऽस्मिन्कथमिव गमितो जायते ते विवेकः॥'** (हनु० १४। ५) अर्थात् अपनी भगिनी शूर्पणखाकी दीनताको देखकर, खरकी मृत्युको सुनकर, अपने मामा मारीचके विनाशको देखकर, तालवृक्षोंके वेधनको सुनकर, हनुमान्‌कृत लङ्कादहन देखकर, सुग्रीवमित्रता सुनकर, अशोकवाटिका-भंगके कर्मोंको देखकर और समुद्र-बन्धन सुनकर भी तुम्हें जो विवेक न उत्पन्न हुआ (वह अब कहाँसे आ गया) पुनः यथा—
'आदौ येन हता किशोरवयसि श्रीराक्षसी ताटका मुक्ता ते वरजाह्रिया तव परं विघ्राणकर्णाकृता। कस्तस्याप्यनयं विधाय सुचिरं जीवेत रे राक्षसा नूनं दाशरथेः शरैः क्षतशिरः श्रेणिः क्षितिं यास्यति॥' (समयादर्श ७६)

पुनः, (घ) भाव कि स्त्री है इसे क्या मारें उसको नकटी-बूची कर दिया और वह कुछ न कर सकी। तब कोई भी उनके साथ अनीति कर कब चिरंजीव रह सकता है?

नोट—३ *'तदपि हृदय नहिं लाज बिसेषी'* इति। भाव कि—(क) लज्जा होती तो सम्मुख जाकर शत्रुसे लड़कर उसको दण्ड देते, यदि तुममें बल था। यथा—*'नाक कान बिनु भगिनि निहारी। छमा कीन्हि तुम्ह धरम बिचारी॥'* (२२; अङ्गदवाक्य) पुनः, (ख) श्रीरामजीका बल तुम्हें मालूम हो गया, उनका सामना करनेका साहस तुम न कर सके तब भी निर्लज्जकी तरह गाल बजाते लज्जा नहीं आती! यथा—*'गाल बजावत तोहि न लाजा। मरु गर काटि निलज कुलघाती। बल बिलोकि नहिं बिहरति छाती॥'* (३१) तुझे तो लज्जासे मर जाना था।

वीरकवि—यहाँ शूर्पणखाकी दशा सामान्य रीतिसे कहकर प्रस्तुतमें यह जनाया कि रामचन्द्रजीके समान बलवान्से तुम्हें वैर न करना चाहिये। यह 'सामान्य निबन्धना अप्रस्तुत अलङ्कार' है। गी० लं० १ में इस उपदेशसे मिलता हुआ उपदेश है—६ (८) देखिये।

दो०—बधि बिराध खरदूषनहि लीला हत्यौ कबंध।
बालि एक सर मार्‍यौ तेहि जानहु दसकंध॥ ३५॥

अर्थ—जिन्होंने विराध और खरदूषणका बधकर खेलसे ही कबंधको मारा और बालिको एक ही बाणसे मारा, हे दशकन्ध! उसे जानते हो? वा उसे जान लो, वा तुम उसको तो जानते ही हो॥*३५॥

टिप्पणी—१ यहाँ विराध और खरदूषणके लिये *'बधि'*, *'कबन्ध'* के लिये *'हत्यौ'* और बालिके लिये 'मार्‍यौ', इस तरह भिन्न-भिन्न शब्दोंका प्रयोग किया है। मन्दोदरीने भय उत्पन्न करनेके लिये ये सब बचन कहे पर वह स्वयं भययुक्त है इसीसे *'बधि,* हत्यो, *मार्‍यौ'* पद दिये।

नोट—१ 'लीला' दीपदेहरीन्यायसे दोनों ओर लगेगा। विराधवध लीलापूर्वक हुआ। यथा—*'मिला असुर बिराध मग जाता। आवतही रघुबीर निपाता॥'* (आ० ७) खरदूषणादिवध लीलासे हुआ, यथा—*'सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक कर्‍यो।''''''''करि उपाय रिपु मारे छन महँ कृपानिधान॥'* (आ० २०) कबन्धका वध यथा—*'आवत पंथ कबंध निपाता।'* (३। ३३। ६) भाव कि ऐसे-ऐसे बलवानोंको खेल-सरीखा बध कर डाला, तब तुम्हारा बल कुछ इनसे अधिक तो है नहीं।—*'खरदूषन मोहि सम बलवंता।'* (३। २३। २), *'बालि एक सर मार्‍यौ, 'बालि बध्यो जेहि एक सर।'* (३२) देखिये। ☞इन नामोंको देकर जनाती है कि ये सब अतुलित बली थे, इन्हें मनुष्य नहीं मार सकता, यथा—*'खरदूषन त्रिसिरा बधेउ मनुज कि अस बरिबंड'* (मारीचवाक्य), *'खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली। बधे सकल अतुलित बलसाली॥'* और *'सो नर क्यों''''''''।'* विराधका वध किसी अस्त्र-शस्त्रसे न हो सकता था, उसे भी मारा। खरदूषणादिको वरदान था कि आपसमें ही लड़कर मर सकते थे, अन्य सबसे अमर थे। वे भी तीन ही दण्डमें मारे गये। कबन्धकी योजन-योजन-भरकी लम्बी भुजाएँ थीं जिससे दूरसे ही वह सबको पकड़कर खा जाता था और इन्द्रके वज्राघातको भी उसने सह लिया था। जो ऐसा बलशाली था वह भी मारा गया। बालिने तो स्वयं तुमको ही काँखमें दाब रखा था, उसको भी उन्होंने मार डाला और एक ही बाणसे, तब तुम्हारी पराजय भी हो ही गयी।

नोट—२ *'तेहि जानहु'*—अर्थात् न जानते हो तो इन प्रमाणोंसे जान लो कि वे मनुष्य नहीं हैं। पुनः, भाव कि बालिने तो परायेका अपराध किया था, कुछ रघुनाथजीका नहीं तब भी उसे मारा और तुमने तो स्वयं उनका ही अपराध किया है तब कैसे बचोगे? यथा—*'बालि बली न बचो पर खोरिहिं क्यों बचिहौ तुम आपनि खोरिहि'*—(रा० चं० प्र० १५। ७)। इन उदाहरणोंद्वारा श्रीरामजीका युद्धबल और बाणप्रताप दिखाया।

---

* 'त्वं वेत्सि स्वमेव नाथ सकलं बाह्वोर्बलं बालिनः श्रीरामस्य नियुक्तमार्गणहतः प्राणैर्विमुक्तः क्षणात्। तस्यैवास्य महात्मनः प्रियतमां हत्वा कुबुद्ध्या गतोर्नूनं ते विधिना कुलक्षयकृते कृत्येयमुत्पादिता॥' (समयादर्श ६९)

'रे नीच! मारीच बिचलाइ हति ताड़का भंजि सिवचाप सुख सबहि दीन्ह्यो।
सहसदसचारि खल सहित खरदूषनहिं पठै जमधाम तैं तऊ न चीन्ह्यो॥
मैं जु कहौं कंत सुनु मंत भगवंत सों बिमुख ह्वै बालि फल कौन लीन्ह्यो।
बीस भुज सीस दस खीस गए तबहिं जब ईसके ईस सों बैर कीन्ह्यो॥' (लं० १८)
'दूषन बिराध खर त्रिसिर कबंध बधे, तालऊ बिसाल बेधे कौतुक है कालिको।
एकही बिसिख बस भयो बीर बाँकुरो जो तोहूँ है बिदित बल महाबली बालिको॥' (लं० ११)
'बालि दलि, काल्हि जलजान पाषान किय, कंत! भगवंत तैं तऊ न चीन्हें॥' (१९)
'बालिहूँ गर्ब जिय माँहिं ऐसो कियो मारि दहपट कियो जमकी थानी।
कहति मन्दोदरी, सुनहि रावन! मतो, बेगि लै देहि बैदेहि रानी॥' (क० लं० २०)

जेहि जलनाथु बँधाएउ हेला। उतरे* प्रभु दल सहित सुबेला॥ १॥
कारुनीक दिनकर कुलकेतू। दूत पठाएउ तव हित हेतू॥ २॥
सभा माँझ जेहि तव बल मथा। करि बरूथ महुँ मृगपति जथा॥ ३॥

अर्थ—जिसने खेलसे ही समुद्रको बँधा लिया और जो प्रभु सेनासहित सुवेलपर उतरे॥ १॥ उन सूर्यकुलकी ध्वजा और करुणामय (दयालु) श्रीरामचन्द्रजीने तेरे कल्याणके लिये ही दूत भेजा॥ २॥ जिस (दूत) ने बीच सभामें तुम्हारे बलको उसी तरह मथ डाला जैसे हाथियोंके झुंडमें सिंह हो। अर्थात् जैसे हाथियोंके झुंडको सिंह मथ डालता है॥ ३॥

नोट—१ समुद्र-बन्धन अद्भुत कार्य है, रावण भी सुनकर सहम गया था। इसीसे सबने इसे कहा है॥ ५॥ १०, ६। २। देखिये। **'उतरे प्रभु दल सहित सुबेला'** इति। यही बात प्रहस्तने भी कही है, यथा—***'जेहिं बारीस बँधाएउ हेला। उतरेउ सेन समेत सुबेला॥'*** (९। ५) एक तो साधारण बात भी इसे ले सकते हैं कि सुबेलपर आकर टिके। पर इसमें भी कुछ आश्चर्यजनक या रावणकी हानिकी बात अवश्य है, नहीं तो इसके कहनेकी आवश्यकता न थी। पूर्व बताया जा चुका है कि राजनैतिक विचारसे शत्रुका सुवेल पर्वतको अपने अधिकारमें कर लेना लङ्काके लिये बड़ा हानिकारक था। अतः इस कार्यसे भी श्रीरामजीकी जय सम्भावित होती है। दूसरे, सुन्दरकाण्डमें लिखा जा चुका है कि हनुमान्‌जी एक विशाल पर्वत देखकर उसपर भय छोड़कर चढ़ गये थे। ***'तापर धाइ चढ़ेउ भय त्यागे"""प्रभु प्रताप जो कालहि खाई॥'*** (५। ३। ८-९) देखिये। यह सुवेल ही वह पर्वत था, अनुमान यही कहता है। मा० म० और महादेवदत्तजीके मतानुसार इसपर रावणकी ओरसे कालका पहरा रहता था। कालको कैद कर लेनेपर उसने रावणसे प्रार्थना की थी कि आप मुझे कोई स्थान रहनेका दें, जिसपर रहकर मैं आपके नगरकी रक्षा शत्रुओंसे करता रहूँ। तब रावणने यही स्थान बताया कि इसपर रहो जो समुद्र पार करके इधर आवे उसको खा लो। दूसरी कथा यह है कि इसी पर्वतपर ब्रह्माका एक सिर जब शिवजीने काट लिया तब ब्रह्माने शाप दिया था कि जो इस पर्वतपर चरण रखेगा उसका सिर फट जायगा और काल-व्याल उसे ग्रास कर लेगा। ब्रह्मशाप और रावण-प्रेरित काल व्यालरूपसे इसपर वास करते थे।

इसका प्रमाण सम्पादकको अभी कहीं मिला नहीं है। यदि यह ठीक है तो इसके अनुसार यह भाव ध्वनित होता है कि जिस पर्वतपर कालका पहरा था उसीपर उन्होंने डेरा डाला और कालने उनका भक्षण न किया, यह आश्चर्य है और इससे निश्चय है कि वे कालके भी भक्षक हैं। हनुमान्‌जीसे सब पूर्व सुन भी चुके हैं कि ***'जाके डर अति काल डेराई। सो सुर असुर चराचर खाई॥'*** (५। २२) वह अब सबको स्मरण हो रहा है। इस कथाकी सत्यता शिवोक्त वचनोंसे अनुमानित होती है जो उन्होंने

* उतरेउ—(का०)

सुं० ३ (८-९) में कहे हैं—*'सैल बिसाल देखि इक आगे। तापर धाइ चढ़ेउ भय त्यागे॥ उमा न कछु कपि की अधिकाई। प्रभु प्रताप जो कालहि खाई॥'*

☞इस प्रकार 'समुद्र-बन्धन और सुवेल-निवास' भी रामप्रताप दिखानेके लिये कहे।—*'श्रीरघुबीर प्रताप ते सिंधु तरे पाषान'* और *'प्रभु प्रताप जो कालहि खाई॥'*

नोट—२ *'कारुनीक दिनकर कुलकेतू।'* इति। (क) 'कारुणीक' का भाव कि यह न समझो कि वे तुमसे डरते हैं, इससे दूत भेजते हैं, यथा—*'जौं पै समर सुभट तव नाथा। तौ बसीठ पठवत केहि काजा॥ रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा॥'* (२८। ६-७) वरन् वे करुणामय हैं, तुमपर करुणा-दया करके तुम्हारे हितके लिये उन्होंने दूत भेजा कि अब भी समझ जाय, तुमसे युद्धमें उन्हें क्या यश मिल सकता है! इन वचनोंमें अङ्गदके वचनोंकी छाया है। यथा—*'तव हित कारन आएउँ भाई',* और *'दसमुख मैं न बसीठी आएउ। अस बिचारि रघुबीर पठाएउ॥ बार बार अस कहइ कृपाला। नहिं गजारि जसु बधे सृकाला॥'* (३०। २-३)

पां०—दिनकर कुलकेतुका भाव कि जैसे सूर्यका प्रकाश सबपर बराबर रहता है वैसे ही उनकी करुणा सबपर समान है।

नोट—३ *'सभाँ माँझ जेहि तव बल मथा।'* इति। यह उनके दूसरे दूतका बल दिखाया। भाव कि प्रथम हनुमान्‌जीने सभामें बलका उपमर्दन नहीं किया वरन् सभाके बाहर अन्य निशाचरोंके वध और लङ्कादहनद्वारा बलगर्व चूर्ण किया था और इसने तो बीच सभामें तुम्हें भी ललकारा और तुम कुछ कर न सके, इस प्रकार इन शब्दोंसे 'अङ्गद' को सूचित किया। (विशेष भाव ऊपर आ चुके हैं।) मिलान कीजिये—*'दूसरो दूत पन रोपि कोप्यो सभा खर्ब कियो सर्बको गर्ब थाको॥'* (क० ६। २०), *'तुम्हैं बिद्यमान जातुधान मंडली में कपि कोपि रोप्यो पाँउ सो प्रभाव तुलसीस को॥'* (क० २२), *'बालि-बलसालि-को सो काल्हि दाप दलि कोपि रोप्यो पाँउ चपरि चमू को चाउ चाहिगो॥ सोई रघुनाथ कपि साथ पाथनाथ बाँधि आए नाथ। भागे ते खिरिरि खेह खाहिगो। तुलसी गरब तजि मिलिबेको साज सजि देहि सीय न तौ पिय पाइमाल जाहिगो।'* (क० लं० २३)—ये सब इस चौपाईकी व्याख्या समझिये। भाव यह कि गर्व छोड़कर श्रीजानकीजीको देकर शरणमें जानेसे ही तुम्हारे प्राण बच सकते हैं, अन्यथा नहीं।

वि० त्रि०—*'सभा माँझ'''''''जथा'* इति। ऊपर जो कहा है कि *'दूत पठाएउ तव हित हेतू'* उसीको पुष्ट करती हुई कहती है कि आज जिस भाँति राजसभामें शत्रुके दूतद्वारा तुम्हारी दुर्दशा हुई है, वैसी कहीं सुनी नहीं गयी। उसने दिखला दिया कि जब अपनी सभामें एक दूतद्वारा जो दुर्दशा हुई, उसे तुम रोक न सके तो समराङ्गणमें किस पुरुषार्थकी आशा लगाये बैठे हो। इस भाँति रघुनाथजीने अपने दूतद्वारा तुम्हारी दुर्दशा कराकर तुम्हारा हित किया कि अब भी समझ जाओ कि युद्ध करनेमें तुम्हारा किसी भाँति कुशल नहीं है पर तुम्हारी बुद्धि ऐसी मारी गयी है कि *'रिपुसन प्रीति करत नहिं लाजा'* कह रहे थे।

प० प० प्र०—इस अर्धालीके दोनों चरणोंमें एक-एक मात्रा कम है जिससे पढ़नेमें गति लय-भंग होता है। इससे जनाया कि मंदोदरीकी वाणी भी रुद्ध हो गयी। भगवान्‌की कारुणिकता और रावणका अहंकार विचार कर वह भयग्रस्त हो गयी, उसके मनमें विषाद छा गया। अतः आगे वह कड़े वचन छोड़कर विनय करती है कि *'तेहि कहँ पिय पुनि पुनि नर कहहू। मुधा मान ममता मद बहहू॥', 'अहह कंत'* में *'अहह'* शब्दसे आगे अपना विषाद ही प्रकट कर रही है। धीरे-धीरे वचनकी कटुता, कठोरता, भयानकता कम होती चली है।*'सोई' 'नाथ'* इत्यादि सम्बोधनोंसे तथा *'पिय'* शब्दका बार-बार प्रयोग यही बताता है। कंत शब्दसे उपक्रम किया और *'पिय' 'नाथ'* शब्दोंसे उपसंहार भी शृङ्गाररसयुक्त शब्दोंमें ही किया गया। बीचमें वीर, करुणा, अद्भुत और भयानक रसोंका आश्रय लेकर उपदेश किया और अन्तमें इन सभी रसोंकी परिणति मानसकी विशेषतानुसार *'कृपासिंधु रघुनाथ भजि नाथ बिमल जस लेहु'* से भक्ति-रसमें ही हुई।

अंगद हनुमत अनुचर जाके। रन बाँकुरे बीर अति बाँके॥ ४॥
तेहि कहँ पिय पुनि पुनि नर कहहू। मुधा मान ममता मद बहहू॥ ५॥

शब्दार्थ—**बहहू**=बहना जैसे नदीके प्रवाहमें। दूसरे, 'वहन करना'=बोझ सिरपर लादना, यथा—'***भार बहहिं खरबृंद।***' (२९)

अर्थ—रणमें बाँके और अत्यन्त विकट वीर श्रीअङ्गद और हनुमान्‌जी जिनके सेवक हैं, उनको, हे प्रिय! तुम बारम्बार मनुष्य कहते और झूठे ही मान, ममता और मदमें बह रहे हो एवं उनका बोझा ढो रहे हो॥ ४-५॥

नोट—१ '***अंगद हनुमत अनुचर जाके।*** ....' इति। (क) अङ्गदका नाम प्रथम दिया क्योंकि यह तो अभी-अभी ही आया था। दूसरे, इसने मध्य सभामें इसका मान मर्दन किया है जिससे वह लङ्कादहन भी इसके आगे भूल गया होगा। अङ्गदके कर्मने रावणको रुला दिया यह बात '***गयउ भवन बिलखाइ***' से स्पष्ट होती है। लङ्कादहनसे भी ऐसा शोक न हुआ था। पुनः, अङ्गद युवराज हैं इससे भी प्रथम कहा।

पं०—प्रथम कहा कि उनसे मिलनेमें मानकी हानि नहीं है क्योंकि वे दिनकरकुलकेतु हैं और अब कहती है कि यदि तुमको बलका गर्व है तो तुम उनके दूतोंका ही बल देख चुके हो कि वे कैसे बाँके वीर हैं तब उनका बल कैसा होगा?

वै०—'***रन बाँकुरे***' अर्थात् रणमें जहाँ शूरोंसे प्रचारकर युद्ध करना पड़े वहाँ अत्यन्त बाँके वीर हैं।

नोट—२ '***तेहि कहँ पिय पुनि पुनि नर कहहू***' इति। (क) प्रथम '***कौतुक सिंधु नाँघि तव लंका।*** ....***कहाँ रहा बल गर्ब तुम्हारा।***' (३५। ४-६) में हनुमान्‌जीका बल कहा, फिर अङ्गदका बल कहा। 'इस कथनसे क्या सार निकलता है, ये वचन क्यों कहे? यही यहाँ कहती है। भाव यह कि जिसके दूत ऐसे हों, सेवक ऐसे हों, वह मनुष्य कब हो सकता है? बली, रण-बाँकुरा वीर एक निर्बल स्वामीकी सेवा कभी नहीं करेगा। उनके सेवकोंका बल तुम सबसे अधिक है, तुम्हारा बल इन्द्रादि देवताओंसे अधिक है और मनुष्य तो कोई देवतासदृश भी बली नहीं हो सकते। अतएव यह सिद्ध है कि वे देव-दनुज सबके स्वामी हैं, '***अग जगनाथ***' हैं तभी तो अङ्गद-हनुमान्‌ने उनकी सेवकाई ग्रहण की। ऐसा ही कुम्भकर्णने कहा है—'***हैं दससीस मनुज रघुनायक। जाके हनूमानसे पायक॥***' (६२। ३) (ख) '***पुनि पुनि***'—अङ्गद-रावण-संवादमें सुन चुकी है, हृदयमें वही बसा हुआ है, यथा—'***नर कर करसि बखान***', '***भूप सुजस खल मोहि सुनावा,***' '***नरके कर आपन बध बाँची।*** ....', '***जिन्हके बलकर गर्ब तोहि ऐसे मनुज अनेक।***' (३०) (ग) '***नर कहहू***' अर्थात् वे नर नहीं हैं, तुम नर मानते हो। वे अगजगनाथ हैं, जैसा मैं कहती हूँ। वाल्मीकीयमें निशाचरियोंने भी इसी आशयको यों कहा है—'**रुद्रो वा यदि वा विष्णुर्महेन्द्रो वा शतक्रतुः। हन्ति नो रामरूपेण यदि वा स्वयमन्तकः॥**' (६। ९४। २४)

नोट—३ '***मुधा मान ममता मद बहहू***' इति। (क) मान, ममता और मद नदियाँ हैं वा भार हैं। इनमें न बहे जाओ वा इनका बोझा न ढोओ। (ख) मनुष्य बार-बार कहना, यही मान-ममता-मदमें बहना है—(पं०) ☞ रावणको ये तीनों हैं, यथा—'***अति अभिमान त्रास सब भूली।***' (३७। २), '***चलेउ सभा ममता अधिकाई।***' (सुं० ३७) और '***सहज असंक सुलंकपति सभा गएउ मद अंध।***' (१६) इसीसे इसे इनके त्यागका उपदेश लोगोंने किया है, यथा—'***सुनहु मान तजि मोर सिखावन***' (हनुमान्‌जी); '***परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस***'—(विभीषण); '***महामोह ममता मद त्यागू***' (कालनेमि) और '***होहु मान तजि अनुज इव प्रभु पद पंकज भृङ्ग***'—(लक्ष्मणजी)

'***मान***' यह कि हम त्रैलोक्यविजयी हैं, देव, दानव, दैत्य, राक्षस सब हमारी नीच टहल करें, काल हमारे वशमें है इत्यादि, सो हम मनुष्यसे डरकर मेल करें? '***ममता***' यह कि मेरे ही बाहुबलके अधीन सुरासुर हैं, यह सब जब मेरे पक्षके हैं तब मेरी पराजय क्यों होगी? '***मद***' प्राप्त वस्तुका नशा। मान और मदमें भेद यह है कि अपने आदर-बड़ाईकी चाह मान है। दूसरेको अपने समान न समझना, तिरस्कार करना मद है।

मान, मद, ममता, छोड़ना कठिन है, ऐश्वर्य पाकर मानमद बिरले ही किसीको नहीं होता। यथा—'***श्रीमदबक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि। मृगलोचनिके नयन सर को अस लागि न जाहि॥***' (७। ७०), '***कोउ***

न मान मद तजेउ निबेही' 'ममता केहि कर जसु न नसावा' ये राम-कृपासे ही छूट सकते हैं अन्यथा नहीं, यथा—*'छूट न राम कृपा बिनु नाथ कहउँ पद रोपि।'* (७। ७१)

अहह कंत कृत राम बिरोधा। काल बिबस मन उपज न बोधा॥६॥

अर्थ—हा कान्त! शोककी बात है कि तुमने श्रीरामचन्द्रजीसे वैर किया, कालके पूरे वशमें होनेसे तुम्हारे मनमें ज्ञान उत्पन्न नहीं होता॥ ६॥

नोट—१ *'अहह कंत'* इति। इससे सूचित किया है कि वह बराबर रावणके मुखको देखती जाती रही थी कि मेरे कथनका इसपर कुछ प्रभाव पड़ता है या नहीं। उसके मुखकी चेष्टासे वह समझ गयी कि सारा उपदेश व्यर्थ ही गया, उसको किंचित् नहीं लगा। अत: उसे बड़ा कष्ट हुआ और उसके मुँहसे कष्टसूचक *'अहह'* शब्द निकल पड़ा॥ २॥ **'कंत!'** का भाव कि हमारे सौभाग्य-सुखके आप बढ़ानेवाले होकर भी राम-बिरोध करते हैं, ये दोनों बातें असंगत हैं। क्योंकि रामविमुखको सुख कहाँ? यथा—*'अन्धकारु बरु रबिहि नसावइ। राम बिमुख न जीव सुख पावइ॥ हित ते अनल प्रगट बरु होई। बिमुख राम सुख पाव न कोई॥'* (७। १२२। १८-१९) राम-विरोधसे मरण निश्चित है, यथा—*'राम बिरोध न उबरसि सरन बिष्नु अज ईस।'* (५। ५६) अतएव *'काल बिबस'* कहा। और कालके वश है अत: मनमें बोध नहीं उत्पन्न होता, बुद्धि जाती रही, यथा—*'मरनकाल बिधि मति हरि लीन्ही।'* (अ० १६२। ३)

नोट—२ *'अहह कंत कृत राम बिरोधा'* का भाव कि खेद है कि तुम विरोधसे अपना बुरा होगा या भला यह नहीं समझते। यथा—*'अहह तात दारुनि हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभु न हानी॥'* (१। २५८। २) बहुत योद्धाओंके मारे जानेपर घर-घर विलाप करती हुई निशिचरियोंने भी कहा है कि रावण जनकात्मजा सीताको नहीं पा सकता, व्यर्थ ही अक्षय और बलवान् रामचन्द्रजीसे वैर बाँधा है। यथा—**'न च सीतां दशग्रीवः प्राप्नोति जनकात्मजाम्। बद्धं बलवता वैरमक्षयं राघवेण च॥'** (वाल्मी० ९५। १२)

पु० रा० कु०—रामसे विरोध करते हो, यह बड़े खेदकी बात है। कालके वश कैसे जानती हो, उसपर आगे कहती है कि *'कालदंड········।'*

काल दंड गहि काहु न मारा। हरै धर्म बल बुद्धि बिचारा॥७॥
निकट काल जेहि आवत* साँई। तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहि नाँई॥८॥

अर्थ—काल किसीको दण्ड लेकर नहीं मारता वरन् वह धर्म, बल, बुद्धि और विचारको हर लेता है॥ ७॥ हे स्वामिन्! काल जिसके निकट आता है उसे तुम्हारे ही समान भ्रम हो जाता है। अर्थात् हितको अनहित, ईश्वरको मनुष्य, इत्यादि उलटी समझ हो जाती है॥ ८॥

नोट—१ *'काल दंड गहि काहु न मारा'* अर्थात् वह स्वयं मूर्तिमान् होकर किसीका सिर नहीं काटता, उसका पराक्रम इतनेमें ही जाना जाता है कि उसके वश होनेपर प्राणी अर्थका अनर्थ करता है अर्थात् उसे सब विपरीत ही देख पड़ता है, यथा—**'न कालः खड्गमुद्यम्य शिरः कृन्तति कस्यचित्। कालस्य बलमेतावद्विपरीतार्थदर्शनम्॥'** (सुभाषितरत्नभाण्डागार सामान्यनीतिप्रकरण ३३४) पुन: यथा—**'विनाशकाले विपरीतबुद्धिः।'** इसमें ध्वनि यह है कि कालको तुमने वश कर लिया होता तो तुम्हारे बल-बुद्धि आदिका हरण न हो सकता। लङ्का दहनके समय तुम्हारा बल, बुद्धि, विचार कुछ न काम आया—यह कालका पराक्रम है।

नोट—२ *'हरै धर्म बल बुद्धि बिचारा'* अर्थात् चारोंका हरण होता है तब मृत्यु होती है। रावणमें चारोंका हरण हुआ। यथा क्रमसे—(१) *'कह कपि धरमसीलता तोरी। हमहु सुनी कृत परत्रिय चोरी॥ देखी नयन दूत रखवारी। बूड़ि न मरहु धर्मब्रत धारी॥ कान नाक बिनु भगिनि निहारी। क्षमा कीन्ह तुम्ह धरमु बिचारी॥'* (२२। ५-७), (२) *'जानेउँ तव बल अधम सुरारी। सूने हरि आनेहि परनारी॥'* (३०। ६), *'इमि कुपंथ पग देत खगेसा। रह न तेज तन बुधि बल लेसा॥'* (आ० २८। १०), (३) *'तव उर कुमति बसी बिपरीता।'*

* आवै (का०, मा० म०)।

(५।४०।७) (४) सदसद्का विवेक विचार है। यह विचार भी न रह गया। यथा—*'हित अनहित मानहु रिपु प्रीता।'* (५।४०।७) श्रीरामजीके स्वरूपको नहीं समझता, अतः विचार-रहित कहा।

नोट—३ *'निकट काल जेहि आवत साईं। तेहि……।'* इति। यहाँ मन्दोदरीकी वाक्यपटुता देखिए। वह यह नहीं कहती कि तुम्हारा काल आ गया वरन् यों कहती है कि जिनका काल निकट आता है उनको ऐसा ही भ्रम होता है जैसे आपको हो गया है। यथा—*'मरन काल बिधि मति हरि लीन्ही।'* (अ० १६२) यहाँ 'अनुमान प्रमाण अलङ्कार' है।

पु० रा० कु०—*'साईं'* का भाव कि हमारे तो आप स्वामी ही हैं; पर जिसका काल आता है उसको ऐसा ही मोह होता है।

पं०—भाव कि जैसे यह अस्तव्यस्त बातें करता है और दूसरोंको बावला समझता है अपनेको नहीं, वैसे ही तुम अपना भ्रम नहीं समझते। परन्तु देखनेवाले तो लख ही लेते हैं। वैसे ही मैंने लख लिया। आगे बताती है कि कैसे जान लिया कि भ्रम है। ☞यहाँ मन्दोदरीने कालके धर्म बताये कि वह क्या करता है। भक्तको काल नहीं व्यापता, इसका भाव भी इससे स्पष्ट हो गया। अर्थात् उसकी बुद्धि, धर्म आदिका हरण नहीं होता। यथा—*'कबहूँ काल न व्यापिहि तोही। सुमिरेसु भजेसु निरंतर मोही॥'* (७।८८।१) तथा। *'काल धर्म नहि व्यापहिं ताही। रघुपति चरन प्रीति अति जाही॥'* (७।१०४।८)

दो०—दुइ सुत मारे दहेउ पुर अजहुँ पूर पिय देहु।
कृपासिंधु रघुनाथ* भजि नाथ बिमल जस लेहु॥ ३६॥

अर्थ—हमारे दो पुत्र मारे गये और नगर जल गया। हे प्राणप्रिय! अब भी (इस कमीकी) पूर्ति कर सकते हो। हे नाथ! दयासागर रघुनाथजीका भजन करके निर्मल यश लीजिये॥ ३६॥

नोट—१ *'दुइ सुत मारे।'* भाव कि तुम कहते हो कि काल हमारे वशमें है तो फिर एक छोड़ दो-दो पुत्र कैसे मार डाले गये। *'दहेउ पुर'* अर्थात् काल वशमें था तो नगर जलानेवालेको उसने क्यों न खा लिया। इससे स्पष्ट है कि काल तुम्हारे वशमें नही हैं, तुम उसके वशमें हो।

नोट—२ *'अजहुँ पूर पिय देहु'* इति। इसके लोगोंने कई प्रकारसे अर्थ किये हैं, यथा—अब भी उत्तर दो। अर्थात् इसका समाधान तुम्हारे पास क्या है कि पुरुषार्थ होते हुए भी तुमने उनकी रक्षा न की? (२) अब भी उत्तर देते हो। अर्थात् इतनेपर भी बराबर डींग ही मारते जाते हो (३) अब भी पूरा पड़ सकता है। अर्थात् अब भी कुछ गया-गुजरा नहीं है, दो लड़के ही मरे हैं। लड़के फिर भी हो सकते हैं, नगर भी पुनः सुधर सकता है। यह कहकर उसका उपाय बताती है कि *'कृपासिंधु……।'* ☞*'पूर'* शब्दका प्रयोग ग्रन्थमें कई बार हुआ है, यथा—*'तिन्हहि बिरोधि न आइहि पूरा।'* (आ० २५।८), *'नाथ न पूर आव एहि भाँती।'* (९।१; प्रहस्तवाक्य), *'सुनु मतिमंद देहि अब पूरा। काटे सीस कि होइअ सूरा॥'* (२९।९; अङ्गदवाक्य), *'पिय पूरो आयेउ अब काहि कहु करि रघुबीर बिरोध'*—(गी० लं० १)। इस तरह 'पूर देना'=पूर्ति कर देना।

नोट—३ *'कृपासिंधु'* का भाव कि वे अबतक बराबर कृपा करते आये और अब भी तुमपर कृपा करेंगे। दो दूत भेजे, छत्रादि काटकर एवं सेतु बाँधकर अपनेको जना भी दिया, घर बैठे दर्शन देने आये, इत्यादि, नहीं तो मुकुटके साथ सिर भी काट डालते। यथा—'**मुक्ता शीर्षपरम्परा प्रभुतया छिन्त्वातपत्राणि ते। रामेणाद्य पुलस्त्यवंशदहने कारुण्यमाविष्कृतम्॥**' (समयादर्श ६८) मन्दोदरीको कृपाका पूर्ण विश्वास है, हनुमान्‌जीके वचन उसके हृदयमें गढ़ गये हैं, इसीसे उसने कृपावाचक शब्द बारम्बार कहे हैं—*'नाथ दीनदयालु रघुराई।'* (७।१), *'सोइ रघुबीर प्रनत अनुरागी॥'* (७।५), *'आएउ करन तोहि पर दाया।'* (७।७), *'कारुनीक दिनकर कुलकेतू। दूत पठाएहु तव हित हेतू॥'* (३६।२), *'कृपासिंधु रघुनाथ भजि……॥'*

* रघुपतिहि (का०, मा० म०)

(३६) और रावणवधपर भी ऐसा ही कहा है—*'अहह नाथ रघुनाथ सम कृपासिंधु नहिं आन। जोगिबृंद दुर्लभ गति तोहि दीन्हि भगवान॥'* (१०३)

नोट—४ *'बिमल जस लेहु'। 'सुजस होइ तिहूँ पुर अति पावन॥'* और *'उभय प्रकार सुजसु जग तोरा।'* (१०। १) में इसके भाव आ चुके हैं। ऋषि-कुलमें रावण कलङ्करूप हो रहा है, भगवत्-सम्मुख होनेसे ऋषिकुलका निर्मल यश बना रह जायगा।—गी० लं० १ में मन्दोदरी कहती है—*'मुनि पुलस्ति के जस महँ कत कलंक हठि होहि। और प्रकार उबार नहीं कहुँ मैं देख्यों जग टोहि॥'* (८) भजनसे सब बड़ाई करते हैं। यथा—*'धन्य धन्य तैं धन्य बिभीषन। भयउ तात निसिचरकुल भूषन॥ बंधु बंस तैं कीन्ह उजागर। भजेहु राम सोभा सुखसागर॥'* (६३। ८। ९) यहाँ 'चौथी निदर्शना' है।

यहाँ प्रश्न होता है कि पतिव्रताने अपने पतिको कठोर वचन कैसे कहे? उत्तर यह है कि—मन्दोदरीने प्रथम तीन उपदेशोंमें पतिका अपमान नहीं किया, जैसा कुछ पतिव्रताको चाहिये वैसा ही किया। यद्यपि उसका एक पुत्र प्रथम ही मारा गया, तथापि वह पतिपर रोष नहीं प्रकट करती। सब रावणकी निन्दा करते हैं और वह जानती है तो भी वह पतिसे प्रेमपूर्वक बड़ी ही नम्रताके साथ प्रार्थना करती है। उसके सौभाग्यका चिह्न गिर जाता है, सब जानते हैं कि यह बड़ा अपशकुन है। फिर भी वह विनती ही करती है। प्रत्येक बार नये ढंगसे उपदेश करती है और आशा करती है कि अबकी बार अवश्य बोध होगा; वह शत्रुता छोड़ देगा। बस फिर तो अहिवात अचल है। तीन बार समझानेपर भी न समझनेपर पतिके प्राण बचानेके विचारसे, उसके परम हितके लिये अब उसने यही उपाय निश्चय किया कि अब डाँट-फटकार और मान-मर्दनसे ही काम लूँ। इससे वह युद्धके विचारसे बाज आयेगा, सीताको दे देगा और शरण होकर विमलयश प्राप्त करेगा। पतिके हितार्थ यह सब किया गया। यह उसका अन्तिम प्रयत्न है। इससे सफलता न होनेपर वह निश्चय कर लेती है कि अब वह काल-विवश है; और फिर उसने कभी इस विषयकी चर्चा न चलायी।

मुं० राजबहादुरजी लमगोड़ा—पाठकोंको यह तो मालूम ही होगा कि इस अवनति कालमें भी आर्य स्त्रियाँ सेवा, कृतज्ञता और सहिष्णुतामें पत्नीकी हैसियतसे अपने पत्नीत्वके स्वत्वपर विवाद करते हुए अपने स्वार्थसे लगाव रखनेवाली प्रार्थना कभी अपनी जिह्वापर नहीं आने देतीं। परंतु मन्दोदरीकी यह अन्तिम चेष्टा है। पतिको पापसे बचानेका कठिन प्रश्न उपस्थित है। पतिका गर्व भी कुछ सहायता नहीं करता। (रावणके मुखपर दृष्टि पड़ते ही एवं हनुमान्-रावण तथा अङ्गद-रावण संवादसे) मन्दोदरीके मस्तिष्कमें यह भाव दौड़ गया कि वासनाके दास रावणको प्रतिष्ठा और अहङ्कारका भाव भी चला गया, और अब उसको अपनी राजसी मर्यादाकी भी परवाह नहीं रही। रानी तड़प जाती है; और अत्यन्त बुद्धिमत्ताके साथ, जिसमें कुछ निराशाकी झलक भी है, अपनी बातोंका ढंग बदलती है और अपने पतिको इस पापसे वञ्चित रखनेके लिये जी तोड़कर अन्तिम चेष्टा करती है। वह विवश होकर अन्तिम उपायका अवलम्बन करती है और पत्नीत्वके स्वत्वका स्मरण दिलाते हुए जोरके साथ (वे वचन) कहती है।

☞ प्रथम तीन उपदेशोंपर जो-जो उत्तर रावणने दिये उनका प्रत्युत्तर पतिव्रता मन्दोदरीने न दिया। यह अन्तिम प्रयत्न पतिको कालसे बचानेके लिये है। अत: इस बार तीनों उत्तरोंका प्रत्युत्तर दिया है।

उत्तर	मन्दोदरीका प्रत्युत्तर
१ *जो आवइ मरकट कटकाई जिअहिं बिचारे निसिचर खाई।'* (५। ३७)	*'दुइ सुत मारे दहेउ पुर अजहु पूर पिय देहु', 'रखवारे हति बिपिन उजारा॥', 'अब पति मृषा गाल जनि मारहु॥' 'सूपनखा कै गति तुम्ह देखी। तदपि हृदय नहीं लाज बिसेषी॥'* —(वह तो सीताको खाने गयी थी, क्यों न खा लिया?)
२ *'कंपहिं लोकप जाकी त्रासा।'* (५। ३७)	*'आएउ कपि केहरी असंका। देखत तोहि अच्छ तेहि मारा॥', 'सभा माँझ जेहि तव बल मथा॥'*

तुम कहते हो कि देवता काँपते हैं और यहाँ तो प्रत्यक्ष दो वानर 'अशंक' आकर तुम्हारा बल

मथ गये। दूतोंके ही सामने तुम ऐसे सिद्ध हुए जैसे सिंहके सामने हाथी हो। इनको क्यों न कँपाया।

उत्तर	मन्दोदरीका प्रत्युत्तर
३ जग जोधा को मोहि समाना।' (६।८।२)	'रामानुज लघु रेख खँचाई। सोउ नहिं नाँघेउ अस मनुसाई॥'; 'बधि बिराध खरदूषनहि लीला हत्यो कबंध। बालि एक सर मार्‍यौ तेहि जानहु दसकंध॥', 'मुधा मान ममता मद बहहू।'
४ 'भुजबल जितेउँ सकल दिगपाला'	'पिय तुम ताहि जितब संग्रामा। जाके दूत केर यह कामा॥' 'जनकसभा अगनित महिपाला। रहे तुम्हउ बल बिपुल बिसाला॥' भंजि धनुष जानकी बिआही। तब संग्राम जितेहु किन ताही॥'
५ 'अहो मोह महिमा बलवाना'	हमको मोह नहीं है, तुमको है—'निकट काल जेहि आवत साँई। तेहि भ्रम होइ तुम्हारेहि नाईं॥'

६ 'सभय सुभाउ नारि कर साँचा। मंगलमहँ भय मन अति काँचा॥', 'सुनु तैं प्रिया बृथा भय माना।' और 'देव दनुज नर सब बस मोरे। कवन हेतु उपजा भय तोरे॥' इनका उत्तर तो यह सारा उपदेश ही है।

मन्दोदरी	अङ्गद आदि
१ 'कंत तजहु कुमतिही'	'मंदमति'
२ 'रामानुज लघु रेख खँचाई। सो नहीं नाँघेउ असि मनुसाई॥'	'जानेउँ तव बल अधम सुरारी। सूने हरि आनेहि परनारी॥'
३ 'सोह न समर तुम्हहि रघुपतिही'	'नहिं गजारि जस बधे सृगाला'
४ 'रखवारे हति बिपिन उजारा। देखत तोहि अच्छ जेहि मारा॥', 'बन बिधंसि सुत बधि पुर जारा।' 'जारि नगर सब कीन्हेसि छारा।'	'सेन सहित तव मान मथि बन उजारि पुर जारि।'
५ 'कहाँ रहा बल गर्ब तुम्हारा'	'सो भुजबल राखेहु उद घाली', 'तदपि न तेहि कछु कृत अपकारा'
६ 'अब पति मृषा गाल जनि मारहु'	'मूढ़ मृषा जनि मारसि गाला'
७ 'मोर कहा कछु हृदय बिचारहु'	'अस बिचारि······॥' अब सुभ कहा सुनहु तुम्ह मोरा'
८ 'बालि एक सर मार्‍यौ'	'सो नर क्यों दसकंध बालि बध्यो जेहि एक सर'
९ 'तेहि जानहु दसकंध'	'एक कहत मोहि सकुच अति रहा बालिकी काँख'
१० 'पति रघुपतिहि नृपति जनि मानहु'	'राम मनुज कस रे सठ बंगा'
११ 'सूपनखा कै गति तुम्ह देखी।' तदपि हृदय नहिं लाज बिसेषी॥'	'कान नाक बिनु भगिनि निहारी। छमा कीन्ह तुम्ह धर्म बिचारी॥ तुम्हरे लाज न रोष······'
१२ 'मुधा मान ममता मद बहहू'	'सुनि मम बचन मान परिहरहू'
१३ 'तेहि कहँ पिय पुनि पुनि नर कहहू'	'सो नर त्यों दसकंध अभागा'
१४ 'कारुनीक दिनकर कुल केतू'	'बार बार अस कहइ कृपाला।······'
१५ 'दूत पठाएहु तव हित हेतू'	'तव हित कारन आएउँ भाई'
१६ 'सुरपतिसुत जानइ बल थोरा······', 'बान प्रताप जान मारीचा।'	'प्रभु सुजस सुनाएउ'
१७ 'अंगद हनुमत अनुचर जाके'	'मैं रघुबीर दूत दसकंधर'
१८ 'अहह कंत कृत राम बिरोधा। काल बिबस मन उपज न बोधा॥'	'जौं खल भएसि राम कर द्रोही। भएसि काल बस खल मनुजादा'
१९ सभा माँझ जेहि तव बल मथा'	'बल बिलोकि बिहरति नहिं छाती'
२० 'कालदण्ड गहि काहु न मारा। हरै धर्म बल बुद्धि बिचारा'	'रे तियचोर' (में धर्म, बल विचार आ गये) 'मंदमति'
२१ 'अजहुँ पूर पिय देहु'	'रे मतिमंत देहि अब पूरा'
२२ 'कृपासिंधु रघुनाथ भजि नाथ······'	'परिहरि चतुराई। भजसि न कृपासिंधु रघुराई'
२३ 'भंजि धनुष जानकी बिआही। तब संग्राम जितेहु'	'हर कोदंड कठिन जेहि भंजा। तोहि समेत नृपदल

किन ताही॥'	*मद गंजा॥'* (हनुमान्‌जी)
२४ *'निकट काल जेहि आवै साईं। तेहि भ्रम होइ''*	*''उलटा होइ कहा हनुमाना। मतिभ्रम तोहि प्रगट मैं जाना॥'*
२५ *'बधि बिराध खरदूषनहि·······'*	*'खरदूषन त्रिसिरा अरु बाली। बधे·······'* (हनुमान्‌जी)
२६ *'जेहि जलनाथ बँधाएउ हेला'*	*'जेहि बारीस बँधाएउ हेला'* (प्रहस्त)
२७ *'उतरेउ प्रभु दलसहित सुबेला'*	*'उतरेउ सेन समेत सुबेला'* ,,
२८ *'कालबिबस मन उपज न बोधा'*	*'काल बिबस कहँ भेषज जैसे'* ,,
२९ *'कंत समुझि मन तजहु कुमतिही'*	*'तव उर कुमति बसी बिपरीता।'* (विभीषण)

मंदोदरीके उपदेश और उनके प्रभाव

१ लंकादहन होनेपर	रहसि जोरि कर पतिपद लागी	मंदोदरी अधिक अकुलानी	बोली बचन नीतिरस पानी	कंत करष हरिसन परिहरहु	दूत करनी कहकर समझाया	'बिहँसा जगत बिदित अभिमानी।' अंतमें हृदय से लगाकर तब गया	भयउ कंत पर बिधि बिपरीता
२ समुद्रबंधन होनेपर	नाइ सिर अंचल रोपा गहिपद कंपित गात	सोहागका भय; अतः उसके किये प्रार्थना	बोली परम मनोहर बानी	सुनहु बचन पिय परिहरि क्रोधा॥	सगुन अवतार और राम-रावण में अंतर कहकर समझाया	'तब रावण मयसुता उठाई'। छातीसे न लगाया। निज प्रभुता कही	मंदोदरी अस मन अनुमाना। काल बिबस उपजा अभिमाना॥
३ छत्र, मुकुट, ताटंक गिरनेपर	सजल नयन कह जुग कर जोरी	मंदोदरी शोच है, सुहाग सोच उर न जाय बस बसेऊ। इसपर ध्यान है		सुनहु प्रान-पति बिनती मोरी॥ कंत राम बिरोध''''	बिश्वरूप, और 'हठ परिहरहू' कहा	हँसकर स्त्रियोंके अवगुण कहे। हृदयसे न लगाया। हँसीमें बात उड़ा दी।	मंदोदरी मन महँ अस ठयऊ। पियहि काल बस अति भ्रम भयऊ।
४ अंगद दौत्य के पश्चात्	तीन बार समझानेसे न समझा अतः खिझ गयी 'तब मंदोदरी निसाचरहि बहुरि कहा समुझाइ॥'		नारिबचन सुनि बिसिष समाना।	कंत समुझि मन तजहु कुमतिही॥ मृषा गाल जनि मारहु।	रावणकी जहाँ जहाँ हार हुई वह सब कही।	अबकी रावण बोलातक नहीं। 'नारि बचन सुनि बिसिष समाना। सभा गयउ उठि'''' ॥'	अहह कंत कृत राम बिरोधा॥ काल बिबस मन उपज न बोधा॥

शत्रुका उत्कर्ष उत्तरोत्तर कहा है। प्रथम 'हरि' कहा, दूसरी बार *'भजहु रघुनाथहि'*, तीसरी बार *'प्रीति करहु रघुबीरपद'* और अन्तमें *'कृपासिंधु रघुनाथ भजि'* पद दिये। उत्तरोत्तर अधिक अक्षर हैं।

मंदोदरीकृत उपदेश
(आवृत्तियाँ)

१—प्रथम बार नीति कही; तब कहा कि *'मोर कहा अति हित हिय धरहू'।* दूसरी बार अवतार कहा तब कहा कि *'सुनहु बचन पिय परिहरि क्रोधा।'* जब विराट्‌रूप कहा तब कहा कि *'सुनहु प्रानपति बिनती मोरी'* और जब डाँट-फटकार की तब डाँटसे ही आरम्भ किया—*'कंत समुझि मन तजहु कुमतिही।'* इति प्रथमावृत्तिः।

२—पहलेमें *'नीतिरस पागे बचन'*, दूसरेमें *'परम मनोहर बाणी'* (सगुण अवतार); तीसरेमें *'नारिबचन'* (विराट्‌रूप वर्णन) और चौथेमें *'नारि बचन बिसिष समाना'* विशेषण कविने मंदोदरीके वचनोंको दिये हैं। इति द्वितीयावृत्तिः।

३—जब नीतिके वचन कहे तब *'पति पद लागी बोली बचन।'* अवतार कहा तब *'कर गहि पतिहि भवन निज आनी।'* और 'बोली०'। जब विराट्‌का वर्णन किया ,तब कवि *'पति'* आदि पद नहीं देते

और चौथी बार कवि रावणके लिये *'पति'* के बदले *'मंदोदरी निसाचरहि बहुरि कहा समुझाइ'* पद देते हैं; क्योंकि किसी प्रकार समझाये नहीं समझता। इति तृतीयावृत्तिः।

४—प्रथम बार हनुमान्‌जीके लौट जानेपर उपदेश हुआ; अतः उसमें हनुमान्‌जीके उपदेशकी छाया है। दूसरा उपदेश विभीषण और शुकसारणके बाद सेतुबंधन होनेपर हुआ। अतः उसमें अवतारका प्रतिपादन है और उनकी छाया है। चौथी बार बालिपुत्रद्वारा रावणमानमर्दन होनेपर उपदेश हुआ। अतः उसमें रावण-अङ्गद-संवादकी छाया है। तीसरा उपदेश छत्रताटंकादि तटनके बाद जब सब सभा रावण और मंदोदरी भयभीत हो गये थे अतः उसमें भयानक विराट्रूपका दर्शन कराया गया। इति चतुर्थावृत्तिः।

५—सेतुबंधके समयसे उत्तरोत्तर मंदोदरीके बर्तावमें भी अन्तर पड़ता गया। प्रथम बार *'रहसि जोरि कर पति पद लागी। बोली बचन नीतिरस पागी॥'* (५। ३६) दूसरी बार *'कर गहि पतिहि भवन निज आनी। बोली परम मनोहर बानी॥........।'* (६। ६। ३, ४) सिर नवाकर अञ्चल पसारकर अन्तमें फिर चरण भी पकड़े। नेत्रोंमें जल भर आया। तीसरी बार केवल हाथ जोड़े और नेत्र सजल हुए। चौथी बार सीधे-सीधे वचन कहने लगी। इति पञ्चमावृत्तिः।

६—प्रथम बार जब प्रभु किष्किन्धामें ही थे तब *'पठवहु कंत जो चहहु भलाई'* कहा। जब सुबेलपर आये तब कहा कि *'रामहिं सौंपि जानकी'* अर्थात् तुम स्वयं सौंप दो। इसपर भी न माना तब सीताके देनेकी चर्चा छोड़ केवल रामबिरोध छोड़ भजन करनेको कहा और अन्तिम बार *'रघुबीरपद'* भजनेको ही कहा। इति षष्ठावृत्तिः।

७—मंदोदरीका सोच उत्तरोत्तर अधिक दिखाया है। लङ्कादहनसे अधिक सेतुबन्धनपर, सेतुबन्धनसे अधिक छत्रमुकुट-ताटंकके गिरनेपर और उससे अधिक अङ्गदपण देखकर। इसीसे पहली बार हाथ जोड़ प्रणाम करके विनती की, दूसरी बार अञ्चल भी रोपा और अन्तमें रोयी, तीसरी बार प्रथम ही रोकर तब विनती की। इति सप्तमावृत्तिः।

८—प्रथम बार नीति कही, दूसरी बार भजन करनेको कहा जिससे सुहाग अचल हो, तीसरी बार सुहाग बना रह जाय यह प्रार्थना की और अन्तमें अपना स्वार्थ न कहकर 'विमल यश' के प्राप्त करनेकी प्रार्थना की। इति अष्टमावृत्तिः।

९—प्रथम बार रावणने यह कहकर समझाया कि स्त्री-स्वभाव है—डरना, तेरे डरनेसे हँसी होगी। दूसरी बार अपनी प्रभुता कहकर समझाया कि डरकी बात नहीं। तीसरी बार उसीकी बातसे उसको समझाया कि जो अङ्ग तूने कहे वे सब मेरे वशमें हैं ही तब तो तुम्हारे ही वचनोंसे हमारा अजित होना सिद्ध है फिर डर क्यों? चौथी बार उत्तर क्या देता वह तो बीती और देखी हुई बातें थीं। इति नवमावृत्तिः।

१०—उपदेश न माननेपर मंदोदरीपर उत्तरोत्तर अधिक बुरा प्रभाव पड़ा। पहली बार न माननेपर केवल चिन्ता हुई—*'मंदोदरी हृदय कर चिंता। भयउ कंतपर बिधि बिपरीता॥'* दूसरी बार न माना तब *'मंदोदरी हृदय अस जाना। काल बिबस उपजा अभिमाना॥'* तीसरी बार मनमें निश्चय कर लिया कि कालवश है—*'मंदोदरी मन महँ अस ठयऊ। पियहि कालबस मतिभ्रम भएऊ॥'* और चौथी बार उससे कह दिया कि कालवश हो। इति दशमावृत्तिः।

११—जैसे-जैसे मन्दोदरीने प्रत्येक बार रामविरोध छोड़नेको कहा तैसे-तैसे रावणने उसका उत्तरोत्तर मान कम किया। प्रथम बार हँसकर हृदयसे लगाया।—*'अस कहि बिहँसि ताहि उर लाई। चलेउ सभा.....'॥* दूसरी बार *'तब रावन मयसुता उठाई',* हृदयसे न लगाया। तीसरी बार स्त्रियोंके अवगुण कहे और चौथी बार बोलातक नहीं वरन् *'नारि बचन सुनि बिसिष समाना। सभा गएउ उठि........॥'* इति एकादशावृत्तिः।

नारि बचन सुनि बिसिष समाना। सभा गएउ उठि होत बिहाना॥ १॥
बैठ जाइ सिंघासन फूली। अति अभिमान त्रास सब भूली॥ २॥

अर्थ—स्त्रीके बाण-सरीखे वचन सुनकर वह सबेरा होते ही उठकर सभामें चला गया॥ १॥ और सारा डर भुलाकर अत्यन्त अभिमानसे फूलकर सिंहासनपर जा बैठा॥ २॥

नोट—१ और बार रावण मंदोदरीको समझाता था, उत्तर देता था; पर अबकी बार कुछ उत्तर न दिया। कारण कि पूर्व तीन उपदेशोंमें केवल भय-दर्शन और रघुनाथजीके स्वरूपका वर्णन ही अधिक

रहा है; रावणका मानमर्दन उनमें न था। और इस अन्तिम उपदेशमें मंदोदरीने इसके बलगर्वको चूर्ण करनेके लिये उसकी कलई खोली, सच्ची-सच्ची सब घटनाएँ कहीं, जहाँ-जहाँ उनका मानमर्दन हुआ था और जिसे दोनों जानते थे—इसका उत्तर वह क्या दे सकता था?

२—'*मंदोदरी रावनहि बहुरि कहा समुझाइ॥*' (३४ उपक्रम ओर '*नारि बचन सुनि*' उपसंहार है। '*साँझ जानि""भवन गयउ॥*' (३४) उपक्रम और '*सभा गएउ उठि*' उपसंहार है।

नोट—३ '*त्रास सब भूली*' से सूचित किया कि अङ्गद्वारा मानमर्दन होनेपर भय उत्पन्न हो गया था और स्त्रीके जले-कटे वचनोंसे त्रास और भी बढ़ गया था। वह सब त्रास अब जाता रहा। त्रास भूलनेका कारण '*अति अभिमान*' है। '*अति अभिमान*' होनेपर शत्रुका भय हृदयमें नहीं घुसने पाता, यथा—'*अस कहि चला महा अभिमानी। तृन समान सुग्रीवहि जानी॥*' (४। ८। १)

मंदोदरी कृत चतुर्थ उपदेश समाप्त हुआ

इहाँ राम अंगदहि बोलावा। आइ चरन पंकज सिरु नावा॥ ३॥
अति आदर समीप बैठारी। बोले बिहँसि कृपाल खरारी॥ ४॥

अर्थ—इधर श्रीरामचन्द्रजीने अङ्गदको बुलवाया। उसने आकर चरण-कमलोंमें सिर नवाया॥ ३॥ बड़े ही आदरसे पास बिठाकर कृपालु खरारि हँसकर बोले॥ ४॥

नोट—१ '*इहाँ*' से जनाया कि अब प्रसंग बदल रहे हैं। (क) अङ्गदका रावणका मानमर्दनकर लौटना कहकर, मंदोदरीका रावणको उपदेश कहने लगे थे, अब पुनः वहींसे प्रसंग उठाते हैं। अङ्गद श्रीरामचन्द्रजीके पास गय थे, उस समय संध्या हो गयी थी, उस समय कोई बातचीत न हुई, वरन् अङ्गद अपने नियुक्त स्थानपर भेज दिये गये थे, यह बात '*राम अंगदहि बोलावा*' से अनुमानित की जाती है। जब सबेरा हुआ तब अङ्गदको प्रभुने बुलवा भेजा। श्री वि० त्रिपाठीजी लिखते हैं कि '*अति अभिमान त्रास सब भूली*' तक वहाँ (लङ्का) का वृत्तान्त था। अब '*इहाँ*' (सुवेल शैल) का वृत्तान्त कहते हैं। जब अङ्गदजीने लौटकर रामजीके चरणोंको प्रणाम किया। तब सरकारने कुछ न पूछा। रात बीतनेपर सबेरे अङ्गदजी बोलाये गये और उनसे गढ़का वृत्तान्त पूछा गया। कारण यह है कि रावणके साथ संवाद होनेमें ही संध्या हो गयी थी। यथा—'*साँझ जानि दसकंधर भवन गयउ बिलखाइ।*' और नीतिशास्त्रका उपदेश है कि '**दिवा निरीक्ष्य वक्तव्यं रात्रौ नैव च नैव च।**' दिनको देखकर बात करना चाहिये और रातको तो कभी बात न करना चाहिये। नीति-प्रतिपालक सरकारने इसीलिये रातको अङ्गदजीसे कुछ न पूछा। (ख) '*बोलावा*' से जनाया कि समीप न थे उनका डेरा या सेनाकी रक्षाके लिये नियुक्ति अन्यत्र थी। (ग) '*सिरु नावा*' यह सेवकके योग्य ही है।

नोट—२ '*अति आदर समीप बैठारी*' पास बिठाना स्वयं ही '*अति आदर*' है, यथा—'*जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा। बाम भाग आसन हर दीन्हा॥*' (१। १०७) पुनः, '*अति आदर*' से जनाया कि हाथ पकड़कर हृदयसे लगाकर अपने दाहिने या बायें; बराबर ही बिठा लिया। यथा—'*कपि उठाइ प्रभु हृदय लगावा। कर गहि परम निकट बैठावा॥*' (५। ३३) हनुमान्‌जीके सम्बन्धमें हृदय लगाना और हाथ पकड़ना कहा था, वही यहाँ '*अति आदर*' पदसे सूचित किया है। पुनः, भाव कि बड़े प्रेमसे स्वागत पूछते और कृतज्ञता जनाते हुए पास बैठाया, यथा—'*अति आदर खगपति कर कीन्हा। स्वागत पूछि सुआसन दीन्हा॥*' (७। ६३), '*परम प्रीति समीप बैठारे। भगत सुखद मृदु बचन उचारे॥ तुम्ह अति कीन्हि मोरि सेवकाई। मुखपर केहि बिधि करउँ बड़ाई॥*' (७। १६)

नोट—३ '*बोले बिहँसि कृपाल खरारी*' इति। (क)—हँसी अनुग्रह है—'*हृदय अनुग्रह इंदु प्रकासा।*' पुनः, हँसकर बोलना आपका स्वभाव ही है। पुनः, यह हँसी अङ्गदको प्रसन्न करने, उनकी सेवाका उचित आदर और उसपर अपनी प्रसन्नता जनानेके लिये है। (ख)—'*कृपाल*' हैं, इसलिये सम्मान किया। खरारि अर्थात् दुष्टोंके शत्रु हैं। अतः उनके वधकी सलाहपर विचार करेंगे, शत्रुका समाचार अङ्गदसे पूछेंगे।

प० प० प्र०—भगवान्‌ने अङ्गदकृत सब पराक्रम तथा रावणसहित सभाका विमर्दन जान लिया है। (अङ्गदजी-

द्वारा प्रेरित मुकुटोंके आनेपर प्रभुने कहा ही है—*'ए किरीट दसकंधर केरे। आवत बालितनय के प्रेरे॥'* (३०। १०) सेवककी अद्भुत करनीसे प्रसन्न हुए, अतः बिहँसे। तथापि इस हँसीमें दासकी किंचित् परीक्षा लेनेकी इच्छा भी है। यह देखना है कि इसमें अहंकाररूपी तरुका बीज तो अङ्कुरित नहीं हुआ है।

नोट—४ रात्रिमें ही क्यों न पूछा? उत्तर (१) दिनभरका थका था और वार्तामें समय बहुत लगता। (२) प्रभुको कुछ चिन्ता न थी कि तुरत ही समाचार सुनते और युद्धका उपाय सोचते *'जग महँ सखा निसाचर जेते। लछिमन हनहिं निमिष महँ तेते॥'* ये तो प्रभुके ही वाक्य हैं। (३) रात्रिमें सब यूथ और यूथप अपने-अपने स्थानोंपर स्थित थे; उन सबके सामने बातें करके उनका उत्साह बढ़ाना है, रात्रिमें स्थानसे उनका बुलाना नीतिके अनुकूल नहीं था अतएव दिनमें बुलाया, (मा० म०) (४) उस समय श्रीरामचन्द्रजी संध्या-वन्दनादिमें लीन थे और संध्या करनेके समय परामर्श करना भी उचित नहीं। दूसरे अङ्गदको दिनभर विश्राम न मिला था इसलिये विश्राम लेनेकी आज्ञा दी थी (मा० म०)। (५) श्री वि० त्रि० जीका मत नोट १ देखिये।

बालितनय कौतुक* अति मोही। तात सत्य कहु पूछउँ तोही॥५॥
रावन जातुधान कुल टीका। भुजबल अतुल जासु जग लीका॥६॥
तासु मुकुट तुम्ह चारि चलाए। कहहु तात कवनी बिधि पाए॥७॥

शब्दार्थ—**टीका**=शिरोमणि, प्रधानताकी छापवाला, श्रेष्ठ। **लीका**=थाप, प्रसिद्धि, साख।

अर्थ—हे बालिपुत्र! मुझे बड़ा ही कुतूहल है (आश्चर्य है); इसीसे हे तात! मैं पूछता हूँ। तुम सत्य-सत्य कहो (बताओ)—॥ ५॥ जो रावण निशिचरकुलमें शिरोमणि है, जिसके अतुलित भुजबलकी संसारमें प्रसिद्धि है॥ ६॥ उसके चार मुकुट तुमने हमारे पास फेंके। हे तात! कहो तो तुमने उन्हें किस प्रकार पाये?॥ ७॥

नोट—१ *'बालितनय'* संबोधनसे जनाया कि बालीका-सा अद्भुत कार्य तुमने किया है। *'तात'* शब्द 'प्रिय' अर्थमें है। छः चरणोंमें तीन बार संबोधन है और उसमें दो बार *'तात'* शब्द प्रयुक्त किया है। ऐसा करके अङ्गदपर अपना प्रियत्व दिखाया।

नोट—☞ २ *'कौतुक अति मोही।'* इस काण्डका प्रारम्भ ही कौतुकसे हुआ। (क) सेतुबंध प्रथम कौतुक है, यथा—*'कौतुक एक भालु कपि करहू'* तथा *'कौतुक ही पाथोधि बँधाएउ॥'* (६। ६। २) (ख) दूसरा कौतुक जलचरोंका पानीपर स्थित होकर पुलका काम देना है, यथा—*'अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहिं जाहिं॥'* (४), *'अस कौतुक बिलोकि दोउ भाई॥'* (५। १) (ग) तीसरा कौतुक रामबाणका हुआ, वह स्वयं रामजीने किया। यथा—*'छत्र मुकुट ताटंक सब हते एक ही बान। सबके देखत महि परे मरम न कोऊ जान॥ अस कौतुक करि राम सर प्रबिसेउ आइ निषंग।'* (१३) और (घ) चौथा कौतुक यह हुआ, यथा—*'बालितनय अति कौतुक मोही।'* अन्य सब 'कौतुक' थे और यह 'अति कौतुक' है। 'अति कौतुक' कहकर अङ्गदके बलकी अत्यन्त प्रशंसा और उनपर अपनी अति प्रसन्नता जनायी।

नोट—३ *'तात सत्य कहु।'* सत्य कहनेको कहा, क्योंकि यहाँ सत्य न कहनेका मौका है। सज्जन अपने मुख अपनी प्रशंसा नहीं करते, वे तो *'निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं।'* (३। ४६। १) तब कहेंगे कैसे? और मुकुट गिराने इत्यादिमें अङ्गदके पुरुषार्थकी ही प्रशंसा है। अतः कहा कि सत्य कहना। फिर भी अङ्गदने अपनी प्रशंसा न की।

नोट—४ *'रावन जातुधान कुल टीका।'* इति। भाव कि एक तो उसका नाम ही रावण (सबको रुलानेवाले) है; दूसरे वह निशिचरकुलशिरोमणि है; इत्यादि। तीसरे, समस्त राक्षसोंका राजा है तब राक्षस-सेना उसकी न्यूनता, उसका अपमान, कैसे देख सकी? यही नहीं, वह अतुलित बल होनेसे सारे जगत्‌में विख्यात है—(पं०)।

* अति कौतुक—का०।

बं० पा०—'*कवनी बिधि*' अर्थात् बिना संग्राम हुए कैसे मिल गये? इसमें भक्तके बलकी प्रशंसा है, इसीसे पूछते हैं। रघुनाथजीका स्वभाव ही ऐसा है कि वे भक्तके गुण सदा सुनना चाहते हैं। यथा विनये—'*निज करुना करतूति भक्तपर चपत चलत चरचाउ। सकृत प्रनाम प्रनत जस बरनत सुनत कहत फिरि गाउ॥*' (वि० १००)

सुनु सर्बज्ञ प्रनत सुखकारी। मुकुट न होहिं भूप गुन चारी॥ ८ ॥
साम दान अरु दंड बिभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा॥ ९ ॥
नीति धर्म के चरन सुहाए। अस जिय जानि नाथ पहिं आए॥ १० ॥

अर्थ—(अङ्गद बोले) हे सर्वज्ञ (सब जाननेवाले)! हे शरणागतोंको सुख देने (सुखी करने) वाले! सुनिये। ये मुकुट नहीं हैं, राजाके चार गुण साम, दान, दंड और भेद हैं। हे नाथ! वेद कहते हैं कि ये चारों गुण राजाके हृदयमें निवास करते हैं॥ ८-९॥ ये नीति-धर्म (शास्त्र)के सुन्दर (चार) चरण हैं ऐसा जीसे जानकर ये स्वामीके पास आये हैं॥ १०॥

नोट—१ '*सुनु सर्बज्ञ प्रनत सुखकारी।*' श्रीरामजीने कहा कि मुकुट कैसे पाये? इसका उत्तर इस एक चरणमें ही उन्होंने ऐसा दिया जिसमें झूठ भी न हो और स्वामीकी आज्ञाका पालन भी हो जाय। '*सर्बज्ञ*' अर्थात् आप सब जानते ही हैं कि किस प्रकार मिले, आपसे छिपा नहीं है तब मैं क्या कहूँ। बताया तो उसे जाय जो न जानता हो। यदि प्रभु कहें कि हम जानते तो पूछते क्यों तो उसका उत्तर है कि आप '*प्रनत सुखकारी*' हैं। अर्थात् शरणागतको सुखी करने, उसकी प्रतिष्ठा बढ़ानेके लिये आप प्रश्न करते हैं।—'*संतत दासन्ह देहु बड़ाई। ताते मोहि पूछेहु रघुराई॥*' (३। १३। १४) [रा० प्र०—भाव कि मुझसे कुछ नहीं हुआ। यह सब तो प्रणत-सुखकारीकी लीला रही है। पुनः भक्तोंके सुखके लिये यह नरनाट्य आप करते हैं, यथा—'*करिहौं चरित भगत सुखदाता। जो सुनि सादर नर बड़भागी। भव तरिहहिं*……।' (१। १५२)] '*नृप उर बसहिं*' का भाव कि जो राजा हो उसीके हृदयमें वास करते हैं। रावण अब राजा नहीं है, तब वे उसके पास कैसे रहते?

नोट—२ '*नाथ पहिं आए*' का भाव कि—(क) रावणके यहाँ अनाथ पड़े थे, इनसे वह सदा चिढ़ता था, इनका अनादर करता था। नीति कहनेवालोंसे बिगड़ उठता था। यथा—'*मिला हमहिं कपि गुरु बड़ ज्ञानी।* ……*लागेसि अधम सिखावन मोही।*' (सुं० २४) अब आपके पास आकर सनाथ हुए। (ख) अब आप चक्रवर्ती राजा हैं वह नहीं, अतः आपको अपना स्वामी जानकर आये। (पु० रा० कु०) (ग) मा० म०—नीति-धर्म-आचरण विभीषणजीको सोहाता है। यह आप स्वयं जानते हैं, यथा—'*मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती॥*' (सु० ४६। ६) आपने विभीषणको राजा बनाया है अतएव राजनीतिके चारों अङ्ग अपने नाथके पास आ गये। रावण अब राजा नहीं है उसके पास क्यों रहें?

पं० रा० चं० दूबे—राजनीतिके चार अङ्ग साम, दाम, दण्ड, भेद बताये गये हैं। किसी-न-किसी रूपमें इनका उपयोग शासनकार्यमें अब भी करना पड़ता है। कविने '*धरम-हीन प्रभुपद-बिमुख कालबिबस*' में यह दरसा दिया है कि इन चारों (सामादि) का उपयोग भी धर्मके आधारपर ही होना उचित है। धर्मसे विमुख होनेपर यह साधन भी निष्फल हो जाते हैं। इसीके आधारपर सीसोदियोंका यह मन्त्र-चिह्न परम्परासे चला आता है कि—'*जो हठि राखै धर्मको तेहि राखै करतार।*'

राजाके लिये उत्साहित करना, उत्तेजना देना, आदर-मान करना, अच्छी सेवा करनेपर शाबाशी देना, कृतज्ञता प्रकट करना भी जरूरी है। बालिकुमार श्रीअङ्गदजी दूतत्वकार्यका सम्पादन करके आते हैं—'*अति आदर समीप बैठारी। बोले बिहँसि कृपालु खरारी॥*' इसी तरह जब हनुमान्‌जी श्रीसीताजीकी सुध लेकर आते हैं तब जाम्बवन्त

* मुकुटको असत्य ठहराकर उपमानरूपी असत्य चार गुणको स्थापन करना 'शुद्धापह्नुति अलङ्कार' है। सर्वज्ञमें लक्ष्यामूलक गुणीभूत व्यङ्ग है। श्री नं० प० जी अर्थ करते हैं—'आपके चरण नीतिधर्मसे शोभित हैं।'

उनको समक्ष उपस्थित करते हैं—*'सुनि कृपालु उठि हृदय लगाए। जानि सुभट रघुपति मन भाए॥'* आजकल ऐसा करना शायद एक तअल्लुकेदारकी शानके भी खिलाफ समझा जाय। खैर! श्रीमहावीरजीसे सब समाचार सुनकर रामचन्द्रजी कहते हैं—*'सुनु कपि तोहि समान उपकारी।'''''''सुनु कपि तोहि उरिन मैं नाहीं।'* इत्यादि कैसा अच्छा कृतज्ञताका भाव है लङ्का-विजय हो चुकी, श्रीरघुनाथजी अपनी वानरी सेनाको सम्बोधनकर कहते हैं—*'तुम्हरे बल मैं रावन मारा।''''''''* उन्होंने इस विजयका सारा यश उन्हींको दे दिया है।

दो०—धर्महीन प्रभुपद बिमुख काल बिबस दससीस।
तेहि परिहरि गुन आए* सुनहु कोसलाधीस॥ ३७(क)॥

अर्थ—हे कोसलराज! सुनिये। दशशीश रावण धर्महीन, प्रभुके चरणसे विमुख (प्रभु-प्रेमरहित) और कालके पूर्ण वश है। अतएव ये गुण उसको छोड़कर आपके पास आये हैं॥ ३७ (क)॥

नोट—१ यहाँ तीन दोष रावणमें दिखाये। *धर्महीन,* यथा—*'अतिसब देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी॥'* (१। १८४। ४) पुनः यथा—*'अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धरम सुनिय नहिं काना। ''''''''।'* (१। १८३) परद्रोही होना, परदाररत होना इत्यादि अधर्म हैं। धर्मसे वैराग्य होता है, उससे प्रभुपदमें प्रेम होता है, यथा—*'धर्म ते बिरति', 'एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा। तब मम धर्म उपज अनुरागा॥'* (३। १६। ७) वह धर्महीन है, अतः *'प्रभुपद-बिमुख'* है। प्रभुपद विमुख है अतः कालके वश है—*'रामबिमुख त्राता नहिं कोपी।'* अतः क्रमसे धर्महीन, प्रभुपदविमुख और काल-विवश कहा।

नोट—२ यहाँ 'काव्यलिङ्ग अलङ्कार' है।

पं० विजयानन्द त्रिपाठीजी—*'धर्महीन''''''''कोसलाधीस'* इति। लङ्कामें जो अङ्गद-रावण-संवाद हुआ उसका सार सूत्ररूपमें अङ्गदजीने (१) धर्महीन (२) प्रभुपद विमुख (३) कालविवश—ये ही तीन विशेषण दशशीशके देकर सब कह दिया। वस्तुतस्तु अङ्गद-संवाद तीन भागोंमें विभक्त है। पहिले अङ्गदजीने बड़ी सहूलियतसे उसका ध्यान धर्मकी ओर आकर्षित करनेके लिये *'नृप अभिमान मोह बस किंबा। हरि आनेउ सीता जगदंबा॥'* कहा परन्तु *'मूढ़ न जानेसि मोहि सुरारी'* कहकर उसने कोरा जबाव दे दिया कि मैं दैवीसम्पद्‌वालोंका शत्रु हूँ, मेरे यहाँ बल ही सब कुछ न्याय है, तू धर्म लेकर कहाँसे उठा? २४ वें दोहेतक *(सत्य बदहि तजि माख)* तक बलपर ही कहा-सुनी होती रही। अतः अङ्गदजीने निश्चय कर लिया कि वह धर्महीन है। २५ वें दोहे *(नर कर करसि बखान)* से लेकर ३१ वें दोहे *(मूढ़ समुझु तजि टेक)* तकके संवादमें रावण सरकारकी निन्दा ही करता रहा, अतः अङ्गदजीने निश्चय किया कि वह हरिपदविमुख है। तत्पश्चात् अन्त *('तब कपि कही नीति बिधि नाना। मान न ताहि काल नियराना॥')* तकके रावण व्यवहारसे अङ्गदजीने निश्चय कर लिया कि इसका काल सन्निकट आ गया। वही निश्चय अपना अङ्गदजीने प्रारम्भमें ही कह दिया।

और *'काल दंड गहि काहु न मारा। हरै धर्म बल बुद्धि बिचारा॥'* अतः गुणोंने रावणका त्याग किया पर उन्हें आश्रय चाहिये सो **'वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः'** विचारपूर्वक कार्य करनेवालेके गुणोंपर लुब्ध होकर सम्पदाएँ स्वयं उसके पास चली जाती हैं।

पं०—*'कोसलाधीस'* सम्बोधनका भाव कि यह लङ्का तो आप विभीषणको दे चुके हैं; 'इन गुणोंका पालन आप कोसलपुरीमें करेंगे'। यदि कोई कहे कि तुमने तो युक्ति बनायी है, सच बात न कही, तो सुनिये मैंने सत्य ही कहा है कि चारों गुणोंने उसका त्याग किया है। इस तरह कि राजाको उचित है कि सबके साथ साम अर्थात् सन्धि रखे, पर वह आप ऐसे बलिष्ठसे भी विरोध करता है, अतः प्रथम गुण साम चला गया। अपनेसे अधिक बलीको कुछ देकर मित्र बना लेना उचित है, यह दूसरा गुण है, पर देना तो दूर रहा यह आपकी जानकीजीको भी नहीं दे सकता, अतः दूसरा गुण गया। हनुमान्‌जी

* आए गुन तजि रावनहिं—(क०)।

और मुझ दासके वहाँ जानेपर उसके बलकी परीक्षा भी हो गयी। [हमने उसे दण्ड दिया और उसमें अब दण्ड देनेकी शक्ति नहीं रह गयी। अतः दण्ड गुणने भी उसे छोड़ दिया।—(मा० म०)] यह तृतीय गुण दण्ड भी गया। और, विभीषण उसका भाई उसे छोड़कर आपसे आ मिला, इससे समझिये कि भेद गुण भी गया। इस प्रकार चारों गुणोंने उसे त्यागकर आपकी शरण ली।—*'रावन जबहिं बिभीषन त्यागा। भएउ बिभव बिनु तबहिं अभागा॥'*—(सुं० ४१)।

शीला—यहाँ सामादि नीतियोंको मुकुट कहा है, इन दोनोंमें समानता भी होनी चाहिये। दोहेमें रावणको धर्महीन, प्रभुपदविमुख, कालविवश दशशीश कहा है। यहाँ सामगुण धर्मरूपी मुकुट, दाम-गुण प्रभुपद-सम्मुखता, दण्डगुण कालजित् ओर विभेद-गुण दशशीश भार-उतारणरूपी मुकुट हैं। विभीषण धर्मज्ञ, प्रभुपदसम्मुख, कालजित् और भारहरण करानेमें उद्यत हैं। अतः वे रावणको छोड़ यहाँ आये।

दो०—परम चतुरता श्रवन सुनि बिहसे रामु उदार।
समाचार पुनि सब कहे गढ़ के बालिकुमार॥ ३७ (ख)॥

अर्थ—उदार रामचन्द्रजी अङ्गदजीकी परम चतुरता (की वाणी) सुनकर हँसे, फिर तत्पश्चात् बालिपुत्रने किलेके सब समाचार कहे॥ ३८ (ख)॥

टिप्पणी—१ *'परम चतुर मैं जानत अहऊँ'* उपक्रम और *'परम चतुरता श्रवन सुनि'* उपसंहार है। अङ्गदके वचनोंमें चतुराई कर्तृत्वका अभिमान नहीं है।—[हँसना परम चतुरतापर है, वचनकी रचना देख-सुनकर मुस्कराये।* अथवा, श्रीरामजी उदार हैं, विभीषणको राज्य देंगे अतः वचन सुन प्रसन्न हुए। (वं० पा०)] विभीषणजीको राज्य, वानरोंको यश और राक्षसोंको मुक्ति देना चाहते हैं, यह उदारता है। यथा—*'ताहि देइ गति राम उदारा। सबरी के आश्रम पगु धारा॥'* (३। ३४। ५),*'अस बिचारि भजु राम उदारा।'* (२७। ७), *'आयसु दीन्ह न राम उदारा।'* (३३। ४) देखिये। प्रभु भक्तोंके साथ विनोद कर रहे हैं, उनको आनन्द दे रहे हैं, अतः *'राम'* शब्द दिया। दूसरेकी बातपर प्रसन्न होना यह भी उदारता है।

नोट—१ (क) समाचारकथनके सम्बन्धसे *'बालिकुमार'* नाम दिया। अर्थात् यह राजाका पुत्र है, सम्पूर्ण राज्य-व्यवहारसे परिचित है, बालीके समान ही बुद्धिमान् है। अतएव इसने शत्रुके वह सब समाचार प्राप्त कर लिये जिनका प्राप्त करना आवश्यक था। (बं० पा, पं०)। (ख) *'सब समाचार'*। रावण-दलका पुरुषार्थ किलेका समाचार, तोप, सेना आदिका समाचार, गढ़की रचना, चतुरङ्गिनी सेना, चार बाँके फाटक इत्यादि सब समाचार हैं।—(पु० रा० कु०)

नोट—२ *'समाचार पुनि सब कहे गढ़ के बालिकुमार'* इति। वाल्मीकीय, अध्यात्म और हनुमन्नाटकादि कई ग्रन्थोंमें अङ्गदसे लङ्काके गढ़का समाचार पूछा जाना नहीं पाया जाता। हनुमान्‌जीसे लंकाका हाल पूछना इन ग्रन्थोंमें मिलता है। रघुनाथजीने उनसे वहाँ पूछा है कि दुर्गम लङ्कामें कितने दुर्ग, कितनी-कितनी सेना द्वारोंपर, कितने गुप्त यन्त्र रक्षाके लिये और कितने घर-इत्यादि हैं। (वाल्मी० यु० ३। ३) इसी प्रकार अध्यात्म आदिमें भी है। पर चारों प्रकारके दुर्गोंका वर्णन करनेके बाद अन्तमें हनुमान्‌जीने यह कहा है कि जितने दुर्गम मार्ग थे सबको हमने तोड़ डाला। दुर्गके संक्रमों आदिको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया **'शतघ्न्यः संक्रमाश्चैव नाशिता मे रघूत्तम।'** अब रामचन्द्रजी लङ्कामें पहुँच गये हैं। बालिपुत्रसे जो समाचार पूछ रहे हैं यह वह नहीं है जो हनुमान्‌जीने कहा था। क्योंकि दुर्गकी वे कठिनाइयाँ अब नहीं हैं। यहाँ जो समाचार अङ्गदसे पूछा गया है वह यह समाचार जान पड़ता है जो वाल्मीकीयमें विभीषणजीने श्रीरामजीसे अङ्गदके भेजे जानेके पूर्व ही बताया है। उन्होंने बताया कि हमारे मन्त्री पक्षीरूपसे शत्रुसेनामें जाकर वहाँका सब समाचार लाये हैं; रावणका किया हुआ सब विधान ये जानकर आये हैं।—**'भूत्वा शकुनयः सर्वे प्रविष्टाश्च रिपोर्बलम्। विधानं विहितं यच्च तद्दृष्ट्वा समुपस्थिताः॥'** (६। ३७। ८)

* रा० प्र०—यहाँ काव्यरीति-कथन परम चतुरता है। 'गढ़' शब्द श्लेषार्थी है। भाव कि पहिले काव्यरीति गढ़कर कही फिर जो लङ्कादुर्गमें देखा था वह कहा।

यह कहकर फिर बतलाया कि पूर्वद्वारपर प्रहस्त, दक्षिण द्वारपर महावीर महापार्श्व और महोदर, पश्चिमपर इन्द्रजीत अस्त्र-शस्त्रधारी कुशल वीरोंसहित और उत्तर नगरद्वारपर स्वयं रावण है। मध्यमें विरूपाक्ष है। बहुत भारी चतुरङ्गिनी सेना सबके साथ है। इत्यादि। यही बात वाल्मी० ३६ (श्लोक १८ से २० तक) में कविने कही है।

श्रीविभीषणजीसे यह समाचार मिलनेपर—पूर्व द्वारपर प्रहस्तकी जोड़में नील, दक्षिणमें महापार्श्व महोदरकी जोड़में अङ्गद, पश्चिम द्वारपर मेघनादके मुकाबिलेके लिये हनुमान्‌जी रहें और उत्तरमें रावणके लिये लक्ष्मणसहित हम रहेंगे—ऐसा रामजीने निश्चित किया। सुग्रीव, विभीषण और जाम्बवन्त मध्यमें रहकर सेनाकी रक्षा करें। यही निश्चय सर्ग ४१ में भी रहा। वहाँ श्लोक ३८ से ४४ तकमें सेनापतियों और उनके सहायकोंके नाम भी दिये गये हैं। इसके पश्चात् कुछ परिवर्तन भी किया गया है, जैसा सर्ग ४२ श्लोक २१-३१ से स्पष्ट है।

'गयउ बसीठी बीरबर जेहि बिधि बालिकुमार'—प्रसंग समाप्त हुआ।

'युद्ध'—प्रकरण

रिपु के समाचार जब पाए। राम सचिव सब निकट बोलाए॥ १॥
लंका बाँके चारि दुआरा। केहि बिधि लागिअ करहु बिचारा॥ २॥

शब्दार्थ—लागना=घेरना, यथा *'लागे कपि पुनि चहूँ दुआरा।'*

अर्थ—जब श्रीरामचन्द्रजीको शत्रुके समाचार प्राप्त हो गये तब सब मन्त्रियोंको पास बुलाया॥ १॥ (और उनसे बोले कि) लङ्कामें चार बड़े विकट मजबूत फाटक हैं। किस प्रकार उनको घेरा जाय, इसपर विचार करो॥ २॥

नोट—१ (क) *'राम सचिव सब निकट बोलाए'*—*'सिंधु बचन सुनि राम सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ।* (मं० सो० १) और *'पूछा मत सब सचिव बोलाई।'* (१७। १) देखिये। (ख) प्रथम बार पूछा था कि क्या उपाय करें—*'कहहु बेगि का करिय उपाई।'* क्योंकि तब समाचार न मिला था। अब समाचार मिल गया तब पूछा कि किस प्रकार चारों द्वार घेरे जायँ—*'केहि बिधि लागिअ करहु बिचारा।'*

नोट—२ *'लंका बाँके चारि दुआरा·······।'* भाव कि ये देव, दानव, गन्धर्व आदि सभीके लिये दुर्गम और अत्यन्त दुर्जय दुर्धर्ष हैं—'सा सुरोरगगन्धर्वैः सर्वैरपि सुदुर्जया' (वाल्मी० ३७) अतः विचारो कि किस प्रकार हमारे कार्यकी सिद्धि होगी।

तब कपीस रिच्छेस बिभीषन। सुमिरि हृदय दिनकरकुलभूषन॥ ३॥
करि बिचार तिन्ह मंत्र दृढ़ावा। चारि अनी कपि कटकु बनावा॥ ४॥
जथाजोग सेनापति कीन्हे। जूथप सकल बोलि तब लीन्हे॥ ५॥

शब्दार्थ—**अनी** (सं० अणि=अग्रभाग)=दल, सेनाका अग्रभाग। यथा—*'बेष न सो सखि सीय न संगा। आगे चली अनी चतुरंगा'॥* (अ०)

अर्थ—तब श्रीसुग्रीवजी, ऋक्षपति श्रीजाम्बवन्तजी और विभीषणजीने सूर्यकुलभूषण श्रीरघुनाथजीको हृदयमें स्मरण किया॥ ३॥ और, विचार करके उन्होंने मन्त्र निश्चय (पक्का) किया। उन्होंने वानर-सेनाके चार दल बनाये (विभाग किये)॥ ४॥ यथायोग्य (जो जिस अनीके लायक था) उनके सेनापति बनाये। इसके बाद सब यूथपतियोंको बुला लिया॥ ५॥

पु० रा० कु०—*'कपीस रिच्छेस बिभीषन।'* सुग्रीव सूर्यके अंश, जाम्बवन्त ब्रह्माके अवतार और विभीषण परम भागवत हैं—ये तीन सबमें विशेष हैं।—(प्रभुने *'करहु बिचारा'* कहा। अतः *'करि बिचार·······'*)। इस प्रकार श्रीरामजीकी आज्ञाको चरितार्थ किया।

नोट—१ *'सुमिरि हृदय दिनकर·······।'* इति। स्मरणसे कठिन बात भी समझमें आ जाती है, यथा—*सुमिरत रामु हृदय अस आवा।'* (१। ५७। १) भक्तोंका कार्यारम्भमें प्रभुका स्मरण करना विधि भी है। यथा—*'सुमिरि रामसियचरन तब चले भरत दोउ भाइ॥'* (२। १८७), *'सुमिरि रामपद पंकज पनहीं। भाथीं बाँधि चढ़ाइन्हि*